सूफ़ी - काव्य - विमर्श

[दाऊद, कुतुबन, जायसी तथा मंझन की कृतियों का अध्ययन]

लेखक
डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय एम. ए., डी. फिल्
भूतपूर्व प्राध्यापक एवं सीनियर रिसर्च फेलो
शिकागो विश्वविद्यालय, शिकागो तथा
अमेरिकन इन्स्टीट्यूट आफ इण्डियन स्टडीज
फिलाडेलफिया, (अमेरिका)
सीनियर फेलो, यू० जी० सी०
क० मु० हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय

1968

प्रकाशक :
विनोद पुस्तक मन्दिर
कार्यालय : रांगेय राघव मार्ग, आगरा–२
बिक्री-केन्द्र : हॉस्पिटल रोड, आगरा–३

प्रथम संस्करण : १९६८

मूल्य : ६.००

कैलाश प्रिंटिङ्ग प्रेस, आगरा
११७६८}

प्रकाशक :
विनोद पुस्तक मन्दिर
कार्यालय : रांगेय राघव मार्ग, आगरा–२
बिक्री-केन्द्र : हॉस्पिटल रोड, आगरा–३

प्रथम संस्करण : १९६८

मूल्य : ६.००

कैलाश प्रिंटिंग प्रेस, आगरा
[११७६८]

गुरुवर

डॉ० माताप्रसाद गुप्त

को

श्याम मनोहर

२८ जुलाई १९६०.

भूमिका

'सूफ़ी-काव्य-विमर्श' में प्रारम्भिक सूफ़ी प्रेमाख्यानों का जिनमें 'चंदायन,' 'मृगावती', 'पद्मावत' और 'मधुमालती' सम्मिलित हैं, अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इन निबन्धों के अधिकांश विषय ऐसे हैं जिन पर हिन्दी-साहित्य में प्रथम बार इतना विस्तार के साथ विचार किया गया है। अलग-अलग होते हुए भी इन निबन्धों में एक एकसूत्रता है और इन सबको पढ़ने के बाद हिन्दी सूफ़ी साहित्य की प्रवृत्तियों की एक पूर्ण रूपरेखा सामने आ जाती है। वस्तुतः यह ग्रन्थ मेरे 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' का पूरक है। अन्तर इतना ही है कि 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' थीसिस के रूप में लिखी गई एक कृति है जिसका क्षेत्र विस्तृत है। 'सूफ़ी-काव्य-विमर्श' की सीमा विशद नहीं है इसमें एक-एक ग्रन्थ की महत्त्वपूर्ण समस्याओं का अध्ययन गहराई में उतर कर करने का प्रयास किया गया है। ये अलग-अलग शोध-निबन्ध हैं और एक समय में नहीं लिखे गये हैं, अतः कहीं-कहीं विचारों या सूचनाओं की पुनरावृत्ति हो सकती है। इस प्रकार के संग्रह में यह अपरिहार्य है।

'चन्दायन' सूफ़ी-प्रेम काव्य की परम्परा में सबसे पहले आता है। इसकी रचना ७८१ हि० (१३७९ ई०) में हुई थी।[1] इसके रचयिता मौलाना दाऊद रायबरेली जिले के डलमऊ के निवासी थे।[2] उनका समसामयिक बादशाह फिरोजशाह तुग़लक था।[3]

मौलाना दाऊद के गुरु जैनदी (शेख जैनुद्दीन) थे। उन्होंने कहा है :—

सेष जैनदी हौं पथि लावा।
धरम पंथु जिह पापु गवावा। चांदायन—छन्द, ९।१

---

१. बरस सातै (त) से होये इक्यासी।
तिहि याह कबि सरसे (स) सभासी।

शेख जैनुद्दीन के सम्बन्ध में अकबरकालीन ग्रन्थ 'अखबारुल अखियार'[1] मे निम्नलिखित उल्लेख मिलता है। "खाहिरजादा व खलीफ़ा व खादिमे-शेख नसीरुद्दीन चिराग देहवली अस्त जिक्र ओ दर मजालिस व मलफ़ूज़ाते शेख सब्त याफ़्ता अस्त। मौलाना दाऊद मुसन्निफ चन्दायन मुरीदे ओस्त व मदहओ दरअव्वले चन्दायन करदा वाक्या अस्त। क़ब्र ओ दर गुंबदीस्त कि पायान गुंबद शेख नसीरुद्दीन दर जिम्न हज़ीरा सह न अस्त रहमतुल्ला अलै।"[2]

अनुवाद—शेख जैनुद्दीन शेख नसीरुद्दीन चिराग देहवली के भानजे व खलीफ़ा व खादिम हैं। उनका ज़िक्र शेख के मलफ़ूज़ात (प्रवचन का संग्रह) और मजालिस मे पाया जाता है। मौलाना दाऊद जो चन्दायन के लेखक हैं इनके मुरीद हैं और चन्दायन के प्रारम्भ में उन्होंने इनकी प्रशंसा की है। इनकी क़ब्र उस गुंबद में है जो शेख नसीरुद्दीन के पाइंत है और जो उनके सैन के हाते में है।

हमीद क़लन्दर द्वारा संग्रहीत शेख नसीरुद्दीन चिराग़े देहवली के मलफ़ूजात 'खैरुल-मजालिस' में भी शेख जैनुद्दीन का उल्लेख आता है।

एक प्रसङ्ग में यह उल्लेख आता है कि "शेख ज़ैनुद्दीन ने पीर से कहा कि यह किस्सा लम्बा है।"[3] 'खैरुल मजालिस' में अन्यत्र आता है कि "चिराग़ देहवली ने अपने भानजे ज़ैनुद्दीन से कहा कि दोस्तों को फूल बाँट दो। उन्होंने सामने से फूल उठा लिये और सबको बाँट दिये। हज़रत चिराग़ देहलवी ने भी कुछ फूल उठा लिये जो लाल और सफ़ेद थे।"[4] एक अन्य प्रसङ्ग में यह कहा गया है कि "हज़रत चिराग़ देहलवी के दरवाजे पर दरबान न था। उनके प्रमुख सेवकों में उनके भानजे शेख ज़ैनुद्दीन थे। वह भी कभी खिदमत में हाज़िर रहते और कभी नहीं रहते थे।"[5] शेखजैनुद्दीन चिश्ती सम्प्रदाय के थे।

---

१. **अखबारुल अखियार**—इसमें २२५ भारतीय सूफ़ी सन्तों का जीवन चरित दिया गया है। इसके लेखक शेख मुहद्दीस देहलवी हैं जो अकबर के समय में थे।

२. **अखबारुल अखियार**—मुद्रक मुहम्मद हाशिम, प्रकाशन तिथि, १२८० हिजरी, (१८६३ ई०), देहली, पृष्ठ १४७।

३. खिदमते मौलाना शेख ज़ैनुद्दीन ख्वाहिरज़ादा सल्लहो अल्लाताला अर्ज़ दाश्त करद कि हिकायत मतूल अस्त।
खैरुल-मजालिस—सम्पादक, खलीक़ अहमद निज़ामी, अलीगढ़, १९५९, पृ० ९

४. बादेअज़ान खिदमत ख्वाजा मौलाना शेख ज़ैनुद्दीन ख्वाहिरजादा रा फरमूदन्द—यारॉं रा गुलहा बरसान। मौलाना शेख ज़ैनुद्दीन अज़पेश बर गिरफ्त व हरकसी रा दादा। खिदमते ख्वाजा हम कदरी गुल बर गिरफ्तंद। गुलहा लाल बूद व सफ़ेद।
—**खैरुल-मजालिस, वही**—पृष्ठ १५९

५. **वही** पृष्ठ २८६ २८७

सूफ़ी परम्परा का दूसरा महत्त्वपूर्ण काव्य कुतुबन कृत 'मृगावती' है। कुतुबन ने जौनपुर के हुसेन शाह शर्की के समय में ६०६ हिजरी में अपने काव्य की रचना की।[1] उनके गुरु सुहरवर्दिया सम्प्रदाय के शेख बुढ़न थे। हुसेन शाह शर्की के युग मे बरनवा नामक स्थान पर एक सूफ़ी संत शेख बुढ़न रहते थे। इनके यहाँ दिल्ली, दक्षिण और जौनपुर के संगीतज्ञ आया करते थे।[2] कुतुबन ने 'मृगावती' में संगीत की राग-रागनियों का विस्तृत उल्लेख करते हुए, अनेक प्रकार के वाद्ययंत्रों का भी उल्लेख किया है। अलाप के बिस्तार भी उन्होंने बताये हैं, जिनसे यह संकेत मिलता है कि कुतुबन की संगीत में अच्छी गति थी।[3] संभव है कुतुबन उपर्युक्त शेख बुढ़न के शिष्य रहे हों और उनसे संगीत की भी शिक्षा ली हो।

जायसी का सम्बन्ध दो गुरु परम्पराओं से है। उनके कुल पूज्य सैयद अशरफ जहाँगीर समनानी थे जिनका देहान्त जायसी के पद्मावत के रचनाकाल (१५४० ई०) से १३५ वर्ष पूर्व १४०५ में हो गया था।[4] उनके दीक्षा गुरु मेहदवी सम्प्रदाय के शेख बुरहान थे जिनकी परम्परा इस प्रकार बनती है :—

ख्वाजा खिज्र
|
दानियाल
|
मीर सैयद मुहम्मद जौनपुरी
|
अलहदाद
|
शेख बुरहान

---
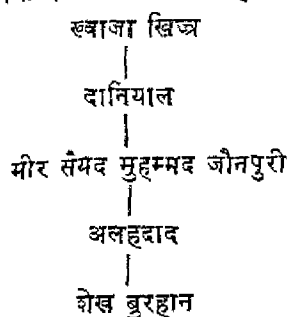
१. साह हुसैन आहि बड़ राजा।
छात सिंघासन इनहिं पै छाजा।—मृगावती, डा० माताप्रसाद गुप्त, छंद ७।१
इनहिं के राज एहि रे हम कहे।
नौ से नौ जौ संबत अहे।—मृगावती, वही, ११।१

२. The two important Indian muslim musicians of the day were Sultan Husain Sharqi, the last Sharqi king of Jaunpur and the contemporary saint, Pir Bodhan of Barnawa. The saints dwelling became a rendezvous for musicians from Delhi, the Deccan and Jaunpur.

—*Muslim civilization in India*—S. M. Ikram and Ainslie —T. Embree, Newyork—1964, Page 119.

३. मृगावती, सम्पादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, आगरा १९६८, छंद २४६ से २५३ तक।

४ *Sufism Its Saints and Shrines*—John A Subhan Lucknow 1960 page 348

शेख बुरहान प्राय: कालपी में रहते थे और उनकी मृत्यु वहीं ९७० हिजरी सन् १५६२ ई० में हुई। (मध्ययुगीन प्रेमाख्यान पृ० ७०–७१) इस प्रकार जायसी का दो गुरु परम्पराओं से सम्बन्ध था।

मंझन के गुरु शेख मुहम्मद ग़ौस शत्तारी थे। इनके सम्बन्ध में विस्तार के साथ इस पुस्तक में लिखा जा चुका है (देखिए निबन्ध ९, १०, ११, १२)। "शेख मुहम्मद ग़ौस, शत्तारी सम्प्रदाय का दर्शन और मंझन" शीर्षक निबंध मे संक्षेप में यह दिखाया गया है कि शत्तारी सम्प्रदाय ने मंझन की विचारधारा को कैसे गहरे रूप मे प्रभावित किया है। इसी प्रकार यह खोज करने की आवश्यकता बनी हुई है कि मौलाना दाऊद, कुतुबन और जायसी अपनी गुरु परम्पराओं और सम्प्रदायों से कहाँ तक प्रभावित हैं?

'सूफ़ी-काव्य-विमर्श' से पाठकों को सूफ़ी साहित्य की समस्याओं पर विचार करने में यदि कुछ भी सहायता मिल सकी तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

—लेखक

आभार प्रदर्शन

मेरी थीसिस 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' सन् १९६१ में प्रकाशित हुई थी। आज १९६८ में 'सूफ़ी काव्य विमर्श' पुस्तक आपके हाथों में जा रही है। इस विलम्ब का कारण यह है कि १९६२ से १९६५ तक मुझे 'शिकागो विश्वविद्यालय' में अध्यापन का कार्य करना पड़ा। इस अवधि में सूफ़ी तथा मध्ययुगीन साहित्य के अध्ययन का क्रम तो चलता रहा किन्तु प्रकाशन का कार्य इस बीच अधिकांश अंग्रेजी में हुआ। सन् १९६५ में जब "अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज" की फेलोशिप पर मैंने लोरिकी और चंदायन पर यहाँ कार्य प्रारम्भ किया तो दो वर्ष लोरिकी और चनैनी के संग्रह में लग गये। पटना, बलिया, बनारस, इलाहाबाद, मिर्जापुर, बलरामपुर (गोंड़ा) आदि में जाकर मौखिक परम्परा से लोरिकी और चनैनी के कई पाठ संग्रहीत करने पड़े और जब ६ माह पूर्व मैंने उनका अध्ययन और चंदायन से तुलना करने का कार्य प्रारम्भ किया तो मेरे मित्रों और शुभचिंतकों ने यह आग्रह किया कि मैं कोई पुस्तक इस बीच पाठकों के हाथ में अवश्य दे दूँ। मैं मौन रहकर तीन वर्षों तक और कार्य करना चाहता था किन्तु मित्रों के आग्रह को टालना सम्भव नहीं हुआ और यह पुस्तक अब आपकी सेवा में प्रस्तुत की जा रही है। इस पुस्तक में सम्मिलित किये गये जायसी और मंझन पर कुछ निबन्ध सन् १९६० के आस पास के है और उनमें यथास्थान परिवर्तन और परिवर्द्धन मात्र किया गया है। 'हिन्दुस्तानी' और 'सम्मेलन पत्रिका' में वे प्रकाशित हुए थे। लेखक उन पत्रिकाओ के सम्पादकों का आभारी है। शेष निबन्ध १९६५ और ६८ के बीच लिखे गये हैं। सन् १९६० और इधर के निबन्धों में पाठकों को कोई अन्तर लगे तो उसका कुछ श्रेय मैं फ्रांस की सुप्रसिद्ध इंडालोजिस्ट शार्लोत् वॉदवील तथा शिकागो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तथा सुप्रसिद्ध विद्वान् मर्सिया इलियाड, मुहसिन मेहदी, मार्शल हाचसन, नार्मनजाइद एडवर्ड डीमक, वैन वाटनैन, मिलटन सिंगर आदि विद्वानों को देना चाहता हूँ जिनकी गम्भीर विद्वत्ता से मैंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लाभ उठाया है।

गुरुवर डा० माताप्रसाद गुप्त से बराबर विचारविमर्श होते रहे। उससे मुझे अत्यधिक लाभ हुआ है। डाक्टर सत्येन्द्र जी तथा आचार्य परशुराम चतुर्वेदी से भी मुझे प्रेरणा मिलती रही है श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी और श्री निरंजनलाल शर्मा तथा श्री बालकृष्ण त्रिपाठी यदि विशेष रूप से आग्रह न करते तो यह ग्रन्थ अभी पाठकों

के हाथ में पहुँच पाता, इसमें मुझे संदेह है। श्री श्रीभगवान शर्मा ने केवल प्रूफ देखने में ही सहायता नहीं की है बल्कि लेखों के सम्बन्ध में वे अपने स्पष्ट विचार भी देते रहे हैं उनसे लाभ होता रहा है।

अन्त में मुझे अपनी पत्नी श्रीमती कृष्णबाला पांडेय (एम० ए० हिन्दी, संस्कृत) के सम्बन्ध में कुछ कहने में संकोच हो रहा है। यदि उन्होंने मुझे सब प्रकार से निश्चिंत न कर दिया होता तो मेरे लिए कुछ कर सकना संभव होता, मैं नहीं कह सकता।

विनोद पुस्तक मंदिर और उसके संचालक श्री भोलानाथ जी ने इस पुस्तक के प्रकाशन में जो तत्परता दिखाई है उसके लिए उन्हें धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, किन्तु शायद वह इस औपचारिकता को पसन्द न करेंगे।

—श्यामंमनोहर पाण्डेय

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

सौन्दर्य चित्रित करते हुए वह श्रवण, तिल, ग्रीवा भुजाएँ, उरोजों, पेट, पीठ, और पगों का वर्णन करता है और बाईस छंदों में चंदा का दिव्य स्वरूप प्रस्तुत करता है[1]

मांग के वर्णन में बाजिर चंदा को परम सौन्दर्य का प्रतीक बना देता है और उसकी स्थूल मांग को अलौकिकता प्रदान कर देता है। वह कहता है, मैं पहले मांग का सुहाग वर्णन कर रहा हूँ जिसमें अनुरक्त होकर संसार फाग खेलता है। उसकी मांग मे सिन्दूर है जैसे उसमें कनक केजुरा रँग रहा हो। (गोजर) मांग में ऐसा प्रतीत होता है जैसे रात्रि में दीपक प्रज्वलित किया गया हो। उसको मांग में मोती सजे हुए हैं जिससे समस्त देश में प्रकाश हो जाता है।[2] कहने की आवश्यकता नहीं कि संसार का फाग खेलना और मांग के मोतियों से सम्पूर्ण देश का प्रकाशित हो जाना सामान्य चित्रण नहीं है। कवि का यह चित्रण चंदा को अपार्थिव व्यक्तित्व प्रदान करता है।

'मृगावती' और 'पद्मावत' में मांग का वर्णन 'चंदायन' से भिन्न प्रकार का है किन्तु 'मधुमालती' में मांग को 'चंदायन' की भांति दीपक के सदृश बताया गया है।[3] 'चंदायन' और 'मधुमालती' दोनों में मांगों की छवि की तुलना सूर्य-किरण से की गई है।[4]

मांग वर्णन के पश्चात् मौलाना दाऊद कृत 'चंदायन' में केश का वर्णन है जो भ्रमर के वर्ण के हैं और जो विषधर की भाँति उसके शरीर पर लोट रहे हैं। जब वह वेणी गूँथ लेती है तब उसके दर्शकों पर विष की लहर चढ़ जाती है जिसको गारुडी भी ठीक नहीं कर सकता। वह नारी जब अपने बालों को खोलकर झाड़ती है तब दिन में अंधेरा हो जाता है।[5]

---

१. **चांदायन**, छद ६४ से ८५ तक।

२. पहिले मांग क कहउं सोहागू, जेंहि राता जग खेलइ फागू।
मांग चीरि सिर सेंदुर पूरा, रेंगि चला जनु कान केजुरा।
दीया जोति रइनि जस बारी, कारें सीस दीस रतनारी।
मइं वह मांगि चीर तर दीठी, उवत सूरु जनु किरनि पईठी।
—**चांदायन, छंद ६४**

३. मांग सरूप देखि जिउ हरा,
दीप पतंग जोति जनु परा। —**मधुमालती**, ७८।४
मंझन कृत 'मधुमालती', संपादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रयाग १९६२। इसके बाद के समस्त उद्धरण इसी संस्करण के है।

४. सूर किरिन सिर मांग सोहाई,
सभ जग जीति गगन पर आई। —**मधुमालती**, ७८।१

५. भंवर वरन भई देखे ब्रारा, जनु बिसहर लुरि परे भंडारा।
लांब केस सिर पा घुरि आए, जानु सेंदुरे नाग सोहाये।
बेनी गूंदि जउहि ओरमावइ, लहरि चढ़हि बिसु मसतगि धावइ।
देखत बिसु चढ़ मंत्रु न मानइ गारुरि तासु उतारि न जानइ
छूरा छोरि झार सो नारी दिवसेहि राति होइ अंधियारी
—६५

कुतुबन कृत 'मृगावती' में भी मृगावती की लटों की तुलना नागिन से की गयी है[1] यद्यपि उसमें बिम्ब-विधान भिन्न प्रकार का है। 'चंदायन' की ही भांति 'मृगावती' में भी वेणी को ऐसी सर्पिणी बताया गया है जो दर्शकों को डस लेती है और गारुड़ी का मंत्र और उपचार भी उस पर कारगर नहीं होता।[2] 'पद्मावत' में भी यह चित्रित किया गया है कि पद्मावती के बाल सर्पिणी जैसे हैं और जब वह बाल खोलती है तो सर्वत्र अंधेरा हो जाता है।[3] 'मधुमालती' में भी लम्बे बाल विषधर हैं, उसके वेणी खोलने से अंधकार हो जाता है।[4]

'चंदायन' के अनुसार चंदा का ललाट देखकर देवतागण विमुग्ध हो गए और उन्होंने लोक और कुटुम्ब छोड़कर उसकी सेवा की।[5] मौलाना दाऊद ने उसके ललाट को द्वितीया का चन्द्र भी कहा है और कसौटी पर कसा हुआ सोना बताया है।[6] उसके मुख के प्रस्वेदकण ऐसे हैं जैसे चन्द्रमा में नक्षत्र दृष्टिगत हो रहे हों।[7]

'चंदायन' और 'मृगावती' के ललाट वर्णनों में प्रचुर समानता दिखाई पड़ती है और मृगावती के ललाट को भी द्वितीया के चन्द्र की रेखा के सदृश बताया गया

---

१. लट जो लटकि गाल पर परै, जस रे पदुम ? नागिन रस करै।
—मृगावती, ५१।२

—मृगावती, डा० माताप्रसाद गुप्त, आगरा १९६७,
इसके बाद 'मृगावती' के समस्त उद्धरण डा० गुप्त के संस्करण के हैं।

२. जो रे देख बिख लागे ताही, ओखद मूरि न गारुरि आही।
सिर पा लहि आए घुँघरारे, लहरन्हि भरे भुअंगम कारे।
—मृगावती, ५१।४,५

३. बेनी छोरि झारु जौं केसा, रैनि होइ जग दीपक लेसा।
सिर हुति सो हरि परहिं भुइं बारा, सगरे देस होइ अँधियारा।
—पदमावत, ४७०।१,२,

—पद्मावत, डा० माताप्रसाद गुप्त, इलाहाबाद, १९६३।
'पद्मावत' के छंदों के उद्धरण भी डा० गुप्त के संस्करण से लिये गए हैं।

४. तेहि पर कच विखधर बिख सारे, लोटहिं सेज सहज लुहकारे।
—मधुमालती, ७९।१

छिटके चिहुर सोहागिनि जगत भयउ अंधकाल।
जनु विरही जन जिय बध कारन मनमथ रोपा जाल ॥ —मधुमालती ७९।६,७
'मधुमालती' के समस्त उद्धरण 'मधुमालती' के डा० माताप्रसाद गुप्त के संस्करण के हैं, प्रकाशक मित्र प्रकाशन प्रा० लि०, इलाहाबाद १९६१।

५. देखि लिलार बिमोहे देवा, लोक कुटुम्ब तजि कीतिहि सेवा।
—चांदायन, ६६।१

६. दूज क चांदु जानु परगसा, कइ खर सोवन कसौटी कसा। —चांदायन, ६६।२

७. बदनु पसेज बूँद जो आवहिं, चांद मांझ जनु नखत दिखावहिं।
चांदायन, ६६ ३

सौन्दर्य चित्रित करते हुए वह श्रवण, तिल, ग्रीवा भुजाएँ, उरोजों, पेट, पीठ, और पगों का वर्णन करता है और बाईस छंदों में चंदा का दिव्य स्वरूप प्रस्तुत करता है [१]

मांग के वर्णन में बाजिर चंदा को परम सौन्दर्य का प्रतीक बना देता है और उसकी स्थूल मांग को अलौकिकता प्रदान कर देता है। वह कहता है, मैं पहले मांग का सुहाग वर्णन कर रहा हूँ जिसमें अनुरक्त होकर संसार फाग खेलता है। उसकी मांग मे सिन्दूर है जैसे उसमे कनक केजुरा रँग रहा हो। (गोजर) मांग में ऐसा प्रतीत होता है जैसे रात्रि में दीपक प्रज्वलित किया गया हो। उसकी मांग में मोती सजे हुए हैं जिससे समस्त देश में प्रकाश हो जाता है।[२] कहने की आवश्यकता नहीं कि संसार का फाग खेलना और मांग के मोतियों से सम्पूर्ण देश का प्रकाशित हो जाना सामान्य चित्रण नहीं है। कवि का यह चित्रण चंदा को अपार्थिव व्यक्तित्व प्रदान करता है।

'मृगावती' और 'पद्मावत' में मांग का वर्णन 'चंदायन' से भिन्न प्रकार का है किन्तु 'मधुमालती' में मांग को 'चंदायन' की भांति दीपक के सदृश बताया गया है।[३] 'चंदायन' और 'मधुमालती' दोनों में मांगों की छवि की तुलना सूर्य-किरण से की गई है।[४]

मांग वर्णन के पश्चात् मौलाना दाऊद कृत 'चंदायन' में केश का वर्णन है जो भ्रमर के वर्ण के हैं और जो विषधर की भाँति उसके शरीर पर लोट रहे हैं। जब वह वेणी गूँथ लेती है तब उसके दर्शकों पर विष की लहर चढ़ जाती है जिसको गारुडी भी ठीक नही कर सकता। वह नारी जब अपने बालों को खोलकर झाड़ती है तब दिन मे अंधेरा हो जाता है।[५]

---

१. **चांदायन**, छंद ६४ से ८५ तक।

२. पहिले मांग क कहउं सोहागू, जेंहि राता जग खेलइ फागू।
मांग चीरि सिर सेंदुर पूरा, रेंगि चला जनु कान केंजुरा।
दीया जोति रइनि जस बारी, कारें सीस दीस रतनारी।
मइ वह मांगि चीर तर दीठी, उवत सूरु जनु किरनि पईठी।
—**चांदायन, छंद ६४**

३. मांग सरूप देखि जिउ हरा,
दीप पतंग जोति जनु परा। —**मधुमालती**, ७८।४
मंझन कृत 'मधुमालती', संपादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रयाग १९६२।
इसके बाद के समस्त उद्धरण इसी संस्करण के हैं।

४. सूर किरिन सिर मांग सोहाई,
सभ जग जीति गगन पर आई। —**मधुमालती**, ७८।१

५. भँवर बरन भईं देखे बारा, जनु बिसहर लुरि परे भंडारा।
लांब केस सिर पा धुरि आए, जानु सेंदुरे नाग सोहाये।
बेनी गूँदि जउहि ओरमावइ, लहरि चढ़हि बिसु मसतगि धावइ।
देखत बिसु चढ़ मंतु न मानइ गारुरि तासु उतारु न जानइ
झारा छोरि झार सो नारी दिवसेहि राति होइ अंधियारी

कुतुबन कृत 'मृगावती' में भी मृगावती की लटों की तुलना नागिन से की गयी है[1] यद्यपि उसमें विम्ब-विधान भिन्न प्रकार का है। 'चंदायन' की ही भाँति 'मृगावती' मे भी वेणी को ऐसी सर्पिणी बताया गया है जो दर्शकों को डस लेती है और गारुड़ी का मंत्र और उपचार भी उस पर कारगर नहीं होता।[2] 'पद्मावत' में भी यह चित्रित किया गया है कि पद्मावती के बाल सर्पिणी जैसे हैं और जब वह बाल खोलती है तो सर्वत्र अंधेरा हो जाता है।[3] 'मधुमालती' में भी लम्बे बाल विषधर हैं, उसके वेणी खोलने से अंधकार हो जाता है।[4]

'चंदायन' के अनुसार चंदा का ललाट देखकर देवतागण विमुग्ध हो गए और उन्होंने लोक और कुटुम्ब छोड़कर उसकी सेवा की।[5] मौलाना दाऊद ने उसके ललाट को द्वितीया का चन्द्र भी कहा है और कसौटी पर कसा हुआ सोना बताया है।[6] उसके मुख के प्रस्वेदकण ऐसे है जैसे चन्द्रमा में नक्षत्र दृष्टिगत हो रहे हों।[7]

'चंदायन' और 'मृगावती' के ललाट वर्णनों में प्रचुर समानता दिखाई पड़ती है और मृगावती के ललाट को भी द्वितीया के चन्द्र की रेखा के सदृश बताया गया

---

१. लट जो लटकि गाल पर परैं, जस रे पदुम ? नागिन रस करैं।
—मृगावती, ५१।३
—मृगावती, डा० माताप्रसाद गुप्त, आगरा १९६७,
इसके बाद 'मृगावती' के समस्त उद्धरण डा० गुप्त के संस्करण के हैं।

२. जो रे देख बिख लागे ताही, ओखद मूरि न गारुरि आही।
सिर पा लहि आए घुँघरारे, लहरन्हि भरे भुअंगम कारे।
—मृगावती, ५१।४,५

३. वेनी छोरि झारु जौं केसा, रैनि होइ जग दीपक लेसा।
सिर हुति सो हरि परहिं भुइं बारा, सगरे देस होइ अँधियारा।
—पदमावत, ४७०।१,२,
—पद्मावत, डा० माताप्रसाद गुप्त, इलाहाबाद, १९६३।
'पद्मावत' के छंदों के उद्धरण भी डा० गुप्त के संस्करण से लिये गए हैं।

४. तेहि पर कच बिखधर बिख सारे, लोटहिं सेज सहज लुहकारे।
—मधुमालती, ७९।१
छिटके चिहुर सोहागिनि जगत भयउ अंधकाल।
जनु विरही जन जिय बध कारन मनमथ रोपा जाल॥ —मधुमालती ७९।६,७
'मधुमालती' के समस्त उद्धरण 'मधुमालती' के डा० माताप्रसाद गुप्त के संस्करण के हैं, प्रकाशक मित्र प्रकाशन प्रा० लि०, इलाहाबाद १९६१।

५. देखि लिलार बिमोहे देवा, लोक कुटुम्ब तजि कीतिहि सेवा।
—चांदायन, ६६।१

६. दूज क चांदु जानु परगसा, कइ खर सोवन कसौटी कसा। —चांदायन, ६६।२

७. वदनु पसेज बूँद जो आवहिं, चांद मांझ जनु नखत दिखावहिं।
चांदायन, ६६ ३

है।[1] और उसके मुख के प्रस्वेद कणों की तुलना नक्षत्रों से की गई है।[2] 'पद्मावत' के दो नखशिख वर्णनों में से दोनों में ललाट को दूज का चन्द्रमा कहा गया है।[3] किन्तु यहाँ स्वेद विन्दुओं का चित्रण नही है। 'मधुमालती' में ललाट को दूज का चांद कहा गया है और मुख के श्रम बिंदुओं को नक्षत्र बताया गया है जो चन्द्रमा को ग्रस रहे हैं।[4]

ललाट के उपरान्त 'चंदायन' में भौंहों का वर्णन किया गया है। चंदा की भौहे धनुष के समान हैं जो प्रत्यंचा पर विषवाण संधान कर रही हैं।[5] वह शान पर विषाक्त बाण चढ़ाकर बहेलिए के सदृश आखेट के लिए आती हैं।[6] 'चंदायन' का कवि यह भी कहता है कि मैंने अर्जुन[7] का बाण स्वर्ग में देखा। चंदा की भौंहों के गुण

---

१. दिपइ लिलार दुइजि ससि रेखा, उएउ मयंक मीन जग देखा।
—मृगावती, छंद ५२।१

२. बदन पसेंज बुंद जस तारा, चांद नखत लै उएउ अंकारा।
—मृगावती, छंद ५२।३

३. कहौं लिलाट दुइजि कइ जोती, दुइजिहि जोति कहाँ जग ओती।
—पद्मावत, १०१।१

दुइजि लिलाट अधिक मनि करा, संकर देखि मांथ भुइं धरा।
—पद्मावत, ४७२।१

४. निह कलंक ससि दुइजि लिलारा, नौ खण्ड तीनि भुवन उजियारा।
—मधुमालती, ८१।१

बदन पसेउ बुंद चहुपासा, कचपचियैं जनु चांद गरासा।—मधुमालती, ८१।२

५. भउंह धनुक जनु दुइ कर ताने, पनच बान विष धैंचि संधाने।
—चांदायन, ६७।१

६. बान बिसार सान दइ लावइ, पारधि जइस अहेरइ आवइ।—चांदायन, ६७।२

७. अर्जुन को अग्नि ने अटूट गांडीव धनुष अक्षय बाण तरकस के साथ दिया था जिसका उल्लेख महाभारत के आदिपर्व में आता है :—

ददानीत्येव वरुणः पावकं प्रत्यभाषत।
तदद्भुतं महावीर्यं यशः कीर्ति विवर्धनम्॥
सर्वशस्त्रैरनाधृष्यं सर्वशस्त्र प्रमाथि च।
सर्वायुधमहामात्रं परसैन्यप्रधर्षणम्॥
एकं शतसहस्रेण सम्मितं राष्ट्रवर्धनम्।
चित्रमुच्चावचैर्वर्णैः शोभितं श्लक्ष्णमव्रणम्॥
देवदानवगन्धर्वैः पूजितं शाश्वतीः समाः।
प्रादाच्चैव धनूरत्नमक्षय्ये च महेषुधी॥

"तब वरुण ने अग्निदेव से 'अभी देता हूँ' ऐसा कहकर वह धनुषों में रत्न के समान गाण्डीव तथा बाणों से भरे हुए दो अक्षय एवं बड़े तरकस भी दिए

उससे अधिक हैं ।[१]

जिसे वह अपने शर से मार देती है वह वहीं गिर पड़ता है और एक पग भी आगे नहीं बढ़ पाता ।[२]

'मृगावती' में मृगावती की भौंहों को भी अर्जुन के बाण के सदृश बताया गया है ।[3] मृगावती, जिसको अपनी भौंहों के बाण से मारती है उसके ऊपर कोई औषधि, या तंत्र-मंत्र काम नहीं करता ।[४] चंदा की भाँति मृगावती को पारधो (बहेलिया) कहा गया है ।[५] 'पद्मावत' में भी धनुष से पद्मावती की भौंहों की तुलना की गई है किन्तु यहाँ जायसी ने यह भी कहा है कि वही धनुष कृष्ण के पास है। रामचन्द्र ने वही धनुष अपने हाथों में ग्रहण किया और उससे रावण का संहार किया । उसी धनुष से कंस का वध हुआ । राहु और सहस्रबाहु भी उसी धनुष से मारे गए ।[६] जायसी ने अपने दूसरे नखशिख में यह भी कहा है कि पद्मावती की भौंहों का बाण रग-रग को बेध देता है और उससे हृदय जर्जर हो जाता है ।[७] 'मधुमालती' में मंझन ने भौंहों को

"वह धनुष अद्भुत था । उसमें बड़ी शक्ति थी और वह यश और कीर्ति को बढ़ाने वाला था । किसी भी अस्त्र-शस्त्र से वह टूट नहीं सकता था और दूसरे सब शस्त्रों को नष्ट कर डालने की शक्ति उसमें मौजूद थी । उसका आकार सभी आयुधों से बढ़कर था । शत्रुओं की सेना को विदीर्ण करने वाला वह एक ही धनुष दूसरे लाख धनुषों के बराबर था । वह अपने धारण करने वाले के राष्ट्र को बढ़ाने वाला एवं विचित्र था । अनेक प्रकार के रंगों से उसकी शोभा होती थी । वह चिकना और छिद्र से रहित था । देवताओं, दानवों और गन्धर्वों ने अनन्त वर्षों तक उसकी पूजा की ।"

—**महाभारत, आदि पर्व, खाण्डवदाह २२४, ६–६,**
गीता प्रेस, गोरखपुर ।

१. अरजुन धनुक सरग मइ देखे, चांद भउंह गुन सोइ बिसेखे ।—**चांदायन, ६७।३**

२. सर तीखे जेंहि मारि फिरावइ, ठउर परइ सो पैग न जावइ ।
—**चांदायन, ६७।४**

३ भौंह धनुष जनु अरजुन केरा, बान मार जा सउं फिरि हेरा ।—**मृगावती, ५३।१**

४. भौंह फिराइ मार सरजाही, तंत न मंत न ओखद आही । —**मृगावती, ५३।४**

५. हौं रे मिरिग वह पारधि भई, बान बिसार मारि हनि गई ।—**मृगावती, ५३।५**

६. भौंहें स्याम धनुकु जनु ताना, जासौ हेर मार बिख बाना ।
उहै धनुक किरसुन पहं अहा, उहै धनुक राघौ कर गहा ।
उहै धनुक रावन संघारा, उहै धनुक कंसासुर मारा ।
—**पद्मावत, १०२।१, ३,**

७. तेत बानन्ह झांझर भा हिया । जेहि अस मार सो कैसें जिया ।
—**पद्मावत, ४७३।**

सोत सोत तन बेधा रोंव रोंव सब देह ।
नस नस मह् में सालहि हाड हाड भए बेह पद्मावत, ४७३ ८

कामदेव का दिया हुआ धनुष कहा है। उसकी भौंहों के धनुष से ही कामदेव ने त्रैलोक्य को जीत लिया।[१]

चंदा के नेत्र श्वेत और कलछौंहें हैं जो क्षण-क्षण ललछौंहें होते रहते हैं।[२] वे आम की फाँकों जैसे लगते हैं जिनमें मोती भरे हुए हैं।[३] वे नेत्र ऐसे लगते हैं मानों मदमत्त होकर डोल रहे हों या रात्रि-पवन ने उन्हें झकोरा दिया हो।[४] नेत्रों को समुद्र द्वारा छोड़ा गया मानिक्य भी कहा गया है।[५] इसके अतिरिक्त नेत्रों का आध्यात्मिक संकेत स्पष्ट करने के लिए उन्हें गहरा समुद्र भी कहा गया है जिसमें बड़ी-बड़ी नौकाएँ डूब जाती हैं और थाह नहीं मिलती।[६]

मृगावती के नेत्र भी श्वेत और रतनारे हैं किन्तु यहाँ 'मृगावती' में चित्रण भिन्न प्रकार का है। यहाँ नेत्रों की कमलपत्र से समानता दिखाई गई है जिन पर भ्रमर बैठे हुए हैं।[७] नेत्रों की चपलता 'मृगावती' में भी चित्रित की गई है और उन्हें मोम का दीपक बताया गया है जो सहज भाव से पवन का आधार लेकर झूम रहे हैं।[८] मृगावती के नेत्रों को उमड़ता हुआ समुद्र बताया गया है।[९] 'पद्मावत' में भी नेत्र की तुलना उमड़ते

---

१. भौंह नेवासि सोह कसबारी, मदन धनुक जनु धरा उतारी।

—मधुमालती, ८२।३

तेहिं धनु मदन तिरभुवन जीता, बहुरि उतारि नारिकहं दीता।

—मधुमालती, ८२।५

२. नैन सुरूप सेत मकरारे। खिन खिन बरन होहि रतनारे।—चांदायन, ६८।१

३. अम्ब फार जनु मोतिन्ह भरे। ते लइ भउँहन्ह के तरि धरे।

—चांदायन, ६८।२

४. डोलहिं सहज जानु मद पिया, कइ निसि पवन झकोरा दिया।
(डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'कह निसि पवन झकोरा दिया' में यह व्यंजना दी है कि मानो वे नेत्र दीपक हैं जिन्हें निशि पवन ने झकोरा दिया है।—चांदायन, पृष्ठ ६६ व्याख्या ३)

५. उलटि समुद जनौ मानिक रहे। राइ थाक कर गाँहि न गहे।

—चांदायन, ६८।४

६. नैन समुंद हैं (हइं) अति अवगाहा। बोहिथ बूड़ि न पावहिं थाहा।

—चांदायन, ६८।५

७. लोयन सेत बरन रतनारे। कंवल पत्र पर भंवर संवारे।
चपल बिलोल ते थिर न रहाँही। जनौ गज मोती तहाँ भवांही।

—मृगावती ५५।१-२

८ मदन दीप पदमिनि यस बारी झूमहिं सहज त ? पवन अधारी

हुए समुद्र से की गई है ।[1] 'मृगावती' की भाँति 'पद्मावत' में भी दोनों नखशिख वर्णनों में नेत्रों की कमल से तुलना करते हुए उन्हें भ्रमरों से आच्छादित बताया गया है ।[2] 'चंदायन', 'मृगावती' और 'पद्मावत' में जिस प्रकार भौंहों को पारधी (बहेलिया) के रूप में चित्रित किया है उसी प्रकार मंझन ने 'मधुमालती' में नेत्रों की तुलना पारधी से की है ।[3] 'मधुमालती' की कल्पना अधिक प्रखर है । यहाँ मंझन ने नेत्रों को पारधी कहा है जो भौंहों के धनुष लेकर लेटे हुए हैं ।

नेत्रों की चंचलता और तीक्ष्णता का वर्णन 'मधुमालती' में भी पाया जाता है और उन्हें खंजन पक्षी के समान बताया गया है ।[4] 'चंदायन' में नेत्रों के पश्चात् नाक का चित्रण किया गया है । मौलाना दाऊद ने मुख में नासिका का सौन्दर्य उस प्रकार बताया है जैसे आभरणों के ऊपर ग्रीवा में हार होता है ।[5]

शुक की नासिका की प्रशंसा लोक करता है किन्तु चंदा की नासिका का सौंदर्य उससे बढ़कर है ।[6] तिल के फूल जैसा उसकी नासिका का सौन्दर्य है ।[7] सोने के खड्ग जैसा उसका स्वरूप है ।[8] वह खस, परिमल, फूल, कस्तूरी सबका रस लेती है ।[9]

'मृगावती' में तिल के फूल की उपमा मृगावती की नाक से दी गई है ।[10] वह

---

१. नैन बांक सरि पूज न कोऊ । मान समुँद अस उलथहिं दोऊ ।
—पद्मावत, १०३।१

२. राते कंवल करहिं अलि भवां, घूमहिं माँति चहहिं अपसवां ।
—पद्मावत, १०३।२

नैन चित्र वै रूप चितेरे, कंवल पत्र पर मधुकर घेरें । —पद्मावत, ४७४।१

३. पारधि जनु अगनित जिउ हरे, पौढ़ें धनुक सीस तर धरें ।—मधुमालती, ८३।३

४. सनमुख मीन केलि जनु करहीं, कै जनु दुइ खंजन उड़ि लरहीं ।
—मधुमालती, ८३।४

५. मुँह मंह नांक देस क सिंगारू । जनु अभरन ऊपर गियं हारू ।
—चांदायन, ६६।१

६. सुवा नांक जो लोकि सराहा, तेहू चाहि अधिकु पै (पइ) आहा ।
—चांदायन, ६६।२

७. तिल क फूल जस फूल सुहावा, पदुमिनि नांक भाउ तस पावा ।
—चांदायन, ६६।४

८. नाक सरूप अइस मइ कहा, जानहु खरगु सोवन कर अहा ।
—चांदायन, ६६।५

९. बेना परिमल फूल कसतूरी सभै (भइ) बास रस लेइ ।
खिन मर खिन जिय राउ रूपचंद अरथ दरब्र सम देइ ।।—चांदायन, ६६।६,७

१० तिल के फूल जिसु उप्पम दीजै औरु कि जग महं सोम कहीजै
—मृगावती, ३६ ५

परिमल का बास लेना जानती है और षट् रसों की उसे जानकारी है।[1] 'पद्मावत' के प्रथम नखशिख में मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावती की नासिका के सौन्दर्य को खड्ग से बढ़कर बताया है।[2] शुक की नासिका प्रवाल जैसी कठोर होती है जबकि उसकी नासिका तिल के फूल जैसी कोमल है।[3] सुगंधित पुष्प उससे आशा रखते हैं कि वह उन्हें ग्रहण कर सुगंध लेगी।[4] जायसी ने द्वितीय नखशिख वर्णन में यह कहा है कि पद्मावती ने सुए से नासिका-खड्ग हर ली है।[5] उसकी नासिका तिल के पुष्प के सदृश कोमल है यह बात दूसरे नखशिख में भी दुहराई गई है।[6] 'मधुमालती' मे मंझन ने कहा है कि शुक के ठोर, खड्ग की धार और तिल के फूल से उसकी नासिका का साम्य नहीं बताया जा सकता। वह निशि दिन सुगंध के आधार पर जीवित रहती है।[7]

मौलाना दाऊद ने चंदा के अधरों को तरासा हुआ बताया है। ऐसा लगता है वे मनुष्य के रक्त के प्यासे हैं।[8] वे रक्त वर्ण के हैं जैसे इंगुर घोल कर उन पर अंकित कर दिया गया हो। उन होठों ने मनुष्य का रक्त पीना सीख लिया है।[9] सहज रूप में वे अरुण हैं जैसे सुन्दर रंग के प्रवाल हों। पान और सुपारी खाने के कारण वे अनुरंजित हैं।[10] उन अधरों पर खांड़ रखी हुई है।[11]

'मृगावती' में कुतुबन ने अधरों का चित्रण करते समय 'चंदायन' से सादृश्य

---

१. परिमल बास लेइ वह जानइ खट रस बिंदक नारि। —मृगावती, ५६।६
२. नासिक खरग देउं केहि जोगू। खरग खीन ओहि बदन संजोगू।
—पद्मावत, १०५।१
३. सुआ सो नाँक कठोर पँवारी, वह कोंवलि तिल पुहुप सँवारी।
—पद्मावत, १०५।४
४. पुहुप सुगंध करहिं सब आसा, मकु हिरकाइ लेइ हम बासा।
—पद्मावत, १०५।५
५. नासिक खरग हरे धनि कीरू, जोग सिंगार जिते औ बीरू।
—पद्मावत, ४७५।१
६. तिल क पुहुप अस नासिक तासू, औ सुगंध दीन्हेउ बिधि बासू।
—पद्मावत, ४७५।४
७. कीर ठोर औ खरग कै धारा, तिलक फूल मैं बरनि न पारा।
—मधुमालती, ८५।२
८. राजा और त अधर तरासे, जनु मनुसइ के रगत पियासे।—चांदायन, ७०।१
९. इंगुर घोरि दरेरइं लिखे, रगत पियइ मनुसइं कर सिखे। —चांदायन ७०।२
१०. सहज राउ जनु सुरंग पवारी, अउ औ रँगि राते पान सुपारी

विधान का आधार स्पष्ट रूप में ग्रहण किया है। मृगावती के दिव्य अधर ऐसे हैं मानो उन्होंने पान खाया हो ? अथवा उन पर शक्कर घोलकर रख दी गई हो।[1] मक्खन से भी सुहावने उसके अधर हैं मानों उनमें अमृत-रस ही आ गया हो।[2] उसके अधर अद्वितीय हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे अच्छे रंग का प्रवाल धर दिया गया हो।[3] 'मृगावती' का नायक राजकुमार कहता है कि उन अधरों ने मेरा रक्त पी लिया है।[4]

'पद्मावत' में अधर अमृत रस से भरे हुए हैं।[5] वे दुपहरी के फूल[6] जैसे रक्तिम हैं। जब-जब वह बात करती है, फूल झरते हैं।[7] पान का रंग लगते-लगते उसके अधर मंजीष्ठा[8] के रंग के हो गए हैं।[9] वे रुधिर से पूर्ण विहँसते हैं।[10] 'पद्मावत' के दूसरे नखशिख में अधर को पान जैसा क्षीण और लाल रंग का बताया गया है। वे अमृत के रस से भिने हुए हैं।[11] 'मधुमालती' में भी अधरों को अमिय रस से सुशोभित बताया गया है। वे प्रेम का वरण करने से रक्त के प्यासे हैं।[12]

अधर वर्णन के अनन्तर 'चंदायन' में सामने के चार दाँतों (चौके) का वर्णन किया गया है। चौके पानों के रंग से लाल हैं।[13] अधरों को अलग कर जब वह विहँ-

---

१. अधर सुरंग पान जनु खाए, कै रे घोरि सकर गहि लाए। —मृगावती, ६०।१

२ मक्खन लेखें अधर सुहाए, जानिय जानु अमिय रस आए।—मृगावती, ६०।३

३. एहि रंग अधर न देखेउं धाए, सुरंग पवार आन धरि लाए। मृगावती, ६०।४

४. रकत हमार अधर सेउं पिया, जासेउं बकति सगति........ —मृगावती, ६०।५
(रिक्त स्थान पर डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के पाठ में 'जिया' है।)

५. अधर सुरंग अमिय रस भरे, बिंब सुरंग लाजि बन फरे। —पद्मावत, १०६।१

६. दुपहरी का फूल—बंधूक पुष्प, यह हरी पंखुड़ियों का एक अत्यंत छोटा लाल फूल होता है और दोपहर में खिलता है।
देखिए, पद्मावत, सम्पादक—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, झांसी, संवत् २०१२ (प्रथम सं०), पृ० १०४।
पद्मावत—डा० माताप्रसाद गुप्त, इलाहाबाद, सन् १९६३, पृ० ९५।

७. फूल दुपहरी मानहुँ राता, फूल झरहिं जब-जब कह बाता।
—पद्मावत, १०६।२

८. मंजीष्ठा > मञ्जिष्ठा, एक लकड़ी जिससे गहरा लाल रंग निकलता है।
—पद्मावत, डा० गुप्त का संस्करण, पृ० ९५

९. भये मंजीठ पानन्ह रंग लागे, कुसुम रंग थिर रहा न आगे।
—पद्मावत, छंद १०६।३

१०. राता जगत देखि रँग राते, रुहिर भरे आछहिं विहँसाते।—पद्मावत, १०६।४

११. अधर सुरंग पान अस खीने। राते रंग अमिय रस भीने।—पद्मावत, ४७६।१

१२. अधर अमिय रस भरे सोहाए, पेम बरें हुत रगत तिसाए।—मधुमालती, ८७।१

१३ चौक भींनु पानन्ह रंगि राता अन्तरिन्ह लागि रहे जनु चांटा।

सती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि अंधेरी रात में बिजली कौंध गई।[1] उसके मुख के भीतर प्रकाश रहता है क्योंकि उसके दांतों के भीतर हीरे चमकते हैं।[2] दांत ऐसे लगते हैं जैसे सोने के खम्भे गढ़कर रखे गये हों अथवा सिगड़ी पर कोयले जलाकर रखे गये हों।[3] अनार (दाड़िम) की भांति उसके दांत देखकर रस की आशा में उसके चारों ओर भ्रमर और पक्षी लगे हुए हैं।[4] इसमें संभवतः मिस्सी को भ्रमर के सदृश बताया गया है।

'मृगावती' में भी 'चंदायन' की भाँति चार दांतों में हीरे चमक रहे हैं और दांत ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे गंभीर अंधेरी रात में दामिनी चमक जाय।[5] दांत ऐसे लगते हैं जैसे कुंज में भ्रमर हों। वे दांत दाड़िम के सदृश हैं जिनको किसी ने चखा नहीं है।[6] वे मकोय और पान में पगे हुए हैं।[7]

'पद्मावत' में चौके का वर्णन करते हुए जायसी ने प्रथम नखशिख में कहा है कि उसके चौके ऐसे प्रतीत होते हैं मानो हीरे बिठाये गये हों। उनके बीच-बीच में गभीर श्याम रंग (मिस्सी) है।[8] चौके ऐसे हैं मानो भादों की निशा में दामिनी दिखाई पड़ रही हो।[9] जायसी ने परम सौन्दर्य का बोध कराने के लिए यह कहा है कि हीरा में जो ज्योति है वह उन दांतों का ही प्रतिबिम्ब है। जिस दिन दांतों की ज्योति का निर्माण हुआ उससे अनेक ज्योतियाँ भास्वर हुईं। रवि और चन्द्र को उन्होंने ज्योति दी। रत्न और माणिक्य तथा मोती में सर्वत्र उसके दांतों से प्रकाश है। इस प्रकार जायसी ने समस्त प्रकाश का कारण पद्मावती को बताया है।[10]

---

१. अधर बिहरि जउ हंसउ गुवारी, बिजुरी लौकि रइनि अंधियारी।
—चांदायन, ७१।२

२. मुख भीतरि दीसइ उजियारा, हीरा दसन करहिं चमकारा।—चांदायन, ७१।३

३. सोवन खा (खां) ब जानु गढ़ि धरे, जानु सिगरि करि कोइला भरे।
—चांदायन, ७१।४

४. दारिउं दांत देखि रस आसा, भंवर पंखि लागे चहुँ पासा।—चांदायन, ७१।५

५. चौक जोति बैरागर हीरा, दामिनि चमकइ रैनि गंभीरा। —मृगावती, ६१।१

६. कंजहि कोरि भंवर भरि राखे। दारिवं दंत कांहु नहिं (चाखे ?)
—मृगावती, ६१।३

७. दसन मकोइ तंबोलहिं पागे। हंसत सहेलिन्ह सौंह (न ताके)।
—मृगावती, ६१।४

८. दसन चौक बैठे जनु हीरा, औ बिच-बिच रँग श्याम गँभीरा।
—पद्मावत १०७।१

९ जनु भादों निसि दामिनि दीसी चमकि उठी तसि सीनि बतीसी

'पद्मावत' के दूसरे नखशिख में भी दांतों का वर्णन है। दांत यहाँ पान के रंग में रंगे हुए हैं।[1] उसके दांतों के भीतर ऐसी दीप्ति है जैसे अनार और स्याम मकोइ हों।[2] जब वह नारी विहँसती है तो उसके चौके चमक उठते हैं जैसे अंधेरी रात मे बिजली चमक रही हो।[3]

'मधुमालती' में उपर्युक्त वर्णनों से दांतों के वर्णन में बहुत ही कम समानता है किन्तु जायसी के प्रथम नखशिख की भाँति यहाँ भी अपार्थिव दृष्टि परिलक्षित होती है। अधरों के खुलने पर जब दांत चमक उठते हैं तो तीनों भुवनों के मुनि गण चौंधिया कर भ्रमित हो जाते हैं। मंगल, गुरु, शुक्र, शनि सभी नक्षत्र उसके भय से छिप जाते हैं।[4] जब वह निद्रा में जरा भी विहँस देती है तो ऐसा भान होने लगता है कि स्वर्ग से दामिनी गिरी हो।[5] आध्यात्मिक दृष्टि स्पष्ट होते हुए भी 'चंदायन', 'मृगावती' तथा 'पद्मावत' से 'मधुमालती' की कल्पनाएँ यहाँ प्रायः भिन्न हैं।

जिह्वा के सम्बन्ध में मौलाना दाऊद ने कहा है कि चंदा की जिह्वा में अमृत-वाणी और पान फूल के रस के अतिरिक्त प्रेम कहानी विराजती है।[6] उसकी वाणी सुनने से नींद आ जाती है। दुख बिसर जाता है और रात्रि सुख से व्यतीत हो जाती है।[7] उसका मुख अमृत का कुंड है जिससे सहज वार्ता का रस निःसृत होता है।[8]

रबि ससि नखत दीन्हि ओहिं जोती, रतन पदारथ मानिक मोती।
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहिं हँसी, तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।

—पद्मावत, १०७।३, ४, ५, ६

१. दसन स्याम पानन्ह रंग पाके, बिहँसत कंवल भंवर अस ताके।

—पद्मावत, ४७७।१

२. चमतकार मुख भीतर होई। जस दारिवं औ स्याम मकोई। पद्मावत, ४७७।२

३. चमके चौक बिहंसु जौ नारी, बीज चमक जस निसि अंधियारी।

—पद्मावत, ४७७।३

४. बिहरत अधर दसन चमकाने, त्रिभुवन मुनि गन चौंधि भुलाने।

—मधुमालती, ८८।३

मंगर सूक गुरु सन्हि चारी, चौक दसन भय राजकुमारी।—मधुमालती, ८८।४

५. नेक बिगसाइ नींद महं हंसी, जानहुँ सरग सेउ दामिनि खसी।

—मधुमालती, ८८।२

६. चांद जीभि मुख अंबिरित बानी। पान फूल रस पिरम कहानी।

—चांदायन, ७२।१

७. पदुमिनि बचन नींद सुनि आवइ, दुख बिसरइ सुख रइनि बिहावइ।

—चांदायन, ७२।२

८. अंबिरित कुंड भएउ मुख नारी, सहज बात रस बहइ सुनारी।

चांदायन, ७२।३

जिह्वा मुँह में कमल के सदृश है। जिह्वा अधरों का पान कर उसकी छांव में रहती है।[1] या मुख में जिह्वा पान के सदृश है। जब वह बोलती है तो फूल झरते हैं।[2]

'मृगावती' में भी रसना को रसपूर्ण बताया गया है। कोकिल की वाणी की भाँति उसकी वाणी सुहावनी है।[3] उसकी काकली को सुनकर कोकिला उसे अन्य कोकिल समझ बैठती है। अतः वह आर्त्त होकर बोलने लगती है और संभार कर प्रेम-कथा कहती है।[4] उसकी जीभ मुख में कमल के सदृश है और जब वह हँस-हंस कर बोलती है तो फूल झरते है।[5]

'पद्मावत' के प्रथम नखशिख में भी रसना रस की बात कहती है और उसकी अमृत बाणी सुनकर मन अनुरक्त हो जाता है।[6] चातक और कोकिल उससे स्वर अपहरण करते हैं। वीणा और वंशी को भी वह ध्वनि नहीं मिली है। जायसी ने जिह्वा के बारे में एक अनूठी कल्पना की है। जिह्वा प्रेम-मधुर वाणी बोलती है। वह चार वेदों—ऋग्, यजु, साम, अथर्व सबको धारण करती है। उसकी एक-एक बोल में चौगुना अर्थ छिपा रहता है। इन्द्र, ब्रह्मा उस पर मोहित होकर अपने सिर धुनते हैं।[7]

---

१. कंवल के फूल जीभि तेहि माहां, अधर पान करि आछइ छाहां।
—**चांदायन**, ७२।४

२. पान कँधै (कइ दहुँ) मुख जीभि अमोला, फूल झरहिं जउ हंसि-हसि बोला।
—**चांदायन**, ७२।५

३. अति रसारि रसनां मुख ताही। बोलत बोल लाग चित चाही।
—**मृगावती**, ६२।१

बोल सुहाव सो कोकिल बानी, काकलि मांझ लखहिं सो आनी।
—**मृगावती**, ६२।२

४. कोकिल आरत बोलइ भारी। प्रेमकथा रस कहइं संभारी।—**मृगावती**, ६२।३

५. जीभ जानु मुख कंवल अमोला। फूल झरहिं जौ हंसि-हंसि बोला।
—**मृगावती**, ६२-५

६. रसना कहौं जो कह रस बाता। अंब्रित बचन सुनत मन राता।
—**पद्मावत**, १०८।१

७. हरै सो सुर चात्रिक कोकिला। बीन बंसि वह बैनु न मिला।
भरे पेम मधु बोलै बोला, सुनै सो माति घुमि कै डोला।
चतुर बेद मति सब ओहि पाहाँ, रिग जजु साम अथर्बन माहाँ।
एक-एक बोल अरथ चौगुना, इन्द्र मोह बरम्हा सिर धुना।
—**पद्मावत** १०८।२, ३ ४, ५

दूसरे नखशिख में भी जायसी ने रसना की रस की बात को सुनकर कोकिल का अनुरक्त होते बताया है।[१] उसकी जिह्वा ऐसी है मानो अमृत की कोंपल लगाई गई हो। उसकी बातें पत्र-पुष्प की भाँति सुहाती हैं।[२]

मंझन ने भी मधुमालती की जीभ को सुधा के समान बताया है और वह रसीले बचन बोलती है।[३] मंझन ने एक और उत्कृष्ट कल्पना की है कि मधुमालती की अमृतवाणी सुनकर मृतक के मुख में भी पानी भर आता है।[४]

श्रवन के वर्णन में मौलाना दाऊद ने कहा है कि चंदा के कान उन सीपों जैसे है जो घिसे हुए चन्दन से भरे हुए हों। वे कुमकुम वर्ण के अत्यन्त कोमल हैं।[५] न वे लम्बे हैं, न छोटे हैं, और न स्थूल हैं। कान ऐसे झलकते हैं जैसे कनक दीए हों।[६] उसके कान के बीरे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे कमल के पुष्प हों और आकाश के दो छोरों पर बिजली चमक रही हो।[७] गालों पर घी की चिकनाहट है मानो दो आरसियाँ लगी हों।[८]

'मृगावती' में भी कानों को सुमेल कहा गया है। न वे छोटे हैं न लम्बे हैं। सीप के समान वे संवारे हुए हैं और आंबे हुए कनक की भाँति हैं।[९] उनकी चमक ऐसी प्रतीत होती है जैसे दिशाओं में दमिनी हो।[१०]

---

१. रसना सुनहु जो कह रस बाता। कोकिल बैन सुनत मन राता।
—पद्मावत, ४७८।१

२. अंब्रित कोंप जीभ जनु लाई। पान फूल असि बात सुहाई।
—पद्मावत, ४७८।२

३. सुधा समान जीभ मुख बाला, औ बोलति अति बचन रसाला।
—मधुमालती, ६०।१

४. सुनत बचन वह अंब्रित बानी, मिर्तक मुख आवै भरि पानी।
—मधुमालती, ६०।२

५. स्रवन सीप चंदन घसि भरे। कूंकू बरन अतिय कोंवरे॥ —चांदायन, ७३।१

६. लाँब न छोट थूल नहिं तिए। कान कनक जनु झरकहिं दिए॥
—चांदायन, ७३।२

७. कंवरक फूल बीरिय अतिलोने। कौंधा सरगि लवहिं दुंहु कोने॥
—चांदायन, ७३।३

८. दुहूँ गालन्हि घिय कै चिकनाई। जानिय अरसी दुहूँ दिसि लाई॥
—चांदायन, ७३।४

९. स्रवन सुमेल छोट नहिं लांबे। सींप संवारि कंचन जनु आंबे।
—मृगावती, ५७।१

१०. झरकहिं दुहूँ दिसि दामिनि लवै। कै रे अगिनि मुख कुन्दन तवै॥
मृगावती, ५७।२

'चंदायन' और 'मृगावती' की भाँति 'पद्मावत' में भी कानों को सीप के समान कहा गया है, जिनमें कनक कुण्डल प्रकाशमान हैं।[1] मणि जटित कुण्डल ऐसे चमक रहे हैं जैसे दो कोनों में बिजली चमक रही हो।[2] 'चंदायन' की भाँति कान की तो नहीं पर कान के कुण्डल के खूँट की तुलना यहाँ दीप से की गई है।[3]

'पद्मावत' के दूसरे नखशिख में भी कानों को कुंदन सीपी के सदृश बताया गया है।[4] कुण्डल बिजली की भाँति प्रति क्षण हिलते हैं और अम्बर (वस्त्र) में ढंकते नहीं।[5]

अपने पूर्ववर्ती कवियों की भाँति मंझन ने भी कानों की तुलना सीप से की है जिनमें बीरियों के रूप में नक्षत्र जड़े हैं।[6]

'चंदायन' में नयन और श्रवण के बीच चन्दा के तिल का उल्लेख आता है। तिल को मौलाना दाऊद ने विरह का मसि बिंदु कहा है।[7] उसके मुख का सौभाग्य है कि तिल का संग उसे प्राप्त हुआ। तिल ऐसा लगता है कि कमल के सिर पर भुजंग बैठा हुआ हो।[8]

उस तिल के विरह में वन की घुँघुची जल गई। इसलिए वह आधी काली और आधी लाल हो गयी।[9] बाजिर रूपचन्द से कहता है कि उसके विरह के दाह में मुझे भी मरण का संदेह हो रहा है, और मेरा शरीर रक्तहीन होकर कोयला हो रहा है।[10]

---

१. स्रवन सीप दुइ दीप संवारे। कुण्डल कनक रचे उजियारे॥
—पद्मावत, ११०।१

२. मनि कुण्डल चमकहिं अति लोने। जनु कौंधा लौकहिं दुंहु कोने।
—पद्मावत, ११०।२

३. तेहि पर खूँट दीप दुइ बारे। दुइ ध्रुव दुऔ खूँट बैसारे। —पद्मावत, ११०।४

४. स्रवन सुनहु जो कुन्दन सीपी। पहिरें कुण्डल सिंघल दीपी।—पद्मावत, ४७६।१

५. खिन खिन करहिं बिज्जु अस काँपे। अम्बर मेघ महं रहहिं नहिं झाँपें।
—पद्मावत, ४७६।३

६. सुभर सीप दुइ सवन सोहाए। सरग नखत जनु बीरि जराए।
—मधुमालती, ६१।१

७. नैन सवन बिच तिलु एक परा। जानु विरह मंसि विन्दुका धरा।
—चांदायन, ७४।१

८. मुख के सोहागु भएउ तिल संगू। पदुम पुहुप सिर बइठ भुजंगू।
—चांदायन, ७४।२

९. तिल विरहें वन घुँघुची जरी। आधी कारि आधी रतफरी।
—चांदायन ७४।४

१० विरह दमध हौं हुउ मरन सनेहा रगत हीन कोइला भइ देहा

प्रकारान्तर से 'मृगावती' में भी तिल को विषधर कहा गया है।[1] बाजिर कहता है कि मैं उसके कपोलों को देख कर तप्त हो गया। मैं घूम पड़ा तब भी मूर्छा नहीं गई। और देवता लोग उसके कपोल पर अपना कपोल रखने के लिए उत्सुक हैं।[2]

'पद्मावत' के दूसरे नखशिख में तिल को विरह की चिनगारी की कला बताया गया है।[3] जो भी तिल को देखता है, दग्ध हो जाता है। तिल को देख कर ऐसा लगता है कि पद्म पर भंवर टूट गया हो और प्राण देने पर भी उससे अलग न हुआ हो।[4] राघव चेतन जो इस नखशिख का वर्णन अलाउद्दीन से कर रहा है, कहता है कि पद्मावती का तिल मेरे नेत्रों में गड़ गया और अब तिल को छोड़ कर कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।[5] 'मधुमालती' में भी एक भिन्न प्रकार से तिल की कल्पना की गई है। कुंवर के चक्षु उसके तिल पर लुब्ध हो गये। वे उनसे वापस नहीं आना चाहते। वह कहता है यह तिल नहीं है, वह मेरे नेत्र की छाया है जिससे उसके रूप और मुख ने शोभा प्राप्त की है। मधुमालती का निर्मल मुख अत्यन्त रूपवान है, वह सचमुच मुकुर सदृश है, उसमें मेरे चक्षुओं की छाया तिल के आकार की दिखाई पड़ती है।[6]

'चंदायन' में ग्रीवा का सौंदर्य वर्णन करते हुए बाजिर कहता है कि वह ऐसी

---

१. तिल विसहर पातर नहिं मोटे, जहाँ कपोल कनक वै खोटे।

—मृगावती, ५८।१

२. हौं कपोल वरि रहेउं तवाई, घूमि परेउं तांवर नहि जाई।
ओहि कपोल पर धरइ कपोला, सुर नर नाग सीस फुनि डोला।

—मृगावती, ५८।३,४

३. पुनि कपोल बाएँ तिल परा, सो तिल विरह चिनिगि कै करा।

—पद्मावत, ४८०।३

४. जो तिल देख जाइ डहि सोई, बांई दिृष्टि काहु जनि होई।
जानहुँ भँवर पदुम पर टूटा, जीउ दीन्ह औ दिएहूँ न छूटा।

—पद्मावत, ४८०।४,५

५. देखत तिल नैनन्ह गा गाड़ी, औरु न सूझैं सो तिल छांडी।—पद्मावत, ४८०।६

६. तिल जो परा मुख ऊपर आई, वरनि न गा किछु उपमा लाई।
जाई कुंवर चखु रूप लोभाने, हिलगे बहुरि न आवहिं आने।
तिल न होइ रे नैन कै छाया, जासेंउ सोभ रूप मुख पाया।
अति निरमल मुख मुकुर सरीखा, चखु छाया तामहं तिल दीखा।
श्याम कोंवर लोचन पुत्तरी, मुख निरमल पर तिल होइ परी।
अति सरूप मुख निरमल मुकुर समान प्रवान।
तामह चखु कै छाया दीसै तिल अनुमान —मधुमालती ८६

प्रतीत होती है जैसे कुम्हार ने चाक फिरा कर गढ़ी हो।[1] उसकी सराहना तैंतीस कोटि देवता करते हैं और कहते हैं कि उसने किसी की ग्रीवा उखाड़ कर जोड़ ली है।[2] ऐसी ग्रीवा किसी मनुष्य में नहीं है।[3] किसके लिए ऐसी ग्रीवा संवारी गई है, कौन उससे लग कर अंक पाली देगा।[4] (कहा नहीं जा सकता)

'मृगावती' की ग्रीवा ऐसी है मानो कुंदीगर ने उसे कुन्दी पर फिराया हो।[5] वह मयूर या पारावत की ग्रीवा जैसी है।[6] 'चंदायन' की भाँति 'मृगावती' में भी ग्रीवा की तुलना कटाह (एक प्रकार के घोड़े) की ग्रीवा से की गई है। यद्यपि 'मृगावती' में कहा गया है कि उसने कटाह घोड़े से ग्रीवा छीन ली है और ग्रीवा वालों की नेता बन गई है। (तुलनीय, ठासि धरा जनु चलाइ कियाहूँ चां० ७५।४ और 'गहें कयाह सहज ओहि नेंवा', मृ० ६३।२) 'मृगावती' में ग्रीवा की तीन रेखाओं का चित्रण है जिसका अन्य परवर्ती काव्यों में भी उपयोग हुआ है।

'पद्मावत' में ग्रीवा को क्रौञ्च के सदृश बताया गया है अथवा ऐसा लगता है वह स्तवक में लगा हुआ कंजनाल है।[7] ग्रीवा को मृगावती की भाँति यहाँ भी कुंदी पर चढ़ाकर गढ़ा गया है।[8] और उसे पारावत की ग्रीवा के समान बताया गया है।[9] पद्मावती को ग्रीवा में भी तीन रेखायें हैं।[10] 'पद्मावत' के दूसरे नखशिख में भी ग्रीवा की तुलना मयूर की ग्रीवा से की गई है।[11] उसकी ग्रीवा गर्दन उठाए हुए परेवा की भाँति है।[12] गर्दन में तीन रेखायें हैं।[13]

---

१. राजा गियं कइं सुनहु निकाई। जनु कुंभार धरि चाक फिराई॥ —चांदायन, ७५।१

२. देव सराहंहि तेतीसउ कोरी। गियं उचारि गहि लिहेसि अजोरी। —चांदायन, ७५।३

३. असि गियं मनुसहिं आथि न काहू। ठासि धरा जनु चलइ कियाहूँ। —चांदायन, ७५।४

४. का कहुँ असि गियं दई सवांरी। को तेहि लागि देय अंकवारी। —चांदायन, ७५।५

५. गीयं अनूप कहौं सुनुधाई। जानु कुंदेरइं कुंदि भंवाई। —मृगावती, ६३।१

६. गियं मंजूर कै धुरत परेवा। गहें कयाह सहज ओहि नेवां। —मृगावती, ६३।२

७. बरनों गीवँ कूँज कै रीसी। कंजनार जनु लागेउ सीसी। —पद्मावत, १११।१

८. कुंद फेरि जानु गिउ काढ़ी। हरी पूछारि ठगी जनु ठाढ़ी। —पद्मावत, १११।२

९. जनु हिय काढि परेवा ठाढ़ा, तेहिं ते अधिक भाउ गिउ बाढ़ा। —पद्मावत, १११।३

१०. पुनि तिहि ठाउं परी तिरि रेखा, घूँटत पीक लीक सब देखा। —पद्मावत, १११।६

११. गीवँ मजूर केरि जनु ठाढ़ी। कुंदे फेरि कँदेरैं काढ़ी। —पद्मावत, ४८१।१

१२. धुरत परेवा गींव उँचावा। चहै बोल तवँचूर सुनावा। —पद्मावत, ४८१।३

१३ पुनि तेहि ठाउ परी तिरिरेखा नैन ठाँव जिउ होइ सो देखा ४८१।६

'मधुमालती' में ग्रीवा को जैसे विक्रमा ने चाक फिरा कर गढ़ा हो।[१] ग्रीवा के साथ तीन रेखाओं का चित्रण यहाँ भी किया गया है।[२]

ग्रीवा के उपरान्त भुजाओं का वर्णन 'चंदायन' में आता है। मौलाना दाऊद का कहना है कि भुजदंडों की तुलना किससे करूँ। इस संसार में उसकी समानता करने वाली कोई वस्तु नहीं है। केले की गाभ उसके भुजदंडों के सदृश नहीं है। उसकी बाहें पद्मनालों से भी श्रेष्ठतर हैं।[३] उसकी लाल हथेलियां ऐसी हैं जैसे सिलौटे पर ईंगुर पीसा गया हो।[४] उसके हाथ ऐसे हैं मानो साले हुए पल्लव हों।[५] 'मृगावती' में भी भुजाओं को मृणाल कहा गया है।[६] 'मृगावती' के हाथों को पल्लव तो कहा गया है किन्तु उनकी उपमा यहाँ मूंग की छीमी से दी गई है।[७] 'पद्मावत' के प्रथम नखशिख में पद्मावती को भुजाओं को कनक-दंड के सदृश कहा गया है।[८] कदली के खम्भों से भी उसकी भुजाओं की उपमा दी गई है। उसकी हथेलियाँ रक्त में डूबी हुई हैं।[९] वह अंगूठी पहने हुई है जो नग जड़ी हुई है। संसार में जीवन नहीं है, जीवन उसकी मुट्ठी में है।[१०] 'पद्मावत' के दूसरे नखशिख में कनक-दंड सदृश भुजाएँ ऐसी लगती हैं जैसे कमल की नाल उलट कर लगाई गयी हो।[११] उसकी भुजाएँ चन्दन गाभ से संवारी हुई हैं।[१२] कमल की भाँति उसकी हथोरियां हैं। लगता है वे दोनों एक

---

१. गियं उपमा बरनौं केहि लाई। साइं बिसकरमैं चाक फिराई।
—मधुमालती, ९२।१

२. देखत तीनि कंठ कै रेखा। सजग सरीर होइ कस भेखा॥
—मधुमालती, ९२।५

३. कारि का गभ देखउं तस नाहीं। जनु पउनारि विसेखइ बाहीं॥
—चांदायन, ७५।२

४. इंगुर जइस सिलौटै (टइ) पीसा। रगत अरगत हथोरिन्ह दीसा॥
—चांदायन, ७६।३

५. कर पालउ जनु धरि-धरि सारे, पेड सहित पालउ सटकारे।—चांदायन, ७६।४

६. भुअवर आनि मृणाल सवांरे। मनुहं पेड पालौ सटकारे। —मृगावती, ६४।१

७. कर पालौ जनु मूंग कि छीमीं। नखन्ह जोति सत अधिक खीनीं।
—मृगावती, ६४।४

८. कनक दंड दुई भुजा कलाई। जानहुँ फेरि कुंदेरे भाई॥ —पद्मावत, ११२।१

९. जानहुँ रकत हथोरीं बूड़ीं। रबि परभात तात वह जूड़ी॥—पद्मावत, ११२।३

१०. औ पहिरें नग जरी अँगूठी। जग बिनु जीव जीव ओहि मूठी।
—पद्मावत, ११२।४

११. कनक दंड भुज बनी कलाई। डांडी कवँल फेरि जनु लाई॥
—पद्मावत, ४८२।१

१२ चदन गाभ की भुजा सँबारी जनु सुमेल कौंवलि पौनारी
, ४८२ २

कमल की जोड़ी हैं।[1] उसकी भुजाओं में जो कर-पल्लव हैं वे ऐसे लगते हैं जैसे वे हाथ सुष्ठु रक्त भरे हाथ हैं।[2] 'मधुमालती' में कल्पनाएँ भिन्न प्रकार की हैं। 'मधुमालती' की भुजाओं को स्वयं कामदेव ने गढ़ा है। उनकी बराबरी में कुछ नहीं है। उसकी कलाइयों को कामदेव ने खराद पर चढ़ा कर बनाया है (मधुमालती, ९३)। 'मधुमालती' की भुजाओं पर हथेलियाँ ऐसी हैं मानो स्फटिक शिलाएँ ईंगुर से पूरित हों।[3] उसने विरहियों को यहाँ तक मारा है कि उनके रक्त से उसके दस नख लाल हैं।[4] 'चंदायन' में चंदा के उरोज ऐसे हैं जैसे सोने के थाल रखे हों जिनमें रत्न पदार्थ और माणिक्य भरे हों।[5] वे सिंदूर भरे हुए सिंधौरा जैसे हैं, उन स्तनों को कुंदीगर ने खराद कर बनाया है।[6] वे उठे हुए हैं, नारंगों की भाँति हैं। उनको न सूर्य देख पाता है, न पवन स्पर्श कर पाता है।[7] वे स्तन भरे हुए समुद्र की भाँति लहरित हो रहे हैं। उसके कुचाग्र ऐसे हैं जैसे पद्मिनी का रस भ्रमर ले रहे हों।[8] ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उसके हृदय पर अमृत के बेल उत्पन्न हुए हों या हृदय पर सजे हुए कटोरे रखे गये हों।[9] मृगावती में कुचों की कुंभस्थल से तुलना की गई है। वे कमल के सदृश ऊँचे उठे हुए हैं और कुचाग्र भंवर के रंग के हैं जो उस पर बैठे हुए हैं।[10] 'पद्मावत' के प्रथम नखशिख में 'चंदायन' की भाँति ही कुचों को सोने का कटोरा कहा गया है। उन्हें कंचन लड्डू भी कहा गया है।[11]

---

१. तिन्ह डाँडिन्ह वह कँवल हथोरी। एक कँवल कै दूनौ जोरी।।
—पद्मावत, ४८२।३

२. कर पल्लव जो हथोरिन्ह साथाँ। वै सुठि रकत भरे दुहुँ हाथाँ।।
—पद्मावत, ४८२।५

३. औतिन्ह पर दुई सुभर हथोरी। फटिक सिला जनु ईंगुर पूरी।।
—मधुमालती, ९३।४

४. बिरही जन जहवाँ लहि मारे। तिन्हके रकत दस नख रतनारे।।
—मधुमालती, ९३।५

५. सोवन थार हिएं जनु धरे। रतन पदारथ मानिक भरे।। —चांदायन, ७७।१

६. सहज सेंद (घ) उरा सेंदुर भहरे। थनहर फेरि कुंदेरइं धरे।।
—चांदायन, ७७।२

७. नारिंग थनहर उठे अमोला। सूर न देखइ पवनु न डोला।। — चांदायन, ७७।३

८. समुंद भरा जनु लहरइं देईं, पोइनि क रस भंवरइ लेईं।। —चांदायन, ७७।४

९. अंब्रित हिरदेउं बेल उपाये। साजि कचोरा हिरदेउं लाए।।—चांदायन, ७७।५

१०. कठिन कठोर पयोहर नारी। जनु कुंभ स्थल सदल संभारी।।
कंवल वरन कुच उठे अमोला। तेहि पर बैठ भंवर रंग भोला।।
—मृगावती ६७।१ २

११ हिया थार कुच कचन लाड़ू कनक कचोर उठे करि चाड़ू

खरादे हुए कुंदन के बेल से 'चंदायन' की ही भाँति 'पद्मावत' में भी उपमा दी गई है।[1] उन्हें उत्तुंग जंभीरा भी कहा गया है।[2] जबकि 'चंदायन' में नारंगी से कुचों की तुलना की गई है।

'पद्मावत' के दूसरे नखशिख में उरोजों को हृदय-थाल में कटोरा बताया गया है। वे ऐसे हैं जैसे श्रीफल के जोड़े सजे हुए हों।[3] वे एक साथ नाचते हुए दो लट्टू हैं। जग उन पर लट्टू हो रहा है पर वे उनके हाथ नहीं आ रहे हैं।[4]

'मधुमालती' में कुचों को भिन्न प्रकार से चित्रित किया गया है। यहाँ उन्हे महावीर और जुझारू बताया गया है (मधुमालती, ९५)।

'चंदायन' में पेट को खाँड से भरा हुआ बताया गया है। जहाँ भी वह दिखाई पडता है, कूट दिखाई पड़ता है।[5] वह घी में पकाई हुई सोहारी की भाँति है और फल-फूल जैसा क्षीण है।[6] उसकी नाभि कुंड को जो वीर देखता है वह उसमें डूब जाता है और पार नहीं पाता।[7] उसके पेट में ऐसा प्रतीत होता है कि आँत नहीं है, अंतरिक्ष के चन्द्र की प्रतिच्छाया वहाँ दिखाई पड़ती है।[8]

'मृगावती' में पेट को लैनु से कमाया हुआ चित्रित किया गया है।[9] पेट पर झिल्लियां हैं जो ऐसी लगती हैं कि घी में पकायी हुई पूड़ियाँ हों।[10] मृगावती का पेट अति कृश है जैसे उसमें आंतें ही नहीं हों।[11] मृगावती का नाभि कुंड ऐसा है जैसे स्वर्ण का कुंड गाड़ा गया हो।[12] 'पद्मावत' के प्रथम नखशिख में पेट को चंदन का पत्र

---

१. कुंदन बेल साजि जनु कूंदे। अंम्रित भरे रतन दइ मूंदे ॥—**पद्मावत, ११३।२**
२. उतंग जंभीर होइ रखवारी। छुई को सके राजा कै बारी ॥—**पद्मावत, ११३।६**
३. हिया थार कुच कनक कचोरा। साजे जनहुँ सिरीफल जोरा।
—**पद्मावत, ४८३।१**
४. जानहुँ लट्टू दुऔ एक सार्थां। जग भा लट्टू चढ़ै नहीं हार्थां।
—**पद्मावत, ४८३।३**
५. पूरन खांड सपूरन पूरे। जहवां दीसहिं तहवां कूरे ॥ —**चांदायन, ७८।२**
६. जानु सोहारी घिरित पकाई। देखत पान फूल पतराई। —**चांदायन, ७८।३**
७. नाभी कुंड जऊ देखई बीरू। देखतहिं बूड न पावइ तीरू ॥—**चांदायन, ७८।४**
८. जानों आंत पेट महिं नाहीं। अंतरिक (ख) चांद दीस परछाहीं ॥
—**चांदायन, ७८।५**
९. नैनू महं कै पेट कमावा। कै जनु पाट पछेंव फिरावा। —**मृगावती, ६९।१**
१०. पातर पेट कहौं झिरियाई। पूरी जानु घिवार पकाई ॥ —**मृगावती, ६९।३**
११. आंत काढ़ि कै जानु पवारी। सीठि चार किय जनौं बुहारी ॥
मृगावती, ६९।२
१२. नाभी देखत जाइ न छाडी। कनक कुंड जनु आनि कै गाडी ॥
—**मृगावती ६९।४**

कहा गया है, जो कुंकुम वर्ण का है।[१] फिर रोमावलि और नाभि कुंड का वर्णन है। उसकी नाभि कुंड के सम्मुख नही हो सकता है जो मृत्यु का वरण करने के लिए तैयार हो। उस कुंड में मृत्यु बसती है।[२] पद्मावती के दूसरे नखशिख में पेट को अति कृश बताया गया है और उसे पूड़ी की भाँति बताया गया है।[3]

'मधुमालती' में भी पेट को कृश बताया गया है। लगता है विधाता ने उसे बिना अंतड़ियों के बनाया है।[४] 'मधुमालती' में रोमावलि और नाभि कुंड का चित्रण विस्तार से किया गया है। रोमावलि विष से भरी नागिन है जो (नाभि) विवर का अनुसरण कर रही है।[५] क्षीण कटि का भी वर्णन मंझन ने किया है। वह ऐसी लगती है मानो नितम्ब के भार से टूट कर गिर जायेगी।[६]

पेट के चित्रण के उपरान्त मौलाना दाऊद 'चंदायन' में पीठ का चित्रण करते हैं। पीठ किसी कुशल कारीगर द्वारा साँचे में ढाल कर निर्मित है।[७] उसकी कटि मानो हल्के पाट (रेशम) का डोरा हो। पेट के स्थान पर उसमें एक सहस्र मोड़ है।[८] चंदा की लंक बाल जैसी पतली है।[९] बर्रे की लंक से भी विशिष्ट उसकी लंक है।[१०] फूंकते ही वह टूट कर आधा हो जाती है। आँखें उसे देख कर प्राप्त करने की इच्छा करती हैं।[११]

'मृगावती' में शंख से घोंटकर उसकी पीठ संवारी गई है। लगता है वह साँचे मे ढाली गई मोम है।[१२] उसकी पीठ में न दीप्त और रेखायें हैं।[१३] 'पद्मावत'

---

१. पेट पत्र चंदन जनु लावा। कुँकंह केसरि बरनि सुहावा।।—**पद्मावत, ११४।१**
२. नाभी कुंडर बानारसी। सौंह को होइ मीचु तहं बसी।।—**पद्मावत, ११४।७**
३. पातर पेट आहि जनु पूरी। पान अधार फूल अस कोंवरी।।—**पद्मावत, ४८३।१**
४. पातर पेट सरूप सुहावा। जनु विधि बाझु अंत निरमावा।।—**मधुमालती, ९६।३**
५. रोमावलि नागिनि विस भरी। जनु करि हुतें बिबर अनुसरी।।
—**मधुमालती, ९६।१**
६. लंक झीनि देखि जिउ डरई। भार नितम्ब टूटि जनि परई।।
—**मधुमालती, ९६।४**
७. घोटिहि घोटि पीठि बइसारी। कइ रे बिनानी सांचइं ढारी।।
—**चांदायन, ७९।१**
८ कटि जनु हीन पाट कर डोरा। पेट ठाउँ सहस इक मोरा।।—**चांदायन ७९।२**
९ लंक बार जसि दीठि न आवइ चांद चीर महि मरम दिखावइ

के प्रथम नखशिख वर्णन में उसकी पीठ मलयगिरि चन्दन की बनी हुई है।[1] उसकी वेणी ऐसी लगती है मानो चन्दन ने भुजंगों को आवास दिया है।[2] 'मृगावती' में भी पीठ के साथ वेणी का चित्रण है।[3] 'पद्मावत' के दूसरे नखशिख और 'मधुमालती' में पीठ का वर्णन नहीं है।

पीठ का चित्रण करने के अनन्तर मौलाना दाऊद ने चंदा के पैरों का वर्णन किया है। उसके पैर ऐसे हैं जैसे गरुड़ खम्भ हों और दो भागों में चीर कर उन्हे रख दिया गया हो। जब वह चलती है तो अपूर्व अवसर उपस्थित हो जाता है।[4]

चंदा के पैरों को देख कर सुन्दर रंग के प्रवाल भी मोहित हो गये।[5] उसका चलना देखकर यदि लोग पालागन करें तो कितने पुरुषों का पाप भाग जाता है।[6] उस रूप की पुतली में गढ़ कर दस नख बनाये गये हैं। उसके तलवे ऐसे लगते हैं जैसे उनमें रक्त फूट कर प्रवाहित हो रहा हो।[7]

'मृगावती' में जांघों के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे जाघें ऐसी हैं मानो संसार के दो सुहावने कदली स्तम्भ हों[8]। उसकी जांघों को देख कर कोई पार नहीं पा सकता। उनमें जैसे सिन्दूर लगाया गया हो।[9] वे ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानो मलयगिरि के संवारे और पल्लवों से चिक्कण किये हुए पेड़ हों।[10] पैरों के तलवे ऐसे हैं मानो घोल कर उनमें महावर लगा हो।[11] मन में ऐसे आया कि सिर को भूमि पर रखता और जब वह भूमि पर पांव रखती तो उसका रंग चखता।[12]

---

१. मलयागिरि कै पीठि संवारी। बैनी नाग चढ़ा जनु कारी।—पद्मावत, ११५।२
२. दहुँ का कहं असि बेनी कीन्ही। चंदन बास भुअंगन्ह दीन्ही॥
—पद्मावत, ११५।३
३. बिखम भुअंगम बेनी भई। मारग ओही सीस सो गई॥ —मृगावती, ६५।५
४. गरुर खंभ दुइ चीरि फिराए। चांद चलन अपुरब घड़ि लाये॥
—चांदायन, ८०।१
५. अउ समतूल दीखि असि धारा। देखिवि मोहे सुरंग पंवारा॥
—चांदायन, ८०।२
६. अउ ओहि चलन देखि पांलागहि। पापकेत पुरुसन्ह कर भागहि॥
—चांदायन, ८०।४
७. रूप पुतरि घड़ि दस नख लावा। तरुवन्ह रगत फूटि चलि आवा॥
—चांदायन, ८०।५
८. कदलि खम्भ दुइ जगत सुहाए। ओहिक चीर आनि पहिराए॥
—मृगावती, ७०।१
९. देखेउँ जंघ पार नहि पावा। कनक हेर सेंदुर जनु लावा॥—मृगावती, ७०।२
१०. कै मलयागिरि केर संवारे। सुभर पेड़ पालव सटकारे॥ —मृगावती, ७०।३
११. चलत अन्त तरुवन्ह के पावा। जानहु घोरि महावर लावा॥—मृगावती, ७०।४
१२. मन महं अस भा वरु हियं राखौं। पाव धरय तहँ तिन्ह रंग चाखौं॥
मृगावती ७०

'पद्मावत' के प्रथम नखशिख में जंघों का वर्णन नितम्बों के साथ आता है। उसके दो जंघे ऐसे सुशोभित हैं जैसे केले के खम्भ उलट कर रख दिये गये हों।[1] कमल जैसे चरण विशेष रूप से रक्त वर्ण हैं।[2] देवता हाथ में उसका चरण लेते है। जहाँ उसका पैर पड़ता है वहाँ शीश देते हैं।[3] उसके पैरों में पड़े हुए चूड़े उज्ज्वल चन्द्र सूर्य हैं, पायल विद्युत हैं जो चमत्कार करते रहते हैं।[4]

'मधुमालती' में भी जंघों का वर्णन आता है। जुगुल जंघ देख कर कवि कहता है कि मेरा मन थहरा उठा।[5] उसके पैरों के तलवे रक्त वर्ण के, श्वेत वर्ण के और कोमल हैं।[6] मधुमालती के पांव उलट कर रखे हुए कनक कदली और गज के सूंड के आकार के हैं।

'चंदायन' में चंदा की गति का चित्रण महत्त्वपूर्ण है। वह हंस की गति वाली है, वह धन्या झमक-झमक कर पांव उठाती है। बाजिर कहता है कि मैंने संकल्प किया कि जहाँ पर चंदा पैर रखेगी, मैं भूमि पर सिर रखूँगा और अपनी जिह्वा को निकाल कर उसके दोनों तलवों को मार्जित करूँगा।[7]

'मृगावती', 'पद्मावत' और 'मधुमालती' में गति या चाल का चित्रण नहीं हैं। 'चंदायन' के छंद ८२ में चन्दा के शरीर का वर्णन है। उसका शरीर ऐसा है जैसे

---

१. बरनौं नितम्ब लंक कइ सोभा। औ गज गवन देखि सब लोभा॥
जुरे जंघ सोभा अति पाए। केरा खांभ फेरि जनु लाए॥
—पद्मावत, ११८।२

२. कंवल चरन अति रात विसेखे। रहहिं पाट पर पुहुमिन देखे॥
—पद्मावत, ११८।३

३. देवता हाथ हाथ पगु लेहीं। पगु पर जहाँ सीस तहँ देहीं॥
—पद्मावत, ११८।४

४. चूरा चांद सुरुज उजियारा। पायल बीजु करहिं चमकारा॥
—पद्मावत, ११८।६

५. जुगुल जंघ देखि मन थहराई। भरमेउ जीउ किछु कहा न जाई॥
—मधुमालती, ९७ ४

६. रातें कोंवल सेत सोहाए। तरुवन्ह कंवल पटतर जिमि लाए।
—मधुमालती, ९७।५

७. जमक जमक पउ धरती धरा। छनक छनक जनु पंगति भरा।
मेलि मेल्हाति सो चांदा आवइ। जानउं गयंबरु पैग उचावइ॥
सिर भुइं धरउं चांद धरपाऊ। पातर हुतें न काढउं रे काऊ॥
पाकइ धूरि नैन भरि बाजउ जीभ काढ़ि दोउ तरुवा मांजउ
छन्द ८१

सटकारी लहर हो जो चंदन तथा जायफल मिलाकर संवारी गई हो।[1] मानो उसे बास के पोर में से काढ़ा गया हो। मैने उसको अप्सरा जैसी खड़ी देखा।[2] वह स्वर्ग तक जाकर लग जाती थी।[3] उसके अंग से पुष्प कली जैसी गंध आ रही थी और ऐसा लगता था जैसे चारों ओर वसन्त ऋतु लौट आयी हो।[4] उसके अंग की सुवास से नौ खण्ड महक उठे थे।[5]इन्द्र, गोपेन्द्र, चन्द्र, दिनकर, ब्रह्मा, विष्णु, मुरारि, गण, गंधर्व, ऋषि और देवता सभी उस नारी को देख कर विमोहित हो गये हैं।[6]

स्पष्ट है कि मौलाना दाऊद ने यहाँ चंदा को अलौकिक व्यक्तित्व प्रदान किया है। 'मृगावती', 'पद्मावत', 'मधुमालती' आदि में इस प्रकार से शरीर का चित्रण अलग से नहीं किया गया है। 'चंदायन' के छंद ८३ में चंदा के वस्त्रों और छंद ८४ मे आभरणों का चित्रण है। छंद ८५ में चंदा के पादत्री का वर्णन है और बाजिर चन्दा के चरण स्पर्श की इच्छा व्यक्त करता है।[7] इस प्रकार का चित्रण भी परवर्ती सूफी काव्यों मे प्राप्त नहीं होता।

नखशिख के उपर्युक्त विवेचन से दो बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम तो यह कि 'चंदायन' का प्रभाव 'मृगावती', 'पद्मावत' और 'मधुमालती' आदि समस्त प्रेमाख्यानों पर है। 'चंदायन' की अनेक उक्तियां, उपमाएँ और कल्पनाएँ परवर्ती कवियों ने ग्रहण कर ली हैं। दूसरी बात यह कि 'चंदायन' के नखशिख मे आध्यात्मिक संकेत विद्यमान हैं और कुछ विद्वानों का यह मत है कि 'चंदायन' मात्र

---

१. लग जैसे लहरि लहरि सटकारी। चंदन जइफर मेरइ संवारी।

—चांदायन, ८२।१

२. बांस पोर हुत जनि धरि काढी। आछरि जइसि देखि मइं ठाड़ी।।

—चांदायन, ८२।३

३. सरग पवान लागि जनु आई। चाहति अइसंइ जाइ उडाई।।

—चांदायन, ८२।२

४. करी पुहुप तस अंग गंधाई। रितु वसन्त चहुँ दिसि फिरि आई।।

—चांदायन, ८२।

५. अंग वासु नव खण्ड गंधाने। कुसुम केतकी भंवर लुभाने।।

—चांदायन, ८२।

६. यंदु (इंदु) गोयंदु (गोइंदु) चंद अरु दिनियर बरंभा बिसुन मुरारि।
गन गंध्रप रिखि देवता देखि विमोहे नारि।।

—चांदायन, ८२।६,

७. चांद चलन जौ पयकु (पैगु) उचावै। पाई चमाऊ लटकतु आवै।।
जिउ अस कहै कि देखत रहिए लागै पाउ सीस धौं छुहिये

, ८५ १,

नक्षत्र चांद के आभरण थे, अब वे चंदा के शृङ्गार के आभरण हो रहे हैं।[1] बाजिर उसके चरणों को हृदय से लगाने के लिए आतुर है (८५।४)।

ये समस्त संकेत चंदा को अलौकिक व्यक्तित्व प्रदान करने के लिए पर्याप्त हैं। अत्युक्तियों का उपयोग परम सौंदर्य का, जो संसार की समस्त सुन्दरताओं का मूल कारण है, बोध कराने के लिए किया गया है। रूपचन्द्र बाजिर के मुख से उसके रूप सौंदर्य की झलक पाता है और उसके विरह में तप्त हो उठता है।

१. चूरा, नेवरु, पायर पैंजनि, गोवर होइ झनकार।
नखत चांद कर अभरन अभरन चांद सिंगार॥ —**चांदायन**, ८४।६,७

२

'चंदायन' के दो संस्करण

'चंदायन' का रचयिता मौलाना दाऊद उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के डलमऊ का निवासी था और उसका समसामयिक बादशाह फीरोज़शाह तुग़लक था ।[1] इस रचना के तब तक प्राप्त छंदों का एक पाठ डा० माताप्रसाद गुप्त ने सन् १९६२ में, हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा से प्रकाशित कराया था । डा० गुप्त को उस समय केवल चार खंडित प्रतियां प्राप्त थीं, वे क्रमशः कला भवन काशी, मनेर शरीफ़ (बिहार) तथा शिमला संग्रहालय की थीं । डा० गुप्त उस संस्करण में केवल ८० छंदों का उद्धार कर सके थे । उसी संस्करण में भोपाल की एक खंडित प्रति के ६४ छंदों का पाठ डा० विश्वनाथ प्रसाद ने भी प्रस्तुत किया था । इस प्रकार 'चंदायन' के अध्ययन की एक भूमिका सन् १९६२ में तैयार हो गई थी । सन् १९६४ में डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने बम्बई से एक अन्य संस्करण प्रकाशित कराया जिसमें उन्होंने मैनचेस्टर के रीलैंड्स पुस्तकालय में प्राप्त एक बृहद् पाठ का उपयोग किया । उनके समक्ष बंबई, मनेर शरीफ़, पंजाब और काशी की खंडित प्रतियां तथा अमरीका के होफर-संग्रह (हारवर्ड) के दो पृष्ठ भी थे । डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने वैज्ञानिक ढंग से सम्पादित पाठ प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया । 'चंदायन' की भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि "प्रस्तुत प्रयत्न ग्रन्थ की उपलब्ध सामग्री को फारसी लिपि से नागराक्षरों में प्रस्तुत कर उन्हें क्रमबद्ध कर देने तक ही सीमित है ।"[2] डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के संस्करण में छंदों की संख्या ४५२ दी गई है । किन्तु वास्तव में छंद लगभग ३९० हैं । वैज्ञानिक सम्पादन पद्धति का उपयोग न कर सकने के कारण

लौकिक प्रेमाख्यान है, स्वीकार्य नहीं है (देखिए, परमेश्वरीलाल गुप्त द्वारा सम्पादित 'चन्दायन की भूमिका', बम्बई १९६४)। 'चंदायन' के निम्नलिखित संकेतों की ओर ध्यान देने पर उसकी पारमार्थिकता प्रकट हो जाती है :—

छंद ६४ में मौलाना दाऊद ने यह कहा है कि उसकी मांग की सुभगता से अनुरक्त होकर जग फाग खेलता है। यहां प्रेम के उदय का संकेत है। उसकी माग को देख कर संसार में प्रेम अंकुरित हो जाता है। उसकी मांग के प्रकाश से समस्त देशों में प्रकाश होता है। मांग का वर्णन सुन कर रूपचन्द के मन में प्रेम उदित हो जाता है और वह कहता है कि ऐ बाजिर, लगता है तुम मुझे बेपाय कर दोगे।[1] प्रेम का यह घाव केश का वर्णन सुन कर और गहरा हो जाता है और वह मूर्छित हो उठता है। उस पर ऐसा विष चढ़ जाता है कि गारुड़ी भी अच्छा नहीं कर सकता।[2] देवता लोग चन्दा की ललाट को देख कर विमुग्ध हो जाते हैं। लोक और कुटुम्ब छोड़ कर वह चन्दा की सेवा करते हैं (६६।१)। समस्त जगत ने उसके प्रकाश को सूर्य और चन्द्र के रूप में देखा है (६६।५)। जब राजा ने उसके प्रकाश का आभास पाया तब उसका विष किंचित् उतर गया और राजा ने करवट ली।[3]

जिसे वह अपने नेत्रों के तीक्ष्ण बाणों से मार देती है वह वहीं तत्काल गिर पड़ता है और एक पग भी आगे बढ़ना कठिन हो जाता है (६७।३)। राजा रूपचन्द चन्दा के प्रेम के मोह में मृग की भांति फंस जाता है (६७।६,७)। चंदा के नेत्र में अनेक राजे बैठे हुए हैं। वह सामान्य नारी नहीं है, वह आकाश में जाकर बैठी हुई है (६८।६,७)।

मौलाना दाऊद ने चंदा के तिल का वर्णन किया है। वह विरह का मसि-बिंदु है। उसने नखशिख वर्णन करने वाले बाजिर को भी दग्ध कर दिया और वह कहता है कि उसके विरह के दाह के कारण मुझे मरण का संदेह हो रहा है और मेरा शरीर रक्तहीन होकर कोयला हो गया है (७४।५)। तिल ने राजा के हृदय में विरह उत्पन्न कर दिया और उसके विरह की अग्नि और बढ़ती जा रही थी।[4] विरह सूफी

---

१. राउ रूपचन्द बोला वहुरि इहइ खंड गाउ।
मांग सुनत मनु राता बाजुर करवि बिपाउ॥ —चांदायन, ६४।६,७

२. डंकु चढ़ा विसु राजा परा लहरि मुरुझाइ।
बात सुनत जेहि विसु चढ़ गारुरि कासु कराइ॥ —चांदायन, ६५।६,७

३. सूर चढ़ा विसु उतरा राजइं करवट लीत।
सुनि लिलार उठि बैठा बाजुर कंचन दीत॥ —चांदायन, ६६।६,७

४ तिल संजोप बाजुर सिर कीन्हेउ ओहट मा पउजाइ
राजा हियें आगि परजारी विल तिल जरि न बुझाइ चांदायन, ७४ ६,७

दर्शन का प्राण तत्त्व है। चंदा को मौलाना दाऊद ने अलौकिक रूप दे दिया है। उसकी नाभि कुंड को देख भर लेने से व्यक्ति उसमें डूब जाता है और उसे तट नहीं मिलता (७८।४)। उसके कृश उदर में अन्तरिक्ष के चन्द्र की प्रतिच्छाया दिखाई पड़ती है (७८।५)। उदर का वर्णन सुनकर रूपचन्द्र इस प्रकार सौंदर्य सागर में डूब जाता है कि उसको तट पर पहुँचना कठिन हो रहा है।[1] मौलाना दाऊद ने कहा है कि उसके सौंदर्य के सरोवर में तैरने वाले को बहुत चतुर होना चाहिए। वह मूर्ख है जो तैरना न जाने और उसके सौंदर्य सरोवर में पैर रखे। राजा रूपचन्द्र भी अपरिपक्व प्रेमी है, अतः डूबते डूबते बच गया।[2]

चंदा के चरणों के स्पर्श से पुरुषों के पाप मिट जाते हैं (८०।४)। बाजिर कहता है कि मैं उसके पैरों पर पड़ कर मुख देखता रह गया किन्तु वह उत्तर नहीं देती। यह सुन कर राजा बेसंभाल हो गया और मर-मर कर साँसें लेने लगा।[3] बाजिर यह भी कहता है कि यदि चंदा धरती पर पाँव रखे तो वहाँ मैं अपना मस्तक रखूँ (८१।४)। उनके पैरों की धूलि से नैन में आंजन करूँ और जीभ से उसका तलवा साफ करूँ (८१।५)। रूपचन्द्र का हाथ उसके चरणों तक नहीं पहुँच सकता इसलिए वह आँसू बहा रहा है।[4] पुष्पकलिका की भाँति उसका शरीर सुगन्धित हो रहा था। उसके शरीर की सुगन्ध से चारों दिशाओं में वसन्त ऋतु उपस्थित हो जाती है (८२।४)। उसके अङ्ग के सुवास से नौ खण्ड सुगंधित होते हैं (८२।५)। इन्द्र, गोपेन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, मुरारि, गण, गंधर्व, ऋषि और देवता उसके रूप सौंदर्य पर मुग्ध हो जाते हैं।[5]

इस कथन से स्पष्ट होता है कि वह देवताओं से भी श्रेष्ठ तत्त्व है। और उसको सामान्य भूमिका से उठाकर परम तत्त्व की सीमा में मौलाना दाऊद ने पहुँचा दिया है। एक स्थान पर उसे अप्सरा भी कहा गया है (८३।६,७)। उसके पैरों में चूड़े, नूपुर, पायल आदि हैं जिनसे गोबर में झंकार होती रहती है। ऐसा लगता है जो

---

१. अति अवगाह पेट अस बाजुर ता महं सूझ न नीरु।
सुनि कइ राउ दौरि घसि लीते बूड़ि न पावइ तीरु॥ —चांदायन, ७८।६,७

२. मुरिखु होइ जो तिरइ न जानइ छीलरि बौडे पाउ।
करि गुन गहे वइठ भा बूड़त काढ़ा राउ॥ —चांदायन, ७९।६,७

३. पाइ परउं मुख जोवउं सो धनि उतरु न देइ।
सुनत राउ विसंभरि गा मरि मरि सांसइ लेइ॥ —चांदायन, ८०।६,७

४. चलन चांद चितु लागा मन हुत उतर न काउ।
पालहुँ हाथ न संचरैं परिहसि रोवइ राउ॥ —चांदायन, ८१।६,७

५. यंदु (इंदु) गोयंदु (गोइंदु) चंदु अरु दिनयरु बरंभा बिसुन मुरारि।
गन ग्रंध्रप रिखि देवता देखि बिमोहे नारि॥
८२ ६,७

नक्षत्र चांद के आभरण थे, अब वे चंदा के शृङ्गार के आभरण हो रहे हैं।[1] बाजिर उसके चरणों को हृदय से लगाने के लिए आतुर है (८५।४)।

ये समस्त संकेत चंदा को अलौकिक व्यक्तित्व प्रदान करने के लिए पर्याप्त हैं। अत्युक्तियों का उपयोग परम सौंदर्य का, जो संसार की समस्त सुन्दरताओं का मूल कारण है, बोध कराने के लिए किया गया है। रूपचन्द्र बाजिर के मुख से उसके रूप सौंदर्य की झलक पाता है और उसके विरह में तप्त हो उठता है।

१. चूरा, नेवरु, पायर पैंजनि, गोवर होइ झनकार।
नखत चांद कर अभरन अभरन चांद सिंगार॥ —**चांदायन**, ८४।६,७

२
'चंदायन' के दो संस्करण

'चंदायन' का रचयिता मौलाना दाऊद उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के डलमऊ का निवासी था और उसका समसामयिक बादशाह फीरोजशाह तुगलक था।[1] इस रचना के तब तक प्राप्त छंदों का एक पाठ डा० माताप्रसाद गुप्त ने सन् १९६२ में, हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा से प्रकाशित कराया था। डा० गुप्त को उस समय केवल चार खंडित प्रतियां प्राप्त थीं, वे क्रमशः कला भवन काशी, मनेर शरीफ़ (बिहार) तथा शिमला संग्रहालय की थीं। डा० गुप्त उस संस्करण में केवल ८० छंदों का उद्धार कर सके थे। उसी संस्करण में भोपाल की एक खंडित प्रति के ६४ छंदों का पाठ डा० विश्वनाथ प्रसाद ने भी प्रस्तुत किया था। इस प्रकार 'चंदायन' के अध्ययन की एक भूमिका सन् १९६२ में तैयार हो गई थी। सन् १९६४ मे डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने बम्बई से एक अन्य संस्करण प्रकाशित कराया जिसमें उन्होंने मैनचेस्टर के रीलैंड्स पुस्तकालय में प्राप्त एक वृहद् पाठ का उपयोग किया। उनके समक्ष बंबई, मनेर शरीफ़, पंजाब और काशी की खंडित प्रतियां तथा अमरीका के होफर-संग्रह (हारवर्ड) के दो पृष्ठ भी थे। डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने वैज्ञानिक ढग से सम्पादित पाठ प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया। 'चंदायन' की भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि "प्रस्तुत प्रयत्न ग्रन्थ की उपलब्ध सामग्री को फारसी लिपि से नागराक्षरों में प्रस्तुत कर उन्हें क्रमबद्ध कर देने तक ही सीमित है।"[2] डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के संस्करण में छंदों की संख्या ४५२ दी गई है। किन्तु वास्तव में छंद लगभग ३९० हैं। वैज्ञानिक सम्पादन पद्धति का उपयोग न कर सकने के कारण उनके संस्करण में कतिपय प्रसंगों की पुनरावृत्ति हो गई है और कतिपय प्रक्षिप्त अंशों

---

१. चांदायन—सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, छंद १७
२. चंदायन—सं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, भूमिका, पृष्ठ १३

का भी समावेश अनेक स्थलों पर सहज ही हो गया है। मई १९६७ में डा० माता-प्रसाद गुप्त का एक नवीन संस्करण प्रकाशित हुआ है जो वैज्ञानिक सम्पादन-प्रणाली पर आधारित है। डा० माताप्रसाद गुप्त तथा परमेश्वरीलाल गुप्त दोनों ने काशी कला भवन, मैंनचेस्टर की रीलैंड्स लाइब्रेरी, मनेर शरीफ, शिमला, मेसाचूसेट्स (अमरीका) आदि की प्रतियों का उपयोग किया है। बीकानेर की प्रति डा० परमेश्वरी लाल गुप्त को नहीं प्राप्त हो सकी थी। डा० माताप्रसाद गुप्त को यह प्रति प्राप्त हो गई थी अतः लगभग ४० ऐसे नवीन छंदों का उद्धार हो सका जो डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के संस्करण में नहीं हैं।

सम्पादन प्रणाली

डा० गुप्त ने विभिन्न प्रतियों का पाठ सम्बन्ध स्थिर किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि बीकानेर, मेसाचूसेट्स, शिमला तथा भोपाल की प्रतियों का संकीर्ण सम्बन्ध है। मैनचेस्टर की प्रति एक स्वतन्त्र शाखा की प्रति है। अतः जो पाठ मैनचेस्टर की प्रति में है तथा जो अन्य किसी प्रति में भी मिलता है उसको डा० गुप्त ने प्रायः स्वीकार किया है। प्रतियों का परस्पर सम्बन्ध तथा सम्पादन की जिस प्रणाली का अवलंबन उन्होंने लिया है उसको विस्तारपूर्वक उन्होंने स्पष्ट किया है, अतः उसका पिष्टपेषण करना अनावश्यक होगा (देखिए—'चांदायन', भूमिका, पृष्ठ ५६-६०)।

संस्करणों की तुलना

डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा वैज्ञानिक सम्पादन प्रणाली से सम्पादित और सामान्य ढंग से सम्पादित किये हुए डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के पाठों में असाधारण अन्तर हो गया है। दोनों संस्करणों का एक तुलनात्मक अध्ययन यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है जो उपादेय सिद्ध हो सकता है।

बाजुर गोबर गया है और चंदा को देखकर मूर्छित हो गया है। लोग उससे उसकी वेदना का कारण पूछते हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त के संस्करण में इस छंद की संख्या ५६ है और छन्द इस प्रकार है—

कहु बाजुर तोहि बेदन काहा, लोगु महाजनु पूछत आहा।
पीर कहसि तउ सुनहु बिनानी, ओखदु मूरि देहिं तोहिं आनीं।
कइ जुर जाड पेट कइ पीरा, कइ सिरवाहि गूद महिं कीरा।
कइ खरि लागि घाम कइ झारा, पानि पियत तूं गा बिसंभारा।
कइ दरसन काहू के राता, पिरम भुलान कहसि नहिं बाता।
कइ तोहि अरथ गंवावा मारि लीन्ह बटपार।
नांउं कहसि नहि ताकर बाजुर मुरिख गंवार।।

(चांदायन, छन्द ५६

डा० गुप्त के मे यह छंद सख्या ६७ है और छन्द इ
प्रकार है

कहु बाजिर तोर बेदन काहा, लोग महाजन पूछत आहा।
पीर कहसि तूं मंह बिनानीं, औखद मूर देहुँ तिहिं आनी।
कै जर जाद कै पेट कै पीरा, कै सिर दाह को डंसहुँ कीरा।
कै खर लाग घाम कै झारा, पान पेट तूं गा बिसँभारा।
कै दरसन काहू कै राता, पिरम भुलान कहसि नहिं बाता।
कै तिहिं अरथ गंवावा, मार लीन्ह बटमार।
नाउं न कहसि नहिं ताकै, बाजिर मुरुख गंवार॥

भाषा का जो रूप डा० माताप्रसाद गुप्त ने निर्मित किया है उससे डा० परमेश्वरीलाल गुप्त द्वारा स्वीकृत भाषा रूप काफी भिन्न है। व्याकरण के रूपों का विचार इस स्थान पर मेरा उद्देश्य नहीं है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने भूमिका में 'चदायन' की भाषा के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन प्रस्तुत किया है। शब्द रूपों के पुनर्निर्माण में डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने अनेक अशुद्धियां की हैं।

दूसरे चरण की प्रथम पंक्ति मे "पीर कहसि तउ सुनहु विनानी" के स्थान पर डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने "पीर कहसि तूं मंह बिनानीं" किया है जिसकी अर्थ-संगति नहीं बैठती। तीसरे चरण की प्रथम और द्वितीय पंक्तियां भी विचारणीय हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त ने "कइ जुर जाड पेट कइ पीरा, कइ सिरवाहि गूद महिं कीरा" पाठ दिया है वहाँ डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने "कै जर जाद कै पेट कै पीरा, कै सिर दाह को डंसहु कीरा" किया है। इसी प्रकार चौथे चरण की द्वितीय पंक्ति में डा० माता-प्रसाद गुप्त ने "पानि पियत तूं गा बिसं भारा" किया है, वहाँ डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने "पान पेट तूं गा विसंभारा" किया है जिसका कोई अर्थ नहीं है।

इस प्रकार की अशुद्धियों से डा० परमेश्वरीलाल गुप्त का संस्करण भरा हुआ है। उदाहरण के रूप में कुछ छन्द नीचे दिये जा रहे हैं—

सभ सिंगार बाजिर जो कहा, राजा नैन बैतरनी वहा।
राइ कहा सुन बांठा आई, राजकुरैं फेरि देहु दुहाई।
राउत पायक साहन बारी, झेतस करि लै आउ हंकारी।
जाँवत भरे देस मोर आना, सांवत जाइ पठइ परधानां।
जिहि लगि बांधे जानै काछा, मार बिपारौ जो घर आछा।
राजा चला बरेख, सांभर लेइ संजोइ।
आगें दयि कै चला वह, पाछें रहै न कोइ॥

(चंदायन, परमेश्वरीलाल गुप्त, छन्द ९६)

डा० माताप्रसाद गुप्त के संस्करण में यह छन्द इस प्रकार है—

सभ सिंगारु बाजुर जउ कहा, राजा नैन नीर नै (नइ) बहा।
राइ कहा सुनु बाठा आई राजकुरी फिरि देहु दुहाई।
राउत पाइक साहु न बारी छतिस कुरि लइ आउ हकारी

जांवत देस फिरइ मोरि आनां, तांवत जाइ पठउ परधानां।
जंह लगि बांधइ जानइ काछा, मारि पबारउ जउ घरि आछा।
राजा चरै (ड़ै ?) गोवर कहु (हुँ) सांभर लेइ संजोइ।
आगें दइ लै (लइ) चालहु पाछें रहइ न कोइ॥

(चांदायन, छन्द संख्या ८६)

श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने प्रथम चरण की द्वितीय पंक्ति में "राजा नैन नीर नै (नइ) बहा" का "राजा नैन बैतरनी बहा" किया है। बैतरनी शब्द किसी प्रति मे नहीं है। सम्पादक ने यह शब्द कल्पना से गढ़ लिया है। इसी प्रकार तृतीय चरण की द्वितीय पंक्ति में "छत्तिस कुरि" के लिए डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने "झैतस करि" पाठ दिया है। छन्द के पाँचवे चरण की द्वितीय पंक्ति में "मारि पबारेउ जउ घरि आछा" के स्थान पर "मार बिपारौं जो घर आछा" पाठ रखा है। इसी प्रकार इसी छन्द के दोहे में "राजा चरै (ड़ै) गोवर कह (हुँ)" के स्थान पर डा० परमेश्वरीलाल जी ने "राजा चला बरेख" पाठ दिया है जिसका अर्थ अस्पष्ट है।

एक अन्य छन्द उस समय का दिया जा रहा है जबकि राव रूपचन्द्र ने गोवर पर चढ़ाई कर दी है। डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के संस्करण में उसका पाठ इस प्रकार है :

चहुँ दिसि छेका गाढ़ फिरावा, खोंटहि खोंट जोरि गर लावा।
तुरिहं पान-बेलि पनवारीं, केतिह खेत रूख फुलवारी।
काटे चहुँ पास अंबराऊं, तार खजूर आम लखराऊं।
दीन्हि मढ़ि देउर उंपराई, पैसथ नारा पोखर पाई।
काटे बारी महर के लाई, नरियर गोवा और फुलवाई।
महर मँदिर चढ़ देखा, बहुल हुत असवार।
ओडन फिरै न सूझै खांडहि होइ झनकार॥

(डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, चंदायन, छन्द १०२)

डा० माताप्रसाद गुप्त के संस्करण में यही छन्द निम्नलिखित प्रकार से दिया हुआ है :

चहुँ दिसि छेंका गाढ़ फिरावा, खूंटहि-खूंटहि जोरि गर लावा।
तोरियहिं पान बेलि पनवारीं, कटियहि खेत रूंख फुलवारी।
ढहियहि मढ़ देवर अंबराई, पटियहिं तारा पोखर बाई।
काटे चहूँ पास अंबराऊ, तार खिजूरि जामु लख राऊं।
काटी बारी महर कइ लाई, नरियर गुवा अउ फुलवाई।
महर मदिर चढ़ि देखा बहुल हस्ति असवार।
ओडन फरी न सूझइ खांडहि होइ चमकार॥

डा० द गुप्त चांदायन, छंद ९२)

प्रथम चरण की द्वितीय पंक्ति में 'खूंटहि खूंटहि' के स्थान पर डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'खोंटहिं खोंट' पाठ किया है जिसका कोई अर्थ नहीं है। इसी प्रकार 'तोरियहिं का 'तुरहिं' किया है और 'कटियहिं का 'केतिह' किया है। डा० परमेश्वरीलाल जी ने तृतीय चरण का स्थान बदल कर चौथे चरण में दे दिया है वह भी इतना अशुद्ध है कि पाठ हास्यजनक हो गया है। 'ढहियहिं मढ़ देवर अंबराई, पटियहि तारा पोखर बाई' का उन्होंने 'दीन्हि मढ़ि देउर उंवराई, पैसथ नारा पोखर पाई' पाठ किया है।

उपर्युक्त छन्द इस प्रकार के हैं जिनके पुनर्निमाण में डा० माताप्रसाद गुप्त ने मैनचेस्टर के अतिरिक्त अन्य प्रतियों, विशेषकर बीकानेर की प्रति का भी उपयोग किय है किन्तु कुछ ऐसे भी छन्द हैं जो केवल मैनचेस्टर वाली प्रति में ही प्राप्त होते हैं। फ़ारसी लिपि से देवनागरी में उनके लिप्यंतर करने में भी डा० परमेश्वरीलाल जी ने बडी असावधानी बरती है। उदाहरण स्वरूप कुछ छन्द नीचे दिए जा रहे हैं:

गांव कुठारैं परा अबासू। मैंना कैं चित अँनद हुलासू ॥
सोवन फर रात जो फूली। देख तरायीं मैंना भूली ॥
रहंस उठी चित महं निसि जागी। पिछली रात नींद फिरि लागी।
लागत नयन सपन एक आवा। भा बिहान नै गवर नसावा ॥
खोलिन पूछहि सुनु धनि मैंनां। परत सांभ जो बकतिह बैंनां।
तोर मन काल जो रहँसा, पायहुँ नीके चाह।
सपन गुन गिनु मैंना, कहु कछु देखउं आह।

(चंदायन, परमेश्वरीलाल गुप्त, छंद ४३८)

डा० माताप्रसाद गुप्त के 'चांदायन' में यह छन्द इस प्रकार है:

गाउं कोठारइं परा उपासू, मैंनां कें चित अनन्द हुलासू।
सोवन बहोरि राति जो भूली, देखि तराइन [मैंनां फूली
रहँसि उठी चित बहु निसि जागी, पछिली राति नींद फिरि लागी।
लागत नैन सपन एक आवा, भा बिहान [तइ [कोउ नसावा।
खोलिनि पूछ सुनहु दहुँ मैंना, परति सांझि जउ बकतिहिं बैंना।
तोर मन कालि जो रहंसा पाइहु पिय कइ चाहि।
सपन (इं) गति गुनि मैंनां कहु किछु देखिउ आहि ॥

(चांदायन, माताप्रसाद गुप्त, छंद ३८३)

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'उपासू' को 'अबासू' पढ़ा है। इसी प्रकार 'सोवन बहोरि राति जो भूली' को 'सोवन फर राति जो फूली' पढ़ा है। दोहे मे 'पाइहि पिय कइ चाहि' के स्थान पर श्री परमेश्वरीलाल जी ने 'पायहुं नीके चाह' पाठ दिया है। मैनचेस्टर की प्रति का एक छंद और दिया जा रहा है जिसको श्री ——०—— जी ने ठीक-ठीक नहीं पढ़ा है, अत अर्थ का अनर्थ हो गया है

दिन भा मैंनां बेगां गई। और सहेली चुनी दस लई॥
बेचत दूध घर (घर) गयीं। दही कहं लोरहिं महरि बुलायीं॥
महरीं जब सब लोरक देखीं। देखत मैंनां और न लेखीं॥
....लोर चांदा कहँ बोलसु। सीप सिंदूर चन्दन तन घोलसु।
(आगों) छाड़ि जो पाछों आवा। चमक चमक धनि पाउ उचावा।
बहि कर दूध दहि लीजइ, दस गुन दीजइ दान।
सती रूप जस देखउं, तिंह क बिदाई पान॥

(चंदायन, परमेश्वरीलाल गुप्त, छंद ४४२)

डा० माताप्रसाद गुप्त के संस्करण में यह छन्द इस प्रकार है :

दिन भा मैंनां बेगां गई, अउर सहेलि जनीं दस लिई।
बेचत दूध घर गईं (लुगाईं ?), दही कहं लोरहि महरि बुलाईं।
महरीं जेति सब लोरिक देखीं, देखत मैंना अउर न लेखीं।
(तउ) हिं लोर चांदा कह बोलिसि, सीपि सेंदुर चन्दन तन घोलसि।
(आ) गू छाड़ि जउ पाछूं आवा। चमकि चमकि धनि पाउ उचावा।
ओहि कर दूध दहि लीजिए, दस गुन दीजिय दान।
सती रूप जिसु देखेउं, तेहिंक बड़ाई मान॥

(चांदायन, छंद ३८७)

इस छंद में अंतिम दोहा विशेष रूप से द्रष्टव्य है। लोरिक चंदा से कह रहा है कि 'मैंना का दूध खरीदिये और उसे दस गुना दाम दीजिए, जिसे मैं सती रूप मे देखता हूँ उसकी बड़ाई मानो'। इसका अर्थ डा० परमेश्वरीलाल जी के पाठ के अनुसार होना चाहिए 'जिसको मैं सती रूप में देखता हूँ उसको विदाई में पान दो'। इस प्रकार की अशुद्धियों से डा० परमेश्वरीलाल गुप्त का संस्करण परिपूर्ण है। सच बात तो यह है कि उनका एक भी छन्द ऐसा नहीं है जिसमें इस प्रकार की दो-चार अशुद्धियाँ न हों।

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने अपने संस्करण में छन्द संख्या ४५२ दी है। किन्तु इसमें लगभग ६० ऐसे हैं जिनमें या तो उनकी दो-दो पंक्तियां प्राप्त हैं या वह भी नहीं हैं। उनकी ४५२ संख्या काल्पनिक है। उसमें पूर्ण छन्द ४०० से भी कम हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त ने ३९७ छन्द स्वीकृत किये हैं। उन्होंने अन्तरंग और बहिरंग प्रमाणों के आधार पर ७८ छंदों को प्रक्षिप्त घोषित किया है। इन प्रक्षिप्त अंशो का का भी डा० गुप्त ने पूर्ण पाठ दिया है। इन प्रक्षिप्त अंशों में से दो का विवेचन स्पष्ट कर देगा कि डा० परमेश्वरीलाल जी ने पाठालोचन की वैज्ञानिक प्रणाली का उपयोग न करने के कारण ही प्रक्षिप्त अंशों को भी अपने संस्करण में स्वीकृत कर लिया है।

विवेच्य छन्द चंदा के साथ लोरिक के हल्दीपाटन प्रस्थान करने के पूर्व का है और मनेर शरीफ वाली प्रति में दो बार आया है बीकानेर की प्रति में भी यह छन्द है

औडन खांड मैंना लइ सूती, सँह निसि जाग बिरह कइ भूती।
दुहुं मिलि धंसि तइ रोइ संचारा, करहि गहत जनु उठी झनकारा।
मैंना मांजरि रूप मुरारी, एहि गुन कतहुं न देखउँ नारी।
ओडन खांड कुंडौर सिर धरा, नैन नीर चख काजर झरा।
काउ ऊँच न बोलसि बोलू, औगुन करत राख मोर तोलू।
एत सरूप सयानी, अउ कुलवन्ती नारि संजोग।
तुम्हं पंथ चांदा मनु राता, अब तेहि परा बिजोग॥

—चांदायन, परिशिष्ट १०

मैंनचेस्टर वाली प्रति में यहाँ पाठ त्रुटित नहीं है और उसमें यह छन्द नही है। कड़वक का संगठन भी संदिग्ध है अतः इसको डा० माताप्रसाद गुप्त ने प्रक्षिप्त माना है (देखिये, चांदायन, परिशिष्ट, पृष्ठ ३९८)। इसी प्रकार टूटा योगी का सम्पूर्ण प्रसंग डा० माताप्रसाद गुप्त ने प्रक्षिप्त माना है जिसको डा० परमेश्वरीलाल जी ने अपने संस्करण में स्थान दिया है। टूटा योगी का प्रसंग मैंनचेस्टर की प्रति में नही आता है, और मैंनचेस्टर की प्रति यहाँ खण्डित भी नहीं है। अतः लगता है कि मनेर शरीफ वाली प्रति के पाठ में इसको किसी ने बाद में जोड़ दिया।

इसी प्रकार राजा महुअरि और हरेवा से सम्बद्ध प्रसंग भी प्रक्षिप्त है (देखिये, चांदायन, डा० माताप्रसाद गुप्त, परिशिष्ट), ये प्रसंग केवल बीकानेर की प्रति मे है और मैंनचेस्टर की स्वतन्त्र शाखा वाली प्रति में नहीं हैं।

बीकानेर की प्रति प्राप्त हो जाने के कारण डा० माताप्रसाद गुप्त के संस्करण मे प्रारम्भिक अंश पूर्ण हो गया है। ईश्वर वन्दना से लेकर गोबर गढ़-वर्णन तक लगभग १७ छन्द हैं जिनका पाठ डा० माताप्रसादगुप्त गुप्त के संस्करण में बीकानेर की प्रति के आधार पर पुनर्निर्मित हैं। प्रारम्भ के ये छन्द कवि का परिचय प्राप्त करने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें कवि का समय, समसामयिक बादशाह, गुरु तथा उसके वास-स्थान का परिचय प्राप्त हो जाता है। इसमें ईश्वर की वन्दना, मुहम्मद साहब और उनके चार मित्रों का भी उल्लेख आया है। डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने इनमें कुछ पंक्तियाँ बीकानेर की प्रति पर आधारित एक लेख से ली हैं।[1] किन्तु वह केवल दो पूर्ण छन्द दे सके हैं। बीकानेर की प्रति की सहायता से कुछ अन्य प्रसंगों का उद्धार भी डा० माताप्रसाद गुप्त सफलतापूर्वक कर सके हैं। उदाहरण के लिए, छन्द ८५ को देखा जा सकता है। चंदा-शृङ्गार वर्णन का यह अन्तिम छन्द है:

चांद चलन जौ पयकु (पैगु) उचावै
पाई चमाउ (ऊ) लटकतु आवै।
जिउ अस कहै क (कि) देषत रहिये
लागैं पाउ सीस धौं छुहिये

---

१ रावत 'मौलाना दाऊद और उनका चदायन' वरदा वर्ष २, अक ३ १९५९

काहु करौ मोहि हाथु न देई
पाउ ठेलि अ········टी करि लेई।
अइसँ कहौं कि कबही पाउं
तेहि चरण (चलन) लँ हिरदै लाउं।
देखत चरण (चलन) परँ जो पाई।
तब मो अङ्ग·························ई।
दाउद अभरन सभ पहराइसि छाड़िसि पाव उघारि।
महमद धाइ (पाइ ?) चमऔ (चमाऊ) दीती रहसि बाहुरि तब नारि ।।

(चांदायन, छंद ८५)

इसी प्रकार छंद १०७ भी डा० माताप्रसाद गुप्त ने बीकानेर की प्रति के आधार पर पुनर्निमित किया है। मैनचेस्टर की प्रति में यह छंद रहा होगा किन्तु अब वह प्राप्य नहीं है। प्रस्तुत छन्द में खोइलनि राजा रूपचन्द के विरुद्ध लोरिक को युद्ध मे जाने से रोकती है—

षौलनि लोरहि चलन न देई, अबहि राउ किन चांदा लेई।
मैं (मइं) का उ (ओ) कर जीव रषावा,
जूझे (झइ) कौ (कहुं ?) कस महरि बुलावा।
गा (गां) व जि बाटँहि (बांटहिं) जीव रषाहीं,
ते कस आजु न जुझें (जूझइं) जाही (हीं)।
जिव घरबात जीव धन मोरा,
बारु न देषें (षइ) देहौ (हउं) तोरा।
तुझ कछु होई तौ हौ (हों) कौं (केउं) जीवौ (वौं)।
काहु (उ) षाइ (उं ?) कैं पानी पीवौं (वौं)।
गाढ़ काजु मरें (मरइ) कर कैसें जीउ लुकाऊं।
माता देहु असीस मुझु मारि बांठु घरि आऊ (ऊं) ।।

(चांदायन, छंद १०७)

डा० गुप्त के नवीन संस्करण की एक विशेषता यह भी है कि इसमें समस्त छन्दों का अर्थ दिया गया है। साथ में पाठान्तर और अन्त में एक शब्द कोश भी दिया गया है।

चांदायन की भूमिका

डा० माताप्रसाद जी ने ७२ पृष्ठों की एक भूमिका दी है जिसमें दाऊद के समसामयिक, चांदायन का रचना-काल और उसके कवि के वास-स्थान पर विचार किया गया है। रचना का नाम-रूप, रचना की कथा का आधार और रचना के संदेश पर भी भूमिका में विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। रचना के संदेश में सूफी प्रेम के मरण मार्ग पर गम्भीरता पूर्वक विचार करते हुए लेखक ने चांदायन को सूफी रचना के रूप में स्वीकार किया है डा० जी के विचार इस प्रकार हैं

"यह 'मरण' ही लोरिक की प्रेम-यात्रा का सबसे बड़ा सम्बल है; यही हिन्दी सूफी प्रेम-कथाओं में प्रेमी को अमरत्व प्रदान करता है; इस मरण के आधार पर ही प्रेमी काल से भी नहीं डरता है। क्योंकि उसे विश्वास होता है कि मरे हुए को काल भी नहीं मारता है। इसी कारण मरण को जायसी ने 'उपकार' की संज्ञा से अभिहित किया है। जो दशा लोरिक की यहाँ पर सौंदर्य के साक्षात-दर्शन से हुई है, वही रतनसेन की शुक द्वारा पद्मावती के सौन्दर्य-वर्णन को सुनकर होती है।"[1]

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त को 'चन्दायन' में सूफ़ी तत्त्व नहीं मिले, उनका कथन है—"इस प्रकार स्पष्ट है कि दाऊद के सम्मुख काव्य रचना के समय कोई सूफी दर्शन नहीं था, लोक प्रचलित कथा को काव्य रूप में उपस्थित करना ही अभीष्ट था।"[2] श्रीपरमेश्वरीलाल जी का यह दृष्टिकोण सूफी काव्य परम्परा और दर्शन के अध्ययन के अभाव के कारण ही बना है। सूफी प्रेमदर्शन का समस्त परिपार्श्व 'चंदायन' में प्रस्तुत किया गया है। प्रेम का मरण मार्ग, नखशिख आदि में अलौकिक सौन्दर्य का संकेत, नायक और बाजुर आदि की मूर्च्छाएँ—सभी सूफी तत्त्वों की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'चांदायन' की भाषा का भी विस्तार से अध्ययन किया है और यह सिद्ध किया है कि 'चांदायन' की भाषा अवधी है और "जायसी की भाषा से वह मिलती-जुलती होते हुए भी किंचित पूर्व की स्थिति का आभास देती है।"[3]

डा० परमेश्वरीलाल जी ने अपनी भूमिका में अनेक स्थलों पर 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' तथा[4] अन्यत्र से सामग्री ज्यों की त्यों ले ली है और उसका संदर्भ देना उचित नहीं समझा है। उदाहरण के लिए 'चंदायन' की भूमिका में पृ० ३६ पर उन्होंने मसनवी के सम्बन्ध में जो भी बातें कही हैं प्रस्तुत लेखक के 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' के पृष्ठ २५६ पर देखी जा सकती हैं। इसी प्रकार पृष्ठ २१ पर अवध के गजेटियर का उल्लेख करते हुए डलमऊ और वहाँ के विद्यालय की जो सूचना चन्देनी के संदर्भ में उन्होंने दी है, वह "सम्मेलन पत्रिका" में प्रकाशित एक लेख 'मधुमालती के पूर्व का सूफ़ी प्रेमाख्यान साहित्य' से बिना संदर्भ दिये ले ली गयी है, (देखिए सम्मेलन पत्रिका, इलाहाबाद भाग ४६, अंक १ पृ० ८८, पौष-फाल्गुन, शक १८८१)।

---

१. **चांदायन**, सम्पादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ४०
२. **चंदायन**, सम्पादक—डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, परिचय पृ० ६५
३. **चांदायन**, भूमिका, पृ० ७२
४ **मध्ययुगीन प्रेमाख्यान** डा० श्याममनोहर पाण्डेय मित्र लिमिटेड १९६१

डा० माताप्रसाद गुप्त का संस्करण काफी परिष्कृत है और इससे का काव्य सौष्ठव अधिक उभर कर सामने आया है। डा० परमेश्वरीलाल संस्करण से मौलाना दाऊद के काव्य के सम्बन्ध में कोई विशेष अच्छी धारणा पाती। डा० माताप्रसाद गुप्त के नवीन संस्करण से मौलाना दाऊद का अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो जाता है और उनके इस संस्करण से १४ वी की अवधी भाषा का प्राचीन रूप समझने में काफी सहायता मिलती है।

३

कुतुबन कृत 'मृगावती' में प्रेम और दर्शन

कुतुबन सूफी प्रेमाख्यान परम्परा के उत्कृष्ट कवि हैं जिन्होंने ९०९ हिजरी (१५०३ ई०) में 'मृगावती' की रचना की। प्रस्तुत निबन्ध में उनके दर्शन की रूपरेखा स्पष्ट करते हुए उनके प्रेम दर्शन पर मुख्य रूप से विचार किया जायगा।

परमतत्व का स्वरूप

कुतुबन ने परम तत्व को अलख निरंजन, कर्तार, विधाता, परमेश आदि की संज्ञाओं से अभिहित किया है।[1] वह ज्योति स्वरूप है।[2] न वह स्त्री है और न पुरुष के वेश में है।[3] न उसके कोई माता-पिता हैं, न कोई बंधु है। वह अकेला और अद्वितीय है।[4] उसको जो दूसरे रूप में बताता है वह नर्क में जाता है। वह कर्त्ता एक ही है,

---

१. ''''अलख करतारू। रमो (रमि) कै रहेव सबैं संसारू। —मृगावती, १।१
''''निरंजन लखै न जोई (जाई)। जोति सरूप जो लखत भुलाई।
—मृगावती, १।२
मृगावती, सं०—डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, १९६८, पृ० १। ('मृगावती' के प्रायः समस्त उद्धरण डा० गुप्त के संस्करण से लिये गये हैं। जहाँ अन्य पाठ का उपयोग किया गया है वहाँ संदर्भ दे दिया गया है।)

२. जोति सरूप जो लखत भुलाई। —मृगावती, १।२

३. ना उहि तिरी ना पुरुष क भेसा। —मृगावती, १।३

४. (मा) त पिता बंध नहीं कोई।
एक अकेले न दोसर कोई —मृगावती, १।४

किसी अन्य को कर्त्ता नहीं कहा जा सकता।[1] सम्पूर्ण 'मृगावती' में कुतुबन ने परमेश्वर के सम्बन्ध में यही दृष्टिकोण व्यक्त किया है।

कुतुबन का यह दृष्टिकोण कुरान सम्मत दृष्टिकोण है। कुरान के 'सूर: अल-इखलास' में अल्लाह के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें कही गई हैं :

"अल्लाह के नाम से जो अत्यन्त कृपाशील और दयावान् है कह दो; वह अल्लाह है, यकता। अल्लाह निराधार और सर्वाधार है। उसके कोई औलाद नही और न वह किसी की औलाद है और कोई नहीं जो उसके बराबर हो।"[2] कुरान की जो आयतें ऊपर प्रस्तुत की गई हैं उनसे 'मृगावती' की उक्तियों का मिलान किया जाय तो दोनों में काफी समानता दिखाई पड़ेगी। कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि कुतुबन ने कुरान की उपर्युक्त आयतों का अनुवाद सा कर दिया है। कुरान में इस प्रकार की अनेक आयतें हैं जिनमें अल्लाह के अलावा किसी अन्य की पूजा वर्जित की गई है। (कुरान १०।६६, ६६, २८।७०,७४, ६।१२६, १७।१११)

कुतुबन कहते हैं : "जब तक तन में श्वास है, तब तक (मेरे लिए) वही एक है। मेरे घट में केवल उसी की आशा है, वह नित्य का बना रहने वाला है। वही नित्य रहेगा। मैं उसकी नित्य सेवा करता हूँ। सब कार्य छोड़कर उसका जप करता हूँ। अन्त में उसी का राज्य रहेगा। प्रथम और अन्त में जिससे काम पड़ेगा उसको अपनी समस्त बुद्धि छोड़कर जपो।"[3] कुतुबन अन्यत्र भी कहते है, "एकमात्र विधाता के सिवाय अन्य कोई नहीं रहेगा। (संसार में) सब कुछ कर्त्ता के चरित का खेल है।"[4]

'कुरान' में भी इस आशय की पंक्तियाँ प्राप्त होती है, एक स्थान पर आता है—"अपने रब की ओर लोगों को बुलावा दो और कदापि मुश्रिकों में शामिल न हो

---

१. ''''कहै सो नरकही जोई (जाई)। —मृगावती, १।५
एक एकस सो रे उबह करत (ता) दोसर कहै न कोय। —मृगावती, १।६

२. कुरआन मजीद (हिन्दी), प्रकाशक—महम्मद अब्दुल हई, मक्तबा अल हसनात, रामपुर (उ० प्र०) १६६६, पृ० ८६०।

३. वहै एक जब लगि तन सांसा। औ फुनि घट महं ओही आसा।
नितकर आहि रहहि नितु ओही। नितु परिसेवउं होइ वह मोही।
अहि निसि जपहु छाड़ि सब काजा। अंत रहहि ओहि कर पैं राजा।
परथम अन्त काज जेहि सेतीं। सो रे जपहु छाड़ि बुद्धि जेतीं।
मोंख न आहि और बुधि किएं। बुद्धि ओहि केरि आसु रह लिएं।
जो रे होइहि वाइस ओहि के रे दुवौ जग्ग सो पाउ।
दुवौ जग्ग का आहहिं एहि महं अवर बहुत हंहि साउ॥
—मृगावती, छंद ४२७

४. छुटि विधि कोइ रहइ न इकेला। करता केर चरित सब खेला।
, ४२४।

और अल्लाह के साथ किसी दूसरे इलाह (पूज्य) को न पुकारो। उसके सिवा कोई इलाह नहीं। हर चीज नश्वर है सिवाय उसके स्वरूप के। उसी का शासन है और तुम्हें उसी की ओर पलट कर जाना है।[1] 'कुरान' की इन आयतों से कुतुबन के कथन काफी मिलते-जुलते हैं।

'मृगावती' के नायक राजकुंवर पर जब भी विपत्ति आती है, वह विधाता का नाम-स्मरण करता है। दानव के चंगुल से बचने के लिए विधाता का स्मरण करते हुए राजकुंवर कहता है, "हे सृजनहार विधि, तुमने अनेक कठिनाइयों से मेरा निस्तार किया है। यह तो मेरे ऊपर कठिन विपत्ति पड़ गई है। मैं हाथ जोड़कर तुम्हारी बिनती करता हूँ। तुझे छोड़कर मैं किसको पुकारूं। मैं इस संकट से निस्तार पाने की मांग करता हूँ।"[2]

एक अन्य स्थान पर भी कुतुबन "एकोंकार, अलख, कर्तार का नाम-स्मरण करते हैं और कहते हैं कि ऐ मेरे (एक मात्र) आधार विधि मुझे उबारो।"[3]

कुरान में अनेक स्थलों पर इस प्रकार की बातें कही गयी हैं कि सर्वशक्तिमान अल्लाह की ही पूजा करो। दूसरे की पूजा और उस पर भरोसा न रखना चाहिए। अल्लाह के अलावा कोई दूसरा पूज्य होता तो सारी व्यवस्था बिगड़ जाती।[4]

जब राजकुंवर मृगावती का स्मरण करता है तब उसके प्रेम का स्मरण करता है। उसको इस बात की चिन्ता अवश्य है कि यदि कहीं मर गया तो मृगावती से भेंट न हो सकेगी।[5] किन्तु कुतुबन परमेश्वर के सम्बन्ध में स्पष्ट

---

१. **कुरआन मजीद** (हिन्दी), रामपुर १९६६, पृ० ४४५।

२. कहिसि दइय विधि सिरजनहारा। बहुते कठिन तैं ही निस्तारा।
यह तौ कठिन परी बड़ि मोही। हाथ जोरि कै बिनवौं तोही।
(तोहि छाड़ि केहि क) रौं पुकारा। मांगौं बिधि एहि सेउं निस्तारा।
—**मृगावती**, २६६।१,२,३

३. चला अडारि लौटि नहिं हेरा। एइं रे नाउं संवरेउ विधि केरा।
एकोंकार अलख करतारा। जस ते विक्रम राउ उबारा।
जस रे जलंधरि कुंअहि अडारा। अन्तर रक्खा पवन अधारा।
हौं सकबंध न पवन अधारी। मोहि अधार विधि लेहु उबारी।
—**मृगावती**, २७१।१,२,३,४

४. यदि इन दोनों (आसमान और जमीन) मे अल्लाह के सिवा और इलाह (पूज्य) भी होते, तो दोनों की व्यवस्था बिगड़ जाती।
—**कुरआन मजीद**, रामपुर १९६६, पृ० ३४६
(अन्य आयतें १८।१५, २८।७०,७४, १०।६६,६९ आदि।)

५. हौं अपने जियं डर न डराऊं। जौ रे मरों तौ ओहि न मिलाऊं।
—**मृगावती**, ११७।५

कहते हैं कि जो तुम्हें छोड़कर अन्य का ध्यान करता है उसका जन्म न होता तो अच्छा होता।[१]

मृगावती क्या है ?

कुतुबन ने 'मृगावती' की भूमिका में कहा है कि इस संसार की रचना कर उसने (ईश्वर) अपने चरित का प्रसार किया है।[२] चित्र देखकर चितेरा की खोज करो। यदि खोज करोगे तो वह शीघ्र मिलेगा। यदि अपनी दृष्टि जाय तो (दृष्टि) उस ज्योति से लग जायेगी।[3] परम तत्त्व से तारी (सतत ध्यान की अवस्था) लग जायगी और सहज ही मन प्रीति की सभाल में लग जाता है।[४] 'मृगावती' के प्रथम कडवकों की पंक्तियाँ दुर्भाग्यवश त्रुटित हैं, फिर भी इनकी अवशिष्ट शब्दावली से एक महत्त्वपूर्ण संकेत सामने आता है। चित्र देखकर उस विधाता की खोज की जा सकती है। मृगावती वही चित्र है जिसका उस चितेरे ने निर्माण किया है और राजकुँवर उसके सहारे परमतत्त्व तक पहुँचने का प्रयास करता है।

कुतुबन का कथन है कि 'सृष्टिकर्ता ने पहले मुहम्मद की ज्योति (नूर) का निर्माण किया फिर उसके बाद सबकी चिन्ता ली (की)।[५] उसके (मुहम्मद के) लिए अपने आपको प्रकट किया। शिव और शक्ति स्वरूप दो घटों का निर्माण किया।[६] जिसकी जिह्वा पर उसका नाम नहीं आता है, वह अग्नि में भी जले तो मोक्ष नही पाता है।[७]

कुतुबन के काव्य में कहीं भी मृगावती हजरत मुहम्मद की भूमिका में नही आती है। मृगावती परम ज्योति का चित्र है। मुहम्मद के नूर से उसका क्या सम्बन्ध

१. तोहि छाड़ि जौ औरहि ध्यावै। करमहीन मकु जनम न पावै।
—मृगावती, १२१।२

२. (फुनि) यह रचि कै चरित पसारा। सो कहत महं जो·······संभारा।
—मृगावती, ३।१

३. (चित्र) देखि के खोजि चितेरा। खोज करहि तो मिलहि सबेरा।
(आपनि) दिष्टि जाइ जेहि केरी। सोइ तहीं ओहि जोति सौं ते (मे ?) री।
—मृगावती, ३।२,३

४. (परम) तंत सेउं लागइ तारी। सहज रहइ मन परत (प्रीति ?) संभारी।
—मृगावती, ३।४

५. पहिलें नूर मुहम्मद कीन्हां। पाछे तेहिक चिन्ता सब लीन्हा।
—मृगावती, ४।१

६. (औ) तेहि लगि आपुहि परगटा। सीउ सकति कीतिस दुइ घटा।
—मृगावती, ४।२

७ जेहि रसना ओहि नाउ न आवा पावक जरे मोख नहि पावा
मृगावती, ४।३

है यह कहना कठिन है। यहाँ कुतुबन कुरान की मान्यताओं से पृथक् जाते हुए प्रतीत होते हैं। कुरान की मान्यता है रसूल से पैरवी अल्लाह से मुहब्बत की पहचान है। (३।३१) अल्लाह और रसूल की आज्ञा पालन करो (२।३२)। 'मृगावती' का प्रेमदर्शन कहाँ तक इसका भी आधार लेकर चलता है और कहाँ तक इससे पृथक् होता है, यह देखना आवश्यक है।

मृगावती का व्यक्तित्व 'मृगावती' काव्य में दो रूपों में मुखर हुआ है। उसका एक रूप दैवी है तथा दूसरा मानवीय। उसको उसके निर्माता ने एक चित्र के रूप मे प्रस्तुत किया है। उसके माध्यम से चितेरे को कदाचित् अधिक सुगमता से समझा जा सकता है। उसको कुतुबन ने कारणभूत बताया है।[1] उसके बराबर कोई दूसरा बिंब नही है।[2] वह भाव (रूप) है।[3] यह बात ध्यान देने योग्य है कि मृगावती कई स्थलों पर स्वयं चित्र की कल्पनाएँ उपस्थित करती है। वह कहती है कि "आते हुए मैंने एक कुँवर को देखा। मेरा जीव उसमें इस प्रकार लग गया जैसे चित्र से रेखा।[4] तुम्हारे गुण मेरे हृदय में इस प्रकार छा गये हैं जैसे चित्र में लेख नहीं मिटते हैं ?"[5] राजकुँवर उसे भूल नहीं पाता, उसने उस चित्र को चित्त में ले लिया है। वह पत्थर में कील की भाँति गड़ गई है।[6] एक स्थान पर कुँवर कहता है कि "सम्भवतः यह हमारा कर्म है कि सिद्ध होने के लिए गुरु (मृगावती) ने मुझे पुकारा है।[7] वह संमोहिनी औषधि है।[8] गण गंधर्वों की चक्रवर्ती और त्रिभुवन की मदिरा का सार है।[9] मनुष्य

---

१. धायं कहा एहि कारन भूता। समुझि कुँवर सुनु (राजापूता)।
—मृगावती, ७५।१

२. भौ डर तहाँ गहन कर सोई। बिंब बराबरि और न कोई।—मृगावती, ७३।५

३. मिरगावति रानी है भावा। करइ एकादसि निरजल आवा।
—मृगावती, ७५।५

४. आवत अहिउं कुँवर एक देखा। जिउ उहि लाग चित्र जत रेखा।
—मृगावती, १८६।१

५. तुअ गुन हम हिए अस कै छाए। चित्र लिही फुनि उतरि न जाए।
—मृगावती, २२१।५

६. बिसरि न जाइ चित्र चित लिही। पाथर मांझ कीर जनु किही।
—मृगावती, २२।४

७. करम आजु मकु आहि हमारा। सिद्ध होइ (कहँ गुरु) हंकारा।
—मृगावती, २११।१

८. हनू मूरि सकती कहँ आनी। तुम्हं रे मूरि मोहिनी निजु जानी।
—मृगावती, २९६।५

९. तुम्हं गन गंध्रप चक्कवै त्रिभुवन मदिरा सार।
लोएन जेहि दोउ दिस्टि होइ सुर नर फुनि बिकरार
—मृगावती, २९६।७

तो क्या देवता को भी वह मोह लेती है।[१] राजकुंवर मृगावती को देखकर मूर्च्छित हो जाता है। "उसने भौंहों का धनुष तान रखा है।[२] यही धनुष राघव के पास था।[३] पांडवों ने कौरवों को जीता तो अर्जुन के पास यही धनुष था।[४] परशुराम के पास भी यही धनुष था।[५] राजकुंवर से मृगावती की सहेलियां कहती हैं, 'गण, गंधर्व, सुर, नर और नाग (मृगावती के) द्वार पर बैठे अहर्निश जागते हैं।'[६] जिसके भाग्य, कर्म और ललाट में लिखा हो उसी को एक बार दर्शन का क्षण प्राप्त होता है।[७]

मृगावती अप्सरा के रूप में राजकुंवर के सम्मुख पहले पहल प्रस्तुत होती है और फिर सहेलियो से कहती है, "मनुष्य कहो हमें कैसे प्राप्त कर सकता है। जहाँ मन हो हम उड़कर जा सकते हैं"।[८] मनुष्य से यह संभव नहीं है (यद्यपि) वह जगत् में स्वभाव से उत्तम जाति का होता है।[९] जैसी इच्छा होती है हम वेश धारण कर लेते हैं। हमें चाहते हुए भी हमें कोई कहाँ प्राप्त कर सकता है।[१०] हमको ऐसा वर प्राप्त है कि जहां चाहते हैं, लुप्त हो जाते हैं। स्वर्ग से हमारा विमान जुड़ा हुआ है हम चाहते ही उड़कर वहाँ जा सकते हैं।[११]

---

१. सुर मोहहिं नर आहहिं कहा। बसीकरन सिर पालहि अहा।
—मृगावती, २९६।४

२. भौहइं धनुक नैन सर सांधे। लागे बिखम हिएं बिस बांधे।
—मृगावती, २१४।२

३. जहिया हनिवं लंक गढ़ डहा। यहइ धनुक राघौ पहं अहा।
—मृगावती, २१४।४

४. जो पंडउ कौरव दल जीता। यहइ धनुक अरजुन कर लीता।
—मृगावती, २१४।५

५. यहइ धनुक परसराम कर सोइ पारधि सोइ बान।
यह रे कहत मोहि दूभर लागइ तुम्हं पति हने परान।
—मृगावती, २१४।६,७

६. गन गंध्रप सुर नर औ नागा। बार बैठे सब (अहि निसि जागा)।
—मृगावती, २१५।२

७. जेहि के भाग औ करम लिलारा। तेहि कर होइ निमिख एक बारा।
—मृगावती, २१५।३

८. मानुस हमहि पाव दहुँ कहां। चाहहिं उड़हि जाहि चित जहां।
—मृगावती, ४५।२

९. मनुसे सेउं अस होइ न काऊ। उत्तिम जाति जग आहि सुभाऊ।
—मृगावती, ४५।३

१०. औ फुनि भेस धरहिं जस भावैं। चाहत हमहिं कहां कोइ पावैं।
—मृगावती, ४५।५

११. (हम कहं) अस बर आहे चाहत जाहि बिलाइ।
(आव) बिमान सरग धरि चाहत जाहि उड़ाइ —मृगावती, ४५ ६,७

'शृंगार खण्ड' में चित्रित सम्पूर्ण नखशिख का विवेचन भी दैवी संकेतों से पूर्ण है। परम-सौन्दर्य की झलक बताने के लिए भारत और ईरान दोनों देशों के सूफी काव्य में नायिकाओं के नखशिख का वर्णन हुआ है। भारत में मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी (१५६६ ई०) ने 'हकायके हिन्दी' में नारी के विभिन्न अंगों का एक सांकेतिक विवेचन प्रस्तुत किया है।[1] इसी प्रकार ईरान में फैज मुशिन काशानी ने (सत्तरहवीं शताब्दी ई०) 'रिसालये मिशवाक' की रचना की जिसमें परम्परावादी उलमा द्वारा रहस्यवादी कवियों के सम्बन्ध में की गई आलोचना का उत्तर दिया।[2] यह असम्भव नहीं है कि हिन्दी के सूफी कवियों का नखशिख भी परम्परावादी उलमा की आलोचना का विषय रहा हो और उसके उत्तर में 'हकायके हिन्दी' जैसे ग्रन्थ की रचना हुई जिसमें अन्य विशिष्ट शब्दावली के अतिरिक्त नखशिख का भी आध्यात्मिक विवेचन है।

मांग के सम्बन्ध में कुतुबन ने कहा है कि उसकी मांग प्राणघातक है।[3] मीर वाहिद बिलग्रामी कहते हैं, "यदि हिन्दवी वाक्यों में मांग का उल्लेख हो तो उसके द्वारा सिराते मुस्तक़ीम (सीधे मार्ग) की ओर संकेत दिया जाता है और बालों की कालिमा का तात्पर्य अन्धकार, पाप तथा भ्रष्टाचार की दिशाओं से होता है। अल्लाह ने कहा है, 'सत्य यह है कि मेरा यह मार्ग सीधा है। इसी पर चलो और दूसरे मार्ग पर न चलो' वे तुम्हें अल्लाह के मार्ग से हटा देंगे।"[4]

नखशिख में कुतुबन ने कपोल और मुख का वर्णन किया है।[5] मीर वाहिद बिलग्रामी कहते हैं, "यदि हिन्दवी में कपोल अथवा इसी प्रकार के इसके पर्यायो अथवा मुख या आनन की चर्चा हो तो उसे मुकाशफ़ (दैवी प्रकाशन) एवं मुशाहदे (अनुभूति) के नूर (ज्योति) का उल्लेख होता है। कभी उस अर्थ की ओर संकेत होता है जिसका पारिभाषिक रूप से ईश्वर के मुख से सम्बन्ध होता है और कभी अज़ल (अनादि) को सफ़ेद रुई (आदर सम्मान तथा जन्म-जन्मातर के सौभाग्य) की ओर संकेत होता है। लोक-परलोक के कल्याण का संकेत उसी ओर होता है।"[6]

कुतुबन कहते हैं कि सृष्टिकर्त्ता ने उसे सोलह शृंगार दे रखे हैं। उस शृंगार पर भी आभरण हैं जैसे हनुमान पवन के साथ हों।[7] वाहिद बिलग्रामी कहते है—

---

१. हकायके हिन्दी, लेखक मीर अब्दुलवाहिद बिलग्रामी (१५६६ ई०), अनु० सैयिद अतहर अब्बास रिजवी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०१४।
२. Sufism—A. J. Arberry, London, 1956, pp 113-114.
३. (कर) सों करिल संवारेसि बारा। देखेउ मांग बहुत जिय मारा।

—मृगावती, ५०।१

४. हकायके हिन्दी, लेखक मीर वाहिद बिलग्रामी, अनुवादक श्री अतहर अब्बास रिजवी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०१४, पृ० ३६।
५. मृगावती, छंद ५८, ६२।
६ हकायके हिन्दी पृ० ४३।
७ मृगावती छंद ७४

"यदि हिन्दवी वाक्यों में सिंगार (श्रृङ्गार) की चर्चा हो तो उससे उस सज्जा की ओर संकेत होता है कि कुदरत के श्रृंगार करने वाले हाथ ने दैवी रंगाई के रंग से उसको सजाया है और वह हजरत मुहम्मद मुस्तफा की सुन्दरता थी। नि.सन्देह ईश्वर माधुर्य है और मधुरता से प्रेम रखता है।" सम्भव है कि मारेफ़त (ज्ञान) का सजावट के कुछ मुकामों (लक्ष्यों) की ओर संकेत हो अर्थात् तोबा, इसतेगफ़ार, जुहद, तवक्कुल, तसलीम, तकवा, रिज़ा आदि।[1]

बिलग्रामी ने घूंघट, सेंदूर, अलक, तिल, जूड़ा, लिलार, तिलक, नेत्र, भौंह, बरुनी, कटाक्ष, कपोल, आनन, अधर, कण्ठी, रुद्राक्ष, हार, पीठ, कटि, आभूषण, मोती आदि के सांकेतिक अभिप्राय बताए हैं।[2] उनके विवेचनों से सर्वत्र सहमत होना कठिन है। ईरानी लेखक काशानी ने भी इसी प्रकार का कार्य फ़ारसी साहित्य के संदर्भ मे किया है।

सूफ़ीमत और साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान आरबेरी ने काशानी के रुख (मुख, आकृति), ज़ुल्फ (अलक), खाल (तिल), खत्त, चश्म (आँख), अब्रू (भौंह), लब (अधर) के सम्बन्ध में दिए हुए सांकेतिक अर्थों का उल्लेख किया है।[3]

---

१. हकायके हिन्दी, पृ० ४८।

२. वही, पृ० ३७ से ५६ तक।

3. **Sufism**—A J. Arberry, London, 1956, pp. 113-114 :

Rukh (face, cheek) : The revelation of Divine beauty in Attributes of Grace e. g., the Gracious, the Clement, the Life giving, the Guide, the Bountiful; Light ; Divine Reality.

Zulf (tress)—The revelation of Divine Majesty in Attributes of Omnipotence e. g. the Withholder, the Seizer, the Omnipotent, The Death giver, the Deluder; Darkness; phenomena as a veil concealing Divine Reality.

Khal (mole)—The point of Real Unity which is concealed and is therefore represented as black.

Khatt (down on the cheek)—The manifestation of Reality in spiritual forms.

Chashm (eye)—God's beholding his servants and their aptitudes. The "eye" is said to be "*mast*" (intoxicated) or *Bimar* (languishing) to indicate that Godhas no need of man, and pays no heed to him. The *Ghamza* (glance) of the "eye" refers to God's granting of spiritual repose after anguish or anguish after repose

रुख—दया के गुणों के रूप में ईश्वरीय सौंदर्य का प्रकाश जैसे दयालु, मृदुल, प्राणदाता, मार्ग-दर्शक, मुक्तहस्त प्रकाश, परमात्मा की सत्यता।

जुल्फ—सर्वशक्तिमान के गुणों के रूप में ईश्वरीय सत्ता का प्रकाश। अवरोधक, अपहर्ता, सर्व शक्तिमान, मृत्यु देने वाला, भ्रमोत्पादक, अन्धकार, परमात्म सत्ता को छिपाकर रखने वाली पर्दा जैसी चीज।

खाल (तिल)—ईश्वरीय एकता का बिंदु। वह छिपा हुआ है। अतः उसे काले रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

खत्त—ईश्वर का आध्यात्मिक रूप में प्रकाश।

चश्म—ईश्वर का अपने सेवकों और उनकी (झुकाव) प्रवृत्ति देखना। आँख को मस्त या बीमार कहा गया है। इससे यह संकेत मिलता है कि ईश्वर को आदमी की जरूरत नहीं है। गमजा (दृष्टि-निक्षेप) से तात्पर्य दुख के बाद सुख या सुख के बाद दुख के आगम से होता है।

अब्रू (भौंह)—ईश्वरीय गुण, जो उसकी सत्ता को छिपा रखता है।

लब (ओठ)—ईश्वर का जीवनदाता होने तथा मनुष्य के कायम रखने की विशेषता। दहान (मुख) को तंग कहा गया है। इसका आशय यह है कि मनुष्य का अस्तित्व अदृश्य है।

यद्यपि बिलग्रामी और काशानी की सभी बातें स्वीकार्य नहीं हो सकतीं तथापि उपर्युक्त विवेचन से यह पता तो चलता ही है कि नायिका के वर्णन के द्वारा प्रायः सूफी कवि दिव्य सौंदर्य तथा भाव की झलक देने का प्रयास करते थे। नखशिख का चित्रण नायिका को दैवी-प्राणि सिद्ध करने के लिए किया जाता है।

कुतुबन ने 'मृगावती' में नखशिख का चित्रण करते हुए मृगावती को अनेक स्थानों पर अलौकिक व्यक्तित्व प्रदान किया है। उसके कपोलों पर अपना कपोल रख सकें इसलिए देवता और नागों के भी सर डोल जाते हैं। उसके कपोल को देखकर योगी, जंगम, तपस्वी, यती के शरीर का मांस नहीं रहा।[1] दैव ने संवार कर उसकी

Abru (eye-brow)—God's attributes which veil his Essence.

Lab (lip)—The life giving property of God, and his keeping man in existence. *Dahan* (mouth) is said to be *tang* (narrow) as a reference to the fact that the source of man's being is invisible.

१. ओहि कपोल पर धरइ कपोला। सुर नर नाग सीस फुनि डोला।

—**मृगावती, ५८।५**

ओगी जगम तपसी जती सन्यासी सन्त
देखि कपोल नारि कै एकहि रहा न कन्त।—मृगावती, ५८ ६,७

रचना की है।[1] वह नित्य सुहागिनी है। "वह बाला चीर में विशेष प्रकार का भ्रम उत्पन्न करती है। वह अमर सुरांगना जैसी दिखाई पड़ती है।"[2] इस प्रकार के 'मृगावती' में और भी संकेत हैं जिनसे उसकी विशिष्टता प्रकट होती है (देखिए छन्द ५३, ५४, ६९ आदि)। छन्द ५४ में तो मृगावती की बरुनियों से चौदह भुवन, पृथ्वी, सप्त द्वीप, नव खण्ड, स्वर्ग, पाताल सभी को बिद्ध होते चित्रित किया गया है।[3]

उपर्युक्त सन्दर्भ में 'मृगावती' को 'नित सोहागिन' कहा गया है (५९।७)। यह नित सोहागिन एक विशिष्ट संकेत है जिसका उल्लेख मीर वाहिद बिलग्रामी की पुस्तक 'हकायके हिन्दी' में प्राप्त होता है। "यदि हिन्दी वाक्यों में सुहागिन (सुहागिनि) का उल्लेख है तो उससे इनसाने कामिल (महापुरुष) तथा मारेफ़त (ज्ञान) वालों की ओर संकेत करते हैं, क्योंकि सृष्टि की रचना करने वाले ईश्वर ने जो जगत् को उत्पन्न किया है, उसका लक्ष्य इन्हीं लोगों का प्रेम है।"[4] मृगावती के पक्ष में यह कथन लगभग ठीक बैठता है। इस विवेचन से मृगावती का दैवी रूप प्रकट होता है। इस दैवी-रूप के साथ उसका मानवीय रूप भी 'मृगावती' में मुखर हुआ है। वह कारणभूत तत्त्व और विधाता का चित्र या बिंब रहकर राजकुंवर को प्रेम की ओर अग्रसर करती है। उसको गुरु रूप भी कहा गया है। यदि मानवीय रूप में अपनी पत्नी भी ईश्वरीय प्रेम की ओर अग्रसर कराती है और यदि वह इस प्रेम के लिए कारणभूत बनती है तो वह मानवीय से दैवी हो जाती है। मानवीय का इसीलिए यहाँ दैवी से विरोध नहीं है। मृगावती के मानवीय और दैवी रूप दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, खास तौर से जबकि कुतुबन का यह दृष्टिकोण है, "इस कलि का मर्म कोई नहीं जानता। पता नहीं आँख की पलक मात्र में क्या हो जाय। धर्म करते हुए भोग कर कर्तार का चिन्तन (स्पर्श) करो। यह लक्ष्मी अपनी नहीं है। (कर्तार की है ?) अतः संसार का भोग कर लो।"[5]

---

१. करनहिं (?) जनहु सोहागिनि नित सो दई बिरची जो संवारि।
—मृगावती, ५९।७

२. भरम चीर महं बार बिसेखी, अमर अपूनि सुरंगन देखी। —मृगावती, ६९।४

३. चौदह भुवन पिरिथिमी आहइ सात दीप नौ खण्ड।
सरग पतार बरुनि सर बेधा जीवौं पाहन कन्द। —मृगावती, ५४।६,७

४. हकायके हिन्दी-मीर वाहिद बिलग्रामी, पृ० ५५।

५. कलि कर मरम न जानइ कोई। आँखि कै मंटक काह दहु होई।
—मृगावती, ४१८।५

धरम करते भोग कै मन परसहु करतार।
लच्छी होइ न आपनि वेलसि लेहु —मृगावती ४१८।६,७

मानवीय रूप में मृगावती नारी है। राजकुंवर पुरुष है।[१] मृगावती पिंगला सदृश है, राजकुंवर भरथरी है।[२] वह दासी है, राजकुंवर स्वामी है।[३] वह पार्वती है और राजकुंवर शिव हैं।[४] वह दमयंती है, कुंवर नल है।[५] वह मालती है, राजकुंवर मधुकर हैं।[६]

मृगावती के मानवीय रूप में भी देवी-रूप का प्रायः संकेत मिलता चलता है। उपर्युक्त उपमाओं में अधिकांश सामान्य नहीं है। मृगावती का विशुद्ध मानवीय रूप उसकी विरहाभिव्यक्ति में तथा उस समय प्रकट होता है जब मृगावती और रूपमिनि आपस में सामान्य नारी की भाँति झगड़ती हैं। राजकुंवर को दानव उठा ले गया है। जब मृगावती को यह पता चलता है तब वह पछाड़ खाकर गिर पड़ती है।[७] उसकी सहेलियाँ उसे आश्वासन देती हैं कि विधाता तुम दोनों को मिलायेगा।[८]

पावस में 'मृगावती' पवन से राजकुंवर के पास यह संदेश भेजती है। उसमें वह कहती है, "ऐ पवन तुम भंवर के पास यह संदेश ले जाओ और कहो—कि तुम्हारे बिना मालती की यह अवस्था हो गई है कि जपमाला लेकर वह तुम्हारा नाम जपती रहती है और तुम्हारे बत्तीस गुण स्मरण कर उसका हृदय दग्ध होता रहता है।"[९]

---

१. तुम्हरे बात जौ सुनिसि हमारी। तूं रे पुरुष हौं नारि तुम्हारी।
—मृगावती, ८८।३

२. सुनतहि जस रे पिंगलइं कीन्हा। एहउ चहइ ततखन जिउ दीन्हा।
—मृगावती, २७४।५

३. रा (ज पा) ट जहं लगिहै सामी औ हौं दासि तुम्हारि।
(चलहु सेज पर) बैसहु तूं रे पुरुष हौं नारि॥—मृगावती, २३०।६,७

४. संकर सूर मढ़ी तप जाई। पारबती ससि रति कहं आई।
—मृगावती, २२८।१

५. दिन दस तुम्ह रे सहारहु हम उटवहिं उपकार।
हंस दमावति सेउं नल मेरवहि करकर होइ अधार।
—मृगावती, १६६।६,७

६. पवन आइ मालति सेउं कहा। भंवरा कली कंवल कै गहा।
—मृगावती, २६१।१

७. ऊभी होइ धर खाइ पछारा। मरइ चाह ओहि दइय उबारा।
सखी सहेलि धरहिं कर हाथा। रानी समुझि विधि मेरइहि साथा।
—मृगावती, २७५।४,५

८. मृगावती के विरह के लिए छंद २७५ से लेकर छंद ३०० तक देखिये।

९. पवन संदेसा लै रे चलहु भंवर किन।
मालति यह रे अवस्था कहियहु तुम्ह बिन।
करि नाउ जपत ही जिय रहइ

रूपमिनि और मृगावती का कलह मृगावती को सामान्य नारी के रूप मे प्रस्तुत करता है। मृगावती कहती है—

कहिसि काह मैं सुनइ न पाई।
यह रे कहत जिय लाज न आई।
कौन लाइ मुंह बोलसि नारी।
बरबस पितइं तूं मेलि अडारी।*
राकस कहं जौ दीजइ आनी।
सो बोलइ आपुन कहि रानी।
सोवत छाड़िसि बात न बूझी।
अकुली* बोलहि हम सेउं जूझी।
तोहू कहं रे सोहागिनि नाऊं।
मैकें ससुरें कतहुँ न ठाऊं।
हौं मइकें सुठि* मनियउं आदर औ ससुरे बहु चाउ।
तू बिलखी नहिं गारौ* दुहुँ ठां मान कतहुँ नहिं साउ*।[1]

इसी प्रकार अन्यत्र भी वह झगड़ते हुए रूपमिनी से अपने को श्रेष्ठ बताना चाहती है।[2] सास दोनों का कलह सुनकर आती है और तब वे चुप हो जाती हैं। 'मृगावती' के मानवीय रूप की उपेक्षा करने पर इन छंदों को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। मानवीय रूप में मृगावती दैवी है जिसके रूप पर कुंवर अनुरक्त है।

मृगावती और कर्म

'मृगावती के अनेक छंदों में यह बात कही गई है कि जो विधि करता है वही होता है। कुतुबन कहते हैं कि जब भंवर लुब्ध होता है तो कमल के पास आता है। यह अवस्था कर्म में बंधन से होती है।[3] कुंवर को मृगावती के नगर कंचन-नगर का रास्ता नहीं सूझ रहा था। वह बावला होकर वन-वन घूम रहा था। बाघ, सिंह, हाथी से वह कंचनपुर का मार्ग पूछता था। कुतुबन कहते हैं—प्रेम विष से पूरित सर्प होता है। कर्मों का लंगर लेकर ही उससे बचा जा सकता है।[4] जब राजकुँवर की मृत्यु हो जाती है तब उसकी दो रानियाँ भी सती होती हैं। इस पर भृत्य कहते हैं जो

---

१. मृगावती, छंद ३९६—(*मेलि अडारी—छोड़ रखा था। अकुली—कुल हीना। सुठि—अच्छी प्रकार। गारौ—गौरव। साउ—स्वाद, चाह)।

२. मृगावती, छंद ३९९।

३. भंवर लुबुध तौ कंवलहि आवै। एहि रे अवस्था करम बंधावै।
—मृगावती, २८८।३

४ पेम भुअंगम है बिस भरा। करमहिं लै लंगर नीसरा।
—मृगावती, १६५ ४

कुछ होना था हुआ। विधि का लिखा मेटा नहीं जा सकता।[1] राजकुँवर के छोड़कर चले जाने पर रूपमिनी कहती है जो कुछ लिखा था वही हुआ। जिस दिन विधाता ने मेरा निर्माण किया उसी दिन ललाट (कर्म) भी लिखा। यदि मैं सात स्वर्ग मे भी दौड़ूँ तो ललाट पर अंकित अंक नहीं मिटता।[2] मृगावती के साथ सहवास करते हुए वह उसके कुचो को पकड़ता है। इस पर कुतुबन कहते हैं पूर्व का लेख मिटाया नहीं जा सकता।[3] दुर्लभ राजकुंवर के पिता से कहता है—हे देव! तुम्हारे पुण्यो से राजकुंवर को दर परिगह प्राप्त हुआ।[4] दानव (गड़ेरिया) कहता है—अब क्या करूँ कर्म ही तेरा ऐसा है।[5] राजकुंवर बकरी की खाल ओढ़कर गड़ेरिया के चंगुल से बचना चाहता है और कहता है अब निकल जाऊं। जो दैव करेगा वही होगा अब जी में क्या डरूँ।[6] अन्यत्र वह कहता है यह हमारा कर्म है कि गुरु ने सिद्ध होने के लिए पुकारा।[7]

दैव और कर्म के सम्बन्ध में 'मृगावती' में अन्यत्र भी अनेक पंक्तियां प्राप्त होती है जिनमें कुछ इस प्रकार हैं—

---

१. जो किछु होनी कहुँ सो भेंटा। विधि का लिखा जाइ नहिं मेटा।

—मृगावती, ४२५।२

२. जो किछु करम लिखा सो भवा। उनकी (कँ ?) कोर छाड़िसि मो मया।

—मृगावती, १६३।५

जेहि दिन बिधना निरभए तेहि दिन लिखा कपार।
सात सरग चढ़ि धावौं कोई अंकन मिटइ लिलार।

—मृगावती, १६३।६,७

३. सिंघ गहइ कुंभस्थल आई। आहि पुब्बक्खर मेंटि न जाई।
गहेउ कुंभस्थल सिंघ होइ कामिनि उरहीं उन्न।
लिहे पुब्बक्खर नहिं चलहिं वल मनुष्यकर मन्न।।—मृगावती, ३७७।४,६,७

४. राउ पूंछ दर परिगह साहन कत करि पाएसि एत।
कहिसि दइअ उन्ह दीन्हेउ पुन्निहि तुम्हरे एत।।

—मृगावती, २८९।६,७

५. धरइ न पावइ हाथ मरोरा। अब करौं करम जो तोरा।

—मृगावती, १७९।२

६. पहिरि चांम छेरिन्हि मिलि आवा कहिसि निकसि अब जाउं।
दइअ करिहि सो होइहि अब का जिअहि डराउं।। —मृगावती, १८१।६,७

७ करम आजु मकु आहि हमारा। सिद्ध होइ कहुँ गुरु हंकारा।

मृगावती २११ १

जिउ उबरेउ सिर पालहि करमहि दुख बड़ भएउ बिछोह ।
बहु पछिताव किए कर बरजा औ मिरगावति मोह ।
—मृगावती, २७१।६,७

विधि कर लिखा न जानइ कोइ ।
कै वह सुख कै यह दुख होइ । —वही, २७२।५
कहिसि दइअ हौं तहां अडारा ।
कै साइर कै आहि अकारा । —वही, २८६।५

राजकुंवर का पवन से कथन—

आजु सुदिन मोर आइलुलानां ।
करम हमार दइअं तोहि आनां । —वही, २६०।१

रूपमिनी का पक्षियों से कथन—

पांखी म छाड़हु भीर हमारी ।
मया करहि फुनि रूप मुरारी । —वही, ३०५।४
जो तरुवर दौं दद्धियउ पंखी म छाड़हु भीर ।
बहिहि जौ कोइ पवन बिधि होइहि छांह गंभीर । —वही, ३०५।६,७

बनजारा का कथन—

कहिसि दइय भल भएउ गोसाईं ।
दूनउ बार अहहिं एक ठाईं । —वही, ३३६।२
मारग कुसल जेइं रे बिधि कीन्हें ।
सोइ मेरइहि होइहि हम चीन्हें । —वही, ३३६।४
भागिवन्त कहं अपदस देहू ।
जेहि घर खाँड सो पाव मछेहू । —वही, ३३६।५
उहउ राजपूत आहि सुलाखन इन्हहिं दइअ दिहा राज ।
बिरथंवत कह कोटि आपदा दिन दस भलेहिं बिराज ।। —वही, ३३६।६,७
धनि रूपमिनि जेइं यह वरु पावा ।
दइयं गोसाईं जोग मेरावा । —वही, ३७१।५
कलि करतार मोहिलइ आवा ।
बन छाड़ेउं तौ हौं जिउ पावा । —वही, ४०७।२
मिरगावति औ रूपमिनि दूबौ बिन जिय सांस अधार ।
फिरति अहीं मंदिर अपने महं कारे करिहि करतार ।।
—वही, ४२१।६,७

उपर्युक्त उद्धरणों से एक विशेष बात सामने आती है। कर्म या दैव ही 'मृगावती' की समस्त क्रियाओं और घटनाओं का सूत्रधार है राजकुंवर का प्रेम और वियोग मृगावती का विरह, रूपमिनी का कुंवर से विवाह कंचन नगर के मार्ग में

राजकुंवर की आपदाएँ, राजकुंवर की मृत्यु आदि सभी घटनाओं का नियमन दैव ने किया है। सबके मूल में नियति है। उसकी इच्छा के विपरीत 'मृगावती' में कुछ भी नही होता है।

'मृगावती' में प्रेम का स्वरूप

रूप सूफी प्रेम-साधना का अनिवार्य तत्त्व है। रूप देखकर ही राजकुंवर के चित्त ने प्रेम ग्रहण किया।[1] यह रूप सम्भवतः ज्योति का पर्याय है और सौंदर्य तत्त्व है। कुतुबन कहते हैं कि जो उस ज्योति को देखकर आत्म-विस्मृत नहीं हुआ उसका मांस काग भी नहीं खाता।[2] इस रूप पर जो हेत और मान बिना अनुरक्त होते हैं वे मूर्ख दीपक पर पतंगें की भांति बारबार जलते हैं।[3] कुतुवन ने कहा है, "जब तुम प्रेम के साधक हो, खांड से अपने को दो भागों में करो। प्रेम का स्वाद वही समझता है जो अपने को मिटाकर उसको (प्रिय) देखता है। हर्ष के रस में प्रेम नहीं होता जो जीव देता है वही प्रेम प्राप्त करता है। प्रेम एक उत्तुंग और ऊंचा गढ़ है। वह बावला है जो इसे बिना दुख के चाहता है। प्रेम का जो खेल खेलना चाहता है वह जीव का मोह छोड़कर सिर से खेले। प्रेम का प्रासाद अत्यन्त उत्तुंग है, उच्च है। यदि शीश को पांव के नीचे न दिया गया तो वहाँ हाथ नहीं पहुँचेगा और अपूर्ण रहेगा।"[4]

कुतुबन अन्यत्र कहते है—प्रेम करने से दुख होता है, जो प्रेम में सुख चाहता है वह मूर्ख होता है।[5] प्रेम का सर्प यदि एक बार ग्रहण कर लेता है तो वह देह नही छोडता।[6] मृगावती एक स्थान पर कहती है कि राजकुंवर यदि दुख देखकर आता

---

१. छाड़ेसि घोर धरइ ओहि चहा। देखत रूप पेम चित गहा।

—मृगावती, २०।१

२. जो वह जोति न देखि भुलाई। ताकर मांसु काग नहि खाई।

—मृगावती, २१६।२

३. मान बिहूने हेत बिनु रूपहि जे राचंत।
मूरिख दिया पतंग जेउं फिरि फिरि ते दाघंत ।। —मृगावती, २१५।६,७

४. जब तुम आहि पेम कै साधा। आपुहि खांडि करहु दुइ आधा।
पेम सवाद सोइ पै बूझा। आपुहि मेंटि ओहि पै सूझा।
कहैं हरख रस पेम न होई। जीव जो देइ पाव पै सोई।
पेम उतंग ऊंच गढ़ आहा। बाउर सोइ जो बिनु दुख चाहा।
पेम खेल जो चाहइ खेला। सिर सेउं खेलि जीउ परहेला।
कुतुवन कंगूरा पेम का ऊंचा अति रे उतंग।
सीस न दीजइ पावतर कर न पहुँचइ खंग ।। —मृगावती, १६४

५. पेम कियें दुख पाइअ पेम न करियो कोइ।
जो सुख चाहिय पेम करि मूरिख कहिअइ सोइ ।। —मृगावती, १६५।६,७

६ पेम भुयंगम गसन है कि गहै छाड नहिं देह —मृगावती १६८।७

है तो हमें प्राप्त करेगा।[१] जो जल-जल कर मरता है और जो मर-मर कर जीता है वही प्रेम-सुरा का पान करता है।[२] बिरले लोगों को प्रेम का रस प्राप्त होता है, जिसको यह प्राप्त हो जाता है वह अमर है।[3]

मृगावती एक स्थान पर धाय से कहती है कि जो वस्तु सस्ते में सरलता से मिलती है उसका मर्म नहीं जाना जाता इसीलिए मैं उड़कर जा रही हूँ।[४]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात स्पष्ट है कि प्रेम साधना कठिन मार्ग है। इस मार्ग के साधक को अनेक प्रकार के दुखों का सामना करना पड़ता है। कंचनपुर जाते समय राजकुंवर के मार्ग मे अनेक दुख उपस्थित होते हैं। उन आने वाले दुखो का उल्लेख करते हुए जंगम कहता है—"मैंने कंचन नगर देखा है। मार्ग कठिन है। सागर, अगम वन तथा भूत रास्ते में मिलते हैं। मनुष्य का भक्षण करने वाले राक्षस, प्रेत, भुजंग आगे नहीं बढ़ने देते। पथ में बहुत दुख के बाद कंचनपुर जाया जाता है।"[५]

सच्चा प्रेमी साधक दुख से भयभीत नहीं होता। राजकुंवर कहता है, "मैं भूत और सर्पों से नहीं डरता। यदि काया में जीव हो तो इनसे भ्रम में पड़ूँ। यदि रास्ते में राक्षस और भूत मुझे खाते हैं तो मार्ग में सिद्धि का पुरस्कार दिलाते हैं। प्रियतम के बिना आवास वन के सदृश लगता है। प्रेम-पंथ का पथिक उस पथ पर बना रहता है, भागता नहीं। प्रीतम के लिए बहुत दुख सहिए। दुख मिलता है तभी सुख प्राप्त होता है। अपने मुख में दांतों के नीचे उसने दस अंगुलियां दबाईं और कहा—वह कठिन पथ मुझे दिखाओ। उसके लिए मैंने अपने जीव का संकल्प किया

---

१. कहेसि संदेस कहहि जो कुंवर सेउं विलम्ब न लावइ आव।
बहुत देखि दुख आवइ तौ हम कहं वह पाव।
—मृगावती, १०३।६,७

२. जरि-जरि मरइ सो मरि-मरि जिऐ। सो पै पेम सुरा रस पिऐ।
—मृगावती, २१६।४

३. (बिर)ला यह रस पावइ कोई। जो यह पाव अमर होइ सोई।
—मृगावती, २१६।५

४. (वस्तु) जो पावइ सौंघे मोला। ताकर मरम न जानइ भोला।
—मृगावती, ६८।३

५. कंचन नगर उहउ हम देखा। मारग कठिन न आवइ लेखा।
सायर समुंद अगम बन भूला। मानुस भखहिं जो राकस हुंता।
—मृगावती, ११३।४,५

भूत परेत भुवंगम मारग पैंग न हेटै जाइ।
अत दुख बहुत पय महि तौ रे कचनपुर जाइ), ११३ ५,६

है। जो चाहे सो हो जाय। जब जीव की दक्षिणा ही दे दी गई तो उसकी कौन ममता है।[1]

प्रेमपंथ में यह पौरुष अनिवार्य है। कुतुबन कहते हैं कि वीर्यवंत पर कोटि आपदायें दस दिन के लिए भले ही आ जायं, वे ठहरती नहीं।[2] राजकुंवर एक स्थान पर कहता है, "मुझे मरने का कोई भय नहीं लगता। इस पंथ पर मरने से सारा पाप भाग जाता है।[3]

राजकुंवर को मृगावती के पास कंचनपुर पहुँचने में अनेक प्रकार के दुखों का सामना करना पड़ता है। वह योगी का वेश धारण करता है, पांव में पादत्री के अतिरिक्त जटा चक्र, मुद्रा, जपमाला, डंडा, खप्पर, बाघम्बर, योगपट्ट, रुद्राक्ष, अधारी धारण करता है। त्रिसूल लेता है और भस्म लगाता है। वह किंगरी भी धारण करता है।[4] यह सब कुछ होते हुए भी वह स्नेह संभालता है। मृगावती का स्मरण करता है और कहता है मेरी 'भुगुति' (भोजन) मृगावती है। आकर कोई मुझे भीख दे। योगी वेश धारण करने का क्या उद्देश्य है इसका प्रस्तुत लेखक ने अन्यत्र विस्तार से विचार किया है।[5] यहां यह स्मरणीय है कि राजकुंवर के पास

---

१. भूत भुअंगम हौं न डराऊं। कथा होइ जिउ तौ भरमांऊं।
राकस भूत जौ रे मोहि खाही। तौ मारग सिधि नेग लगाही।
बास तैं बन प्रीतम बिनु लागैं। भाव पंथि बनि रह न भागैं।
प्रीतम लागि बहुत दुख सहिए। दुख कै मिलिइ तौ रे सुख लहिए।
दस नख कुंवर दसौ मुख मेला। वहै पंथ दिखराउ दुहेला।
ओहि लगि जीउ संकलपेउं जौ भावौ सो होउ।
जौ जिउ दखिनां दीजइ काहु कहुं ताकर कौन मरोहु॥
—मृगावती, ११४

२. उहइ राजपूत आहि सुलाखन इन्हहिं दइय दिहा राज।
बिरयवत कह कोटि आपदा दिन दस भलेहिं बिराज।**—मृगावती, ३२६।६,७**

३. मरइ क डर मोहि किछुव न लागै।
एहि पंथ मुएं पापु सब भागै॥ **—मृगावती, १७४।१**

४. किएसि उडियानी ? गोरखपंथा। पायं पावरी मेखिल कंथा।
जटा चक्र मुंद्रा जप माला। डंडा खापर केहरि छाला।
जोगोटा रुद्राख अधारी। भसम किहेसि तिरसूल संवारी।
कर किंगरी धंधारि मन मेला। बार बजावइ रैनि अकेला।
सींगी पूरइ नेह संभारै। जपइ कुरंगिन खिनि न बिसारै।
जोग जुगति होइ खेला मारग सीसि होइ कहं जाइ।
भुगुति मोरि मिरगावति भीख देइ कोइ आइ। **—मृगावती, १०६**

५. **मध्ययुगीन प्रेमाख्यान**—डा० श्याममनोहर पांडेय, मित्र प्रकाशन प्रा० लि०, १९६१ पृ० २३५ २३६।

बाघम्बर है, मृगछाला नहीं। यह बाघम्बर पौरुष का द्योतक है। राजकुंवर के पौरुष का प्रकाश 'मृगावती' में प्रायः होता रहता है। एक स्थान पर वह कहता है—मैं 'मृगावती' के लिए आग में पड़ूँगा। पलंका विध्वंस करूंगा। यदि उसका नाम सुनूं तो सात स्वर्ग में जाऊंगा। सती के लिए शिव ने विध्वंस किया मैं उसके कविलास को जलाऊंगा।[1] इसी पौरुष के संबल पर तथा विधाता का स्मरण कर राजकुंवर उसकी कृपा प्राप्त करता है और अनेक दुखों से मुक्ति पाता है। राजकुंवर जब मृगावती की खोज में निकलता है तो वह सागर के तट पर मार्गदर्शक जंगम के साथ आता है। वह एक जलयान पर पार जाना चाहता है, किन्तु समुद्र में वह ऐसे स्थान पर पहुँच जाता है जहाँ लहरें उठ रही हैं। उसका जलयान उसमें फंस जाता है। एक मास तक वह उन लहरों में रहता है और फिर दैव की कृपा से तट पर पहुँचता है।[2]

सुप्रसिद्ध सूफी संत निफ़ारी ने 'किताबुल–मवाक़िफ' में समुद्र यात्रा और जलयान के प्रतीक को विस्तार से समझाया है—"वह मेरे साथ सागर में रहा। मैंने जलयानों को डूबते और तख्तों को तैरते हुए देखा। फिर तख्ते भी डूब गये और उसने मुझसे कहा—"(१) जो समुद्र यात्रा करता है उसकी रक्षा नहीं होती है। (२) वह

१. जौ कोइ चाह कहइ धंसि लेऊं। जौ जिय मांग काढ़ि कै देऊं।
राम सेत बांधेउ सिअंलागी। हौं ओहि लागि परौ मझ आगी।
हनिबंत सिय लगि जारी लंका। हौं रे विधांसौं जाइ पलंका।
सात सरग चढ़ि धावौं जाऊं। जहां सुनौं हौं मिरगावति नाऊं।
हरइ सती लगि मारि विधांसा। हौं ओहि लगि जारौं कविलासा।
जैसे भरथरि भयेउ पंथ योगी अइस पिंगलां सोग।
रोवइ लंक दुहूं कर टेके कहइ हौं पथि वियोग॥
—**मृगावती, १०२**

२. बोहित बहुरि चाह बहि जाई*। परा जाइ जहं लहरि उठाई।
लहरि आइ वह देखत भूला। जनौ हिडोलइ बरसेउं झूला।
तर ऊपर आवइ औ जाही। बोहित चारिहु दिसि बौराही।
कबहुँ पुरुब पच्छिम कहुँ धावैं। कबहुँ उतर दखिन फिर आवैं।
हौं अपने जिय डरत डराऊं। जौ रे मरौ तो आहि न मिलाऊं।
कुतुबन प्रीतम अगम मुइं वै उहां बसहिं निचित।
हम वैलोचन डारि जिमि हिअइ खुरककहिं नित। —**मृगावती, ११**[illegible]
(*दिल्ली की प्रति में प्रथम चरण का "बोहित बहा चला वह आई" पाठ [illegible] वह अधिक संगत लगता है। डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'मिरगावती' के संस्करण में यही पाठ लिया है।)

एक मास लहरन्हि महं रहा। बिनवइ लाग दइय सेउं कहा।—**मृगावती, ११८।**
लहरि तरंदी उठी गंभीरा। दइय मरा करि पाइसि तीरा। —**मृगावती ११८**

खतरे में पड़ता है जो समुद्र में अपने को पटक देता है और खेता नहीं। (३) वह नष्ट होता है जो खेता है और खतरा नहीं लेता। (४) खतरा लेना मुक्ति का एक अंग है।"... लहर उठी और उसके तल में जो कुछ था उसने उसे ऊपर उठा दिया और तट पर पहुँचा दिया।[१]

सागर की सतह को दुर्गम तथा उसके तल को अगम अन्धकार बताते हुए निफारी ने कहा है कि तल और सतह के बीच में मछलियाँ होती हैं।"........मैं तुम्हे धोखा देता हूँ यदि तुम्हें अपने अलावा कहीं अन्य जाने का रास्ता बताता हूँ।"...यह ससार उसके लिए है जिसको हमने इससे विमुख कर दिया है और जिनसे इस संसार को विमुख किया है। दूसरा संसार उसका है जिसकी तरफ मैंने इसको मुखातिब कर दिया है और जिनको मैंने अपनी तरफ कर लिया है।[२] 'मृगावती' का राजकुँवर तथा हिन्दी के अन्य सूफ़ी प्रेमाख्यानों के नायक संभवतः इसी कोटि में हैं जिनको परमेश्वर ने संसार की ओर मुखातिब करके अपनी ओर कर लिया है। निफ़ारी की उक्तियों की श्री निकलसन ने 'मिस्टिक्स आफ इस्लाम' में विस्तार से व्याख्या की है। "लहर उठी और उसने तट पर पहुँचा दिया" की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है— "लहरों के नीचे पड़े हुए लोग वे हैं जो जहाज में समुद्र यात्रा करते हैं और परिणाम-स्वरूप जहाज के ध्वंस हो जाने पर दुख उठाते हैं। उनका गौण कारणों पर भरोसा करना उन्हें किनारे पर ला पटकता है। अर्थात् पुनः उन्हें दृश्य-जगत् में वापस लाता है जहाँ वे परमात्मा के दर्शन से वंचित रह जाते हैं।"[3]

---

१. He stayed me in the Sea, and I saw the ships sinking and the planks floating; then the planks sank also. And He said to me :

(1) Whoso sails is not saved ?
(2) He runs a risk who flings himself in and does not sail.
(3) He perishes who sails and does not risk,
(4) In running a risk is a portion of delivery.

—*Kitāb-al-Mawāqif* of Muhammad Ibn'abdi' l Jabbar-Al-Niffari—Edited and translated by A. J. Arberry, London, 1935, p. 31.

२. This world belongs to him whom I have turned from it, and from whom I have turned it; the next world belongs to him towards whom I have turned it, and whom I have turned towards Me.—*Ibid.*, p. 31.

३. इस्लाम के सूफी साधक (निकलसन कृत 'The Mystics of Islam' का हिन्दी अनुवाद) अनुवादक श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, पृ० ६४-६५।

(*The Mystics of Islam*—R. A. Nicholson, Routledge & Kegan Paul Ltd London 1963 pp 74-75

वाहन का अभिप्राय बताते हुए श्री निकलसन ने यह कहा है, "वाहन का अभिप्राय जहाज से अर्थात् परमात्मा को छोड़कर अन्य किसी वस्तु पर भरोसा करने से है।"[१]

निफ़ारी के इस कथन का, "जो अपने को समुद्र में फेंक देता है और खेता नहीं है वह खतरे में पड़ता है" विवेचन करते हुए श्री निकलसन कहते हैं, "समस्त गौण कारणों का परित्याग करना समुद्र में कूद पड़ने के समान है। ऐसा साहस करने वाला रहस्यवादी दो कारणों से खतरे में पड़ जाता है। वह सोच सकता है कि त्याग के कार्यों को आरम्भ और पूर्ण करने वाला वह स्वयं ही है, न कि परमात्मा; और जो कोई किसी वस्तु का त्याग अहं के साथ करता है, वह उससे भी बुरी अवस्था में होता है जिसमें परित्याग न करने पर होता। अथवा वह गौण कारणों को अर्थात् अच्छे कार्यों, स्वर्ग की आशा आदि को परमात्मा के लिए नहीं वरन् निपट उदासीनता तथा आध्यात्मिक भावना के अभाव के कारण त्यागता है।[२]

राजकुंवर आगे बढ़ने पर दानव का साक्षात्कार करता है और उससे रूपमिनी का उद्धार करता है और सुबुध्या नगरी में उससे विवाह करता है। इसके अनन्तर उसे गडेरिया मिलता है जो मनुष्यों को खाता रहता है। उससे मुक्ति पाकर कुंवर कंचनपुर के समीप पहुँचता है और दो पक्षियों को आपस में यह चर्चा करते हुए सुनता है कि 'राजकुँवर का दुख समाप्त होगा और अब वह सुख देखेगा।'[३] दुख उपस्थित करने वाली चीजों की प्रतीकात्मकता का विवेचन उसी प्रकार किया जा सकता है जैसे निकलसन ने समुद्र का किया है।

सूफ़ी प्रेम-साधना में विरह का बड़ा महत्त्व है। राजकुंवर के विरह का चित्रण कुतुबन मार्मिक ढङ्ग से करते हैं—

विरह वियोग प्रेम दुख कहई। जो रे सुनइ तेहि चेतन रहई।
बकतइ पेम रसाल कहानी। सुनत राइ चित चेत भुलानी।
कहत विरह जेइं सुना सो रोवा। नैंन सलिल कर मलि मलि धोवा।
दंद उदेग उचाट बिरुद्धा। जेइं रे सुना सों सुनत लुबुद्धा।
अवर कथा वह कहइन जानां। मिरगावति कर पेम बखानां।
कुतुबन सात समुन्दरहि सलिल सधान प्रवान।
धार सेवातो मन बसी चातिग चित्त निदान॥ —मृगावती, १११

१. इस्लाम के सूफी साधक, पृ० ६६।
२. वही, पृ० ६४-६५।
३. दुवौ आप महि बकतहिं बाता। कुंवर एक मिरगावति राता।
अब लगि ओइं रे बहुत दुख देखा। कागर मसिहि जाइनहिं लेखा।
अब रे अलप दिन आहीं दुख के सुख देखिहि बहु भाँति।
बहुत बिबक्खर चलि गए अब होइंहि मन सांति॥
—मृगावती १११४५६७

अन्यत्र भी इस वियोग दशा का चित्रण कुतुबन ने किया है (छंद १०३, १०९।४, ११०।३–६।७)। यह वियोग का भाव केवल राजकुंवर में ही नहीं, मृगावती और रूपमिनी में भी है जिस पर आगे विचार किया जायगा। प्रेम में जो एकनिष्ठता, त्याग और आत्मसमर्पण की भावना होनी चाहिए उसका निरूपण 'मृगावती' मे भी हुआ है। हिन्दी के अन्य सूफ़ी कवि भी इनकी अभिव्यक्ति विस्तार से करते है। फ़ारसी के सूफ़ी कवियों ने भी विरह का चित्रण विस्तार से किया है।[1]

कुतुबन कृत 'मृगावती' में प्रेम साधक के लिए सत की महिमा बतायी गई है। राजकुंवर कहता है कि मुझे मरने का डर नहीं लगता है। इस पंथ पर मरने से पाप भाग जाता है। सत है तो सिद्धि होगी उसका दुर्जन दूत (संभवतः शैतान) कुछ नही कर सकता।[2]

प्रेम के सारे दुखों को झेलकर जब 'मृगावती के कंचननगर में राजकुंवर प्रवेश करता है तो वहाँ का सारा वातावरण आनन्दमय लगता है। कंचननगर मे पहुँचने के पूर्व ही दो पंखी उसे शुभ सूचना देते हैं। उनके वचनों को सुनकर राजकुंवर को अकथनीय आनन्द प्राप्त होने लगता है।[3] जैसे पिपासा में मरते हुए को जल मिल गया और प्रेम के घाव को औषधि मिल गई।[4] कंचनपुर में आनन्द के उपकरण है। मृगावती है और उसकी महिमा से मंडित विभिन्न प्रकार के वृक्ष, फूल-पौधे, वाटिकायें, अमराइयाँ सब कुछ सुखमय हैं। कुतुबन ने उसकी तुलना सिंहल द्वीप से की है—

सिंहल दीप जनौ इहवै छावा।
पदुमिनि रूप बिसेखहि भावा। —**मृगावती**, २०६।४

कंचन नगर की पनिहारिनें राजकुंवर से कहती हैं—"यह राज्य मृगावती का

---

१. **मध्ययुगीन प्रेमाख्यान**—डा० श्याममनोहर पांडेय, इलाहाबाद, १९६१, पृ० १२५।

२. मरइ क डर मोहि किछुवन लागै। एहि पंथ मुएं पापु सब भागै।
नेहि लागि जो रे जिउ देई। दुवौ जग धरम मोल सो लेई।
ओहि सत कहं देखहि सुरदेवा। जो जिउ मीत लागि परिछेवा।
जो पै सत है तौ सिधि होई। दुरिजन दूत कहा करै कोई।
सत्त संघाती साथ होइ जाही। सत्त संघाती साथ बड़ ताही।
सत के साथ जो आएउं सत सइ लेइहि छड़ाह एहि ठाउं।
सो सत आहि साथ बड़ मोरे जपत तेहि कर नाउं॥
—**मृगावती**, छंद १७४

३ कुंवर बात यह सुनी सोहाई। भा अनंद अस कहा न जाई।
—**मृगावती**, २००।१

४ मरत पियास पानि जनौ पावा। पैम घाइ औषद जनौ लावा।
—**मृगावती**, २०० २

है और यह कंचनपुर जगत् का सूर्य है। जो भी योगी, यती और संन्यासी आते है उनका यहाँ बड़ा मान है।"

कहिन्हि राज मिरगावति केरा कंचनपुर जगमान।
जोगी जती सन्यासी जो आवहि तिन्हकर इहं बड़ मान।

यह प्रेम-साधक के प्रिय का नगर है। सारे दुखों के बाद यह नगर राजकुंवर को प्राप्त हुआ है जहाँ आनन्द ही आनन्द है। कंचनपुर में मन्दिरों, धवल गृहों और देव गृहो को देखकर सभी पाप नष्ट हो जाते हैं—

वहु बनिजारे खांधइ छाए छतिसौ कुरी व्यौपारि।
मंदिर देखि धौरहर देवर पाप जरइ सब झारि।

—मृगावती, २०७।६,७

मृगावती से मिलन के बाद राजकुंवर के दुख

मृगावती से मिलन हो चुकने के बाद भी राजकुंवर को एक बार दानव के कारण दुख उठाना पड़ता है। एक भयानक दानव जो काला वर्ण का रीछ जैसा है, राजकुंवर को लेकर आसमान पर ले उड़ता है।[1] वह उसे ले जाकर समुद्र मे फेंक देता है जहाँ नक्र और घड़ियाल हैं (२७०।५,७)। राजकुंवर विधाता का स्मरण करता है (२७१) और उसकी रक्षा होती है। कुतुबन ने यहाँ कहा है कि जब वह पूर्व कर्मों के कारण उबर गया तो उसे मृगावती के बिछोह का दुख हुआ (२७१।६)। इस बिछोह का कारण भी विधाता ही है (२७२।६)।

सागर और उसमें स्थित मछलियों के प्रतीक का निकलसन ने विवेचन प्रस्तुत किया है। नक्र और घड़ियाल का विवेचन तो उन्होंने नहीं किया है पर मछलियो के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है, "मछलियों से तात्पर्य इसमें आने वाली शंकाओं तथा बाधाओं से है।[2] विधि का लेख और साधना की अपूर्णता से राजकुंवर को यह मिलनोपरान्त वियोग हुआ है।

मृगावती को जब यह सूचना एक चेरी से मिलती है कि राजकुंवर को दैत्य उड़ा ले गया है तो वह विरह संतप्त हो उठती है। मृगावती का विरह भी अत्यन्त मार्मिक है और वह सामान्य मानवीय नायिका जैसा वियोग प्रकट करती है। उसका दैवी रूप यहाँ अपेक्षाकृत कम भास्वर है।

कुतुबन प्रेम को एकांगी नहीं रहने देना चाहते। राजकुंवर के लिए भी मृगावती के मन में प्रेम है इसको भी प्रकट करना वह अपना धर्म समझते हैं। पवन

१. यह राक्षस मृगावती के यहाँ एक बन्द कोठरी में बाँध दिया गया था। शायद वह मृगावती पर लुब्ध था (छंद २६७)। एक दिन मृगावती जब अपनी सहेली के पास गई थी, राजकुंवर ने उसे खोल दिया। तब वह अपने भयानक रूप में प्रकट हो गया।

२. **इस्लाम के सूफी साधक** मित्र प्राइवेट लिमिटेड १९६१ पृ० ९६।

कहता है—"दोनों प्राणियों में प्रेम है और दोनों में एक ही रति है इसको कैसे जाना जाय, जब मालती के मन मे मधुकर और मधुकर के मन में मालती हो।"

विधि राते किय जानि यहि दुहुं चित एकइ रत्ति।
मालति मन मधुकर बसइ मधुकर मन मालत्ति।

—मृगावती, २८८।६,७

इसके वाद दोनों मिलते है। कुतुबन ने दोनों की रति और केलि का चित्रण भी इसके पश्चात् किया है—

सेज मिले रस केलि कराहीं।
अमिय सुफर बिरसहिं वै खाहीं। (छंद २००।५)
अमिय पयोहर दलमलइ अधर धूंटि रस लेइ।
नौ सत्ता ससि बदनी अबला असि धनि भोग करेइ॥

(छंद २००।६,७)

कुतुवन यदि इस संभोग का चित्रण नहीं करते तो अस्वाभाविक होता। मृगावती दैवी गुणों से सम्पन्न होते हुए राजकुंवर की स्त्री भी है। उनमें पति-पत्नी भाव भी है। अतः इस धरातल पर संभोग प्रेम साधना का विरोधी नहीं है। यह स्मरणीय है कि मृगावती प्रथम मिलन में रति या संभोग की स्थिति नहीं आने देती। वह राजकुंवर को इसके लिए विवर्जित करती है (छंद ८८।६)। मृगावती एक स्थान पर यह भी संकेत करती है कि बल मे रस की वात नहीं होती। जो रस से रस में अनुरक्त होता है उसके दोनों जग ठीक रहते हैं।[1] रस के साथ रस केलि साधक के दोनों जग सुधारते हैं। यह व्यंजना आध्यात्मिक है।

रूपमिनी के प्रेम और विरह में भी तीव्रता दिखाई गई है। किन्तु वह पत्नी का विशुद्ध प्रेम है। रूपमिनी को अलौकिक रूप कुतुबन ने नहीं दिया है। इसलिए उन्होंने उसका नखशिख भी चित्रित नहीं किया है। वह राजकुंवर की विवाहिता है। प्रेम साधना में *अभीष्ट* की प्राप्ति हो जाने पर वह उसके पास लौटता है और मृगावती से एक स्थान पर कहता है—विवाहिता पत्नी को छोड़ा नहीं जा सकता।

कहिसि बियाही न छाड़ी जाई। औ जो कहहु सो किअइ सिराई।

—मृगावती, ३६६।५

उसमें एक सामान्य नारी की प्रायः सभी संवेदनाओं का समन्वय है। उसमें पति के प्रति प्रेम है। अतः उसको वह उलाहना भी देती है। मृगावती के प्रति सपत्नी भाव तथा ईर्ष्या भी उसके हृदय में कम नहीं है।

---

१. रस कै बात बर सेउं नहि होई। रस जो आहि रस रेउं भलि सोई।
मैं रस बात कही रस तोही जौ रस कीजइ बात।
सो रस रहइ दुंहु जग ताकर जो रस सेउं रसरात॥

मृगावती, ८६।५,६,७

४

'मृगावती' के संस्करण

'मृगावती' सूफ़ी काव्य परम्परा की द्वितीय महत्वपूर्ण कड़ी है जिसकी रचना ९०९ हिजरी अर्थात् १५३० ईसवी में हुई।[1] इसके तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम संस्करण डा० शिवगोपाल मिश्र का है, जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन से शक संवत् १८८५ में प्रकाशित हुआ था। इसमें मिश्र जी ने एकडला की प्रति का पाठ यथा साध्य उतार देने की चेष्टा की है और साथ में बीकानेर की प्रति का पाठांतर दे दिया है। जिस समय 'मृगावती' पर श्री मिश्र कार्य कर रहे थे उस समय दिल्ली की प्रति का, जो लगभग पूर्ण है, पता चल गया था, किन्तु उसके उपयोग की चेष्टा उन्होंने या तो की नहीं या उन्हें प्रति प्राप्त नहीं हो सकी। अतः उनका संस्करण अपूर्ण है। पुनः जिन नागरी लिपि में प्राप्त प्रतियों का उन्होंने उपयोग किया है उनके पाठों का भी वैज्ञानिक समीक्षण उन्होंने नहीं किया है, अतः पुनरावृत्ति, असम्बद्धता, अस्पष्टता, तथा पाठ-निर्णय की असंगतियां सहज ही देखी जा सकती हैं। किसी गम्भीर अध्ययन के लिए उनका संस्करण उपयोग में नहीं लाया जा सकता, अतः प्रस्तुत लेख में उस पर विचार नहीं किया जा रहा है। अभी हाल में थोड़े समय के अन्तर से डा० परमेश्वरीलाल गुप्त और डा० माताप्रसाद गुप्त के संस्करण प्रकाशित हुए हैं। इन दोनों विद्वानों ने रचना का एक पूर्ण पाठ देने का प्रयास किया है, अतः इनके संस्करणों का तुलनात्मक अध्ययन उपयोगी हो सकता है।

---

१. "इनहिं* के राज एहि रे हम कहे। नौ से नौ जौ संबत् अहे।"
—मृगावती, डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, १९६८, छंद ११।
('इनहिं'* यहां जौनपुर के हुसेनशाह शर्की (मृ० ९१० हिजरी) के लिए कहा गया है।)

श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने दिल्ली की प्रति का उपयोग करते हुए एकडला और बीकानेर की प्रतियों का पाठान्तर दे दिया है। उन्होंने चौखम्बा और मनेर शरीफ की प्रतियों के पाठान्तर भी दे दिए हैं। सम्पादन की वैज्ञानिक प्रणाली का अवलम्बन उन्होंने भी नहीं किया। उनका उद्देश्य दिल्ली की प्रति का पाठ देकर अन्य प्रतियों का पाठान्तर संकलित करना मात्र था। उन्होंने कहा है—"पाठ-सम्पादन करते समय मैंने संशुद्ध पाठ (Critical Text) करने जैसा कोई प्रयास नहीं किया है। दिल्ली प्रति को पाठ का मूलाधार मानकर मैंने अन्य प्रतियों के पाठान्तर मात्र सकलित कर दिए हैं। ऐसी अवस्था में यह कार्य कदाचित् वैज्ञानिक नहीं कहा जाएगा। किन्तु मेरी निश्चित धारणा है कि मेरे इस कार्य का वैज्ञानिक कथित ढंग पर किए गए कार्य से कदाचित् ही किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर भिन्नता होगी।"[1]

डा० माताप्रसाद गुप्त ने वैज्ञानिक पद्धति से 'मृगावती' का पाठ सम्पादन किया है। प्रतियों का पाठ-संबंध उन्होंने उनकी पाठ-विकृतियों के आधार पर स्थापित किया है और पाठालोचन के सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए एक वैज्ञानिक पाठ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अतः दोनों विद्वानों के परिणामों में भारी अन्तर आ गया है जिसका विवेचन प्रस्तुत निबन्ध में प्रस्तुत किया जायगा।

प्रतियां और सम्पादन प्रणाली

'मृगावती' की ५ प्रतियां उपलब्ध हैं। प्रतियां बीकानेर, दिल्ली, एकडला, काशी, मनेर शरीफ आदि की हैं और अपने ढंग से दोनों विद्वानों ने इनका उपयोग किया है। अतः इनका थोड़ा परिचय दे देना असंगत न होगा।

बीकानेर की प्रति—यह खंडित प्रति कैथी लिपि में है। इसके कुल ७७ पत्र प्राप्त हैं।[2] प्रति ढाई तीन सौ वर्ष पुरानी प्रतीत होती है।[3] अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में यह प्रति सुरक्षित है। इसी पुस्तकालय में एक और प्रतिलिपि है जो सम्भवतः काशी की किसी प्रति पर आधारित है।

दिल्ली की प्रति—दिल्ली की प्रति का सर्वप्रथम विस्तृत परिचय डा० अस्करी ने सन् १९५५ में दिया था। इसकी खोज भारतीय पुरातत्त्व विभाग के डा० जिया-उद्दीन अहमद देसाई ने की थी। फारसी लिपि में लिखित यह प्रति लगभग पूर्ण है केवल प्रारम्भ के कुछ छन्द एवं छन्दांश इसमें नहीं हैं। इसमें प्रतिलिपि-संवत् नही दिया हुआ है।

एकडला की प्रति—यह प्रति एकडला फतेहपुर (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त हुई थी। यह आजकल काशी के भारत कला भवन में है। यह भी कैथी लिपि में है।

---

१. **कुतुबन कृत मिरिगावती**—डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, बनारस, १९६७, पृ० ११।
२. **मृगावती**—डा० शिवगोपाल मिश्र, इलाहाबाद, शक १८८५ (भूमिका), पृ० २।
३ **मृगावती**—डा० माताप्रसाद गुप्त आगरा १९६८ (भूमिका) पृ० ४२

इस प्रति में कुल २५३ पत्र हैं।[1] यह प्रति सम्भवतः सं० १७४४ के आस-पास की है।[2]

मनेर शरीफ की प्रति—यह प्रति फारसी लिपि में है और खंडित है। प्रतिलिपि-तिथि इसमें भी नहीं दी हुई है। यह 'चांदायन' की मनेर शरीफ की खानकाह से प्राप्त एक प्रति के हाशिए पर अंकित है। रचना के प्रारम्भ तथा अन्त के अंश इसमें नहीं हैं। इसकी सूचना भी डा० हसन अस्करी साहब ने अपने लेख मे दी थी।[3]

सम्पादन प्रणाली

डा० माताप्रसाद गुप्त ने प्रतियों की पाठ विकृतियों के आधार पर उनकी प्रतिलिपि-परम्परा का निर्धारण किया है और यह निश्चय किया है कि दिल्ली, मनेर शरीफ और एकडला की प्रतियों में संकीर्ण सम्बन्ध है।[4] बीकानेर की प्रति में नायिका का नाम रुकमिनी है जबकि मनेर शरीफ, दिल्ली तथा एकडला की प्रतियो से 'रूपमिनी' प्राप्त होता है। इससे भी प्रतीत होता है कि बीकानेर की प्रति एक स्वतन्त्र शाखा की है और मनेर शरीफ, दिल्ली और एकडला की एक परम्परा की हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस पाठ-सम्बन्ध के आधार पर अपने पाठ-सम्पादन के सिद्धान्त को निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया है।[5]

(१) जो पाठ बीकानेर में एक ओर तथा मनेर शरीफ, दिल्ली, एकडला और अनूप संस्कृत पुस्तकालय की प्रतिलिपि में से किसी में दूसरी ओर समान रूप से मिलता है, वह मूलादर्श का होगा।

(२) जहाँ बीकानेर की प्रति में एक पाठ तथा शेष अन्य में अन्य पाठ होगा, वहाँ पर निर्णायक रचना का अन्तःसाक्ष्य होगा। यह पाठ उतना निश्चयपूर्ण न होगा जितना (१)।

(३) जहाँ पर बीकानेर त्रुटित है, और शेष प्रतियों में समान पाठ मिलता है वह पाठ उक्त शाखा का माना जायगा। यह पाठ उतना निश्चयपूर्ण न माना जा सकेगा जितना उपर्युक्त (१) या (२)।

(४) जहाँ पर बीकानेर त्रुटित है, वहाँ पर जो पाठ दिल्ली-मनेर शरीफ, मनेर शरीफ-एकडला, अथवा दिल्ली-एकडला में से किसी युग्म में समान रूप से

१. मृगावती—डा० शिवगोपाल मिश्र, इलाहाबाद, भूमिका पृ० ४।
२. मृगावती—डा० माताप्रसाद गुप्त, भूमिका, पृ० ४५।
३ रेयर फ्रैगमेंट्स ऑफ चंदायन एंड मृगावती—डा० हसन अस्करी, जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी, भाग ४१, सन् १९५५।
४ मृगावती डा० गुप्त भूमिका, पृ० ५४
५ वही, पृ० ५५

मिलता होगा, वह उक्त शाखा का माना जायगा। यह पाठ भी एक ही शाखा का होगा। इसकी स्थिति उतनी भी निश्चयपूर्ण न होगी जितनी (३) की।

(५) जहाँ पर दिल्ली-मनेर शरीफ,मनेर शरीफ-एकडला और दिल्ली-एकडला मे भिन्न-भिन्न दो या तीन पाठ मिलेंगे, वहाँ पर निर्णायक रचना का अन्त:साक्ष्य होगा यह पाठ उतना भी निश्चयपूर्ण न माना जा सकेगा जितना (४) का होगा।

(६) किसी एक ही शाखा की एक प्रति मे मिलने वाला छंद या छंदांश तभी स्वीकार्य हो सकेगा जबकि अन्य प्रतियाँ वहाँ त्रुटित होंगी और अन्त:साक्ष्य उसका दृढ समर्थन करेगा।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर डा० माताप्रसाद गुप्त ने रचना का जो पाठ पुनर्निर्मित किया है उससे डा० परमेश्वरीलाल गुप्त द्वारा निर्धारित पाठ काफी भिन्न है। डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा निर्मित पाठ स्पष्ट और काफी प्रामाणिक बन गया है और उसमें ऐसे अनेक शब्दों का उद्धार हो सका है जो डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के संस्करण में सम्भव नहीं हो सका है। उदाहरण के लिए, दोनों विद्वानों द्वारा निर्मित कुछ छंद या उनके चरण नीचे दिये जा रहे हैं।

प्रस्तुत छंद 'मृगावती' में बारहमासे के बाद आता है। इसमें रूपमिनी नायक से अपना विरह-निवेदन कर रही है और उसे राजकुंवर तक पहुँचाना चाहती है। डा० परमेश्वरीलाल गुप्त की 'मिरगावती' में यह छंद इस प्रकार है—

> संखा जिह दूभर निसि होई, सेज गवेभ नींद न सोई।
> औ चकोर कंह जिउ निकराई, निमिख निमिख जुगजुग बर जाई।
> यह दुख बरसि क आइ तुलानां, अब न रहहिं घट जाहिं पराना।
> नव तिय देखहिं आदरस खाई, मरिहौं तिह परहत्यै लगाई।
> दई क डर चित करहु बिचारी, हत्या निबहें किये हुत भारी।
> हिया न समुझै बाउरेउ, जिह समुझावउं चित्त।
> देखन चाहौं पिय कहं, लोहू रोवों नित्त।।

(परमेश्वरीलाल गुप्त, छंद ३२६)

इसी छंद को डा० माताप्रसाद गुप्त ने निम्नलिखित प्रकार से पुनर्निमित किया है—

> सिंघासन जनु दूभर होई। सेज के बंछ नींद नहीं सोई।
> औ चकोर कहुँ जोन्ह कराई। निमिख निमिख जुग जुग बरुजाई।
> एहि दुख बरिसक आइ तुलनां। अब न रहहिं घट जार परानां।
> तरुनी देखि अडारसि खाई। मरिहौं तोहि पर हत्या लाई।
> दइय क डर चित्त करहु बिचारी हत्या बमन गवहु त मारी

हिया न समुझइ बाउर जौ समुझावउं चित्त ।
देखन चाहइ पीउ कहं लोहू रोवइ नित्त ।।

(डा० माताप्रसाद गुप्त, छंद ३२१)

छंद के प्रथम चरण में 'सिंघासन' को डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'संखाजिह' किया है। 'सेझ केवंछ' का 'सेज गवेझ' किया है। 'जौन्ह कराई' का उन्होने 'जिउ निकराई' किया है। 'तरुनी देखि अडारसि खाई' का 'नव तिय देखहिं आदरस खाई' किया है। 'मरिहौं तोहि पर हत्या लाई' को 'मारिहौं तिह पर हत्ये लगाई" किया है। 'हत्या बंभन गउहु तें भारी' का 'हत्या निबहें किये हुत भारी' किया है। स्पष्ट है, जहाँ पर यह अर्थ है "—कि चित्त में दैव का भय विचारो, (नव तरुणी की) हत्या ब्राह्मण और गाय की हत्या से भारी है।" वहाँ पर श्री परमेश्वरीलाल गुप्त का पाठ कोई संगत अर्थ नहीं देता है।

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त का पाठ इतना हास्यास्पद क्यों हो गया है ? इसके दो कारण हैं। प्रथम कारण तो यह है कि उन्हें वैज्ञानिक सम्पादन प्रणाली से परिचय नही है। अन्यथा बीकानेर प्रति की सहायता से वह 'सिंघासन', 'केवंछ', 'जोन्ह', 'अडारसि' आदि शब्दों का पुनर्निर्माण सरलता से कर सकते थे। उनकी दूसरी कमी भाषा और साहित्य से परिचय का न होना है, अन्यथा पाँचवे चरण के किसी समीचीन पाठ की खोज अर्थ को दृष्टि मे रखकर वह अवश्य करते और ऐसा पाठ नही देते जिसका संभवतः अर्थ होगा "भारी हत्या करने से हत्या निभ जाती है।"

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के संस्करण में इसी प्रकार के अनेक छंद हैं। उनके संस्करण का एक छंद निम्नलिखित है—

"चंचल चपल मिरघ संह सीखे, बहु भोजन देखत अति तीखे ।
लेत सांस औ ससथ ते कानां, दहा ताड़ जग जित हो रानां ।
पौन पाइ सों आहि पिरीती, ता जन देखि उड़हि वह रीती ।
भांजत पूंछ चंवर जनु आही, चंवर धार जनु धारहि ताही ।
कान ककनिया अहहि सुहानी, जानु कतरनी कतरि बिनानी ।
चाकर खुर अरु मोंट, तज ताजी कुंडवानी ।
आनि ठाढ़ि कै घालि, पीठि पाखर सुनवानी ।

(परमेश्वरीलाल गुप्त, छंद ६४)

डा० माताप्रसाद गुप्त के संस्करण में यही छंद इस प्रकार है—

चंचल चपल मिरिग सन सीखे । बहु भोजन देखत अति तीखे ।
लेत सांस उससहिं ते काना । ढाटा दु जग जनहुँ रा.... ।
पौन पाइ सौं आहि पिरीती । ताजन देखि उड़हि उन्ह री(ती) ।
भांजहि पूंछि चंवर जनु आही । चंवर धारि जनु ढारहिं ताही ।
कान,सुसैलइ अहहि सुहाए जानु कतरनी कतरि बनाए

चाकर खुर अरु मोंति तेज ताजी खंडवानी।
आनि ठाढ़ किए पीठ घालि पाखर सोनवानी ।।

(माताप्रसाद गुप्त, छंद ९१)

उपर्युक्त छंद में डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'उससहिं' का 'औससथ' किया टा दु जग जनहुँ का उन्होंने "दहा ताड़ जग जित हो" किया है। इनके क भी अनेक अशुद्धियाँ हैं जिन्हें ऊपर सहज ही देखा जा सकता है।

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने एक छंद इस प्रकार दिया है—

चला कुंवर मिरगावति जहाँ, सींघ संदूर अगम बन तहाँ।
डर भौ एको आह न करई, किंगरी पेम बजावइ झुरई।
मग अमग न जाने भोला, विरह भाक पै अउर न बोला।
तब लग मग अमग गुनीजइ, जब लग मोह मया मन कीजइ।
ताम लगन कुल मेल रहे जे, बन क पंखी पर न परिचै।
ताम सेयांप ताम गुन जप तप संजम ताग।
वंक घटै लोयना पर न पूजै जाम।

(परमेश्वरीलाल गुप्त, छंद १११)

डा० माताप्रसाद गुप्त ने उपर्युक्त छंद का पाठ निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है—

"चला कुंअर मिरगावति जहाँ, सीह सदूर अगम बन तहाँ।
'डर' भौ एक न लागइ तेही, किंगरी पेम बजावइ नेही।
मग्गु अमग्गु न जानइ भोला, बिरह भाख पै अवर न बोला।
तब लगि मग्गु अमग्गु गनिज्जै, जब लगि मोह मया मन किज्जै।
ताम लगें कुल सील रहिज्जै, वंक कटच्छनि बर न परिज्जै।
ताम सयानप ताम गुन जप तप संजम ताम।
बंक कटच्छन लोइनह बर न परिज्जै जाम ।।

(माताप्रसाद गुप्त, छंद १०८)

उपर्युक्त छंद बीकानेर, एकडला तथा दिल्ली तीनों प्रतियों में है। दिल्ली कडला की प्रतियां एक शाखा की हैं, बीकानेर की प्रति स्वतंत्र शाखा की है। ा० परमेश्वरीलाल गुप्त को इसका ज्ञान होता, तो इस उत्कृष्ट छंद की हत्या रते। छंद का पांचवाँ चरण विशेष रूप से दृष्टव्य है। डा० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार उसका अर्थ होना चाहिए—"तभी तक कुल का शील रहता है, (तरुणी के) बंक, कटाक्षों में बल न पड़े।" इसी चरण का अर्थ डा० परमे- ल गुप्त के पाठ के अनुसार होगा—"उसी समय तक कुल में मेल रहेगा जब न-पखी को पर से परिचय नहीं है।"

डा० माताप्रसाद जी ने दोहे का जो पुनर्निर्माण किया है उसके अनुसार अर्थ होना चाहिए—"तभी तक सयानापन है, तभी तक गुण है, तभी तक जप-तप और सयम हैं जब तक (कामिनी के) वंक कटाक्षों में बल नहीं पड़ता है।" डा० परमेश्वरीलाल जी ने जो पाठ इस चरण का दिया है, उससे कुछ भी अर्थ नहीं निकलता है।

तुलनात्मक दृष्टि से कुछ अन्य छंदों के चरण मात्र नीचे दिये जा रहे हैं।

परमेश्वरीलाल गुप्त (११५, ६,७)—

कुतुबन सात समुँद दधि, अउर सलिल को जान।
धार सिबाती मन बसे, चातक चीत नदान।।

माताप्रसाद गुप्त (१११/६,७)—

कुतुबन सात समुंदरहि सलिल सधान प्रवान।
धार सेवाती मन बसी चातिग चित्त निदान।।

श्री परश्मेवरीलाल गुप्त ने दोहे मे दिल्ली के पाठ का फारसी लिपि से नागरी मे लिप्यन्तर करके दे दिया है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस पाठ को बीकानेर प्रति के आधार पर पुनर्निर्मित किया है और उनके अनुसार इस दोहे का अर्थ होगा—"सातो समुद्रों में प्राणाणिक रूप से जल का संधान (संग्रह) है, किन्तु चातक के चित्त में तो निदान स्वाति की धारा ही मन में बसी हुई होती है।" डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के पाठ से दोहे का कोई संगत अर्थ नहीं निकलता है।

परमेश्वरीलाल गुप्त (१५०/२)—

सहस पढ़ा औ अरथ पचास क, सुर सरन माकर चौरास क।

माताप्रसाद गुप्त (१४६/२)—

सहसकीरत, अरधपचासिक, सुर सरिनी ? माकरा ? चौरासिक।

संस्कृत और अर्थ-पंचाशिका के लिए श्री परमेश्वरीलल गुप्त ने 'सहस पढा' और 'अरथ पचासक' कर दिया है।

परमेश्मरीलाल गुप्त (१५४/२)—

भाखा काम कुराल कै लीजै, जामघर कूचा जो कीजै।

माताप्रसाद गुप्त (१५०।२)—

भाखा काग कराल कलिल्जै, जंमुक खर कूचा जो गनिज्जै।

डा० माताप्रसाद गुप्त के पाठ के अनुसार अर्थ होगा—"कौए की कराल भाषा को पहचानिए और जंबुक, खर और उल्लू की बोली गिनिए।" डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने फारसी से नागरी में लिप्यंतर करने में भूल की है। वास्तव में दिल्ली की प्रति का पाठ है—"भाखा काल कराल कै लीजै" जिसको उन्होंने "भाखा काम कुराल कै लीजै" पढ़ लिया है। जो भी हो, दिल्ली के पाठ के सही लिप्यंतर से भी कोई संगत अर्थ नहीं लगता है।

परमेश्वरीलाल गुप्त (२०३।५)—

अबलहि वैं र बहुत दुख देखी, गागर मसि न जाहि लेखी।

माताप्रसाद गुप्त (१६६।५)—

अब लगि ओइं रे बहुत दुख देखा। कागर मसिहि जाइ नहिं लेखा।

उपर्युक्त चरण में 'कागर' का श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'गागर' पाठ दिया है और टिप्पणी में उसका अर्थ 'घड़ा' दिया है। उनके अनुसार अर्थ होना चाहिए— "अब तक उसने (राजकुंवर ने) बहुत दुख देखा। (श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'देखी' पाठ दिया है जो क्रिया का स्त्रीलिंग रूप है और 'दुख' कर्म के साथ नहीं लग सकता है)। घड़े की स्याही से उसका दुख नहीं लिखा जा सकता।" यह अर्थ उचित नही है। 'कागर' का अर्थ 'कागज' है और सही अर्थ होगा—"अब तक उस (राजकुमार) ने बहुत दुख देखा है जिसको कागज और स्याही से अंकित नहीं किया जा सकता है।"

परमेश्वरीलाल गुप्त (२०३।६,७) —

अब र अलप दिन आहहि दुख कै, सुख देखिह बहु भाँत।
बहुरे बिवि घर चलि गये, अब होइहि मन साँत।।

माताप्रसाद गुप्त (१६६।६,७)—

अब रे अलप दिन आहीं दुख के सुख देखिहि बहु भाँति।
बहुत बिबक्खर चलि गए अब होइहि मन साँति।।

'बिबक्खर' का श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने "बिवि घर" पाठ दिया है जिसका अर्थ है "दो घर"। इस प्रसंग में "दो घर" की कोई संगति नहीं है। 'बिबक्खर' शब्द 'विपक्ष' से बना है और उपर्युक्त दोहे के दूसरे चरण का अर्थ होगा— "विपरीत दिन चले गए अब (राजकुंवर के) मन में शांति होगी।"

परमेश्वरीलाल गुप्त (२४१।१)—

इत दुख सुनि जिउ घबरावा, मिरगावतीं गिय भरि कैं लावा।

माताप्रसाद गुप्त (२३७।१)—

एत दुख सुनि जिउ गहबरि आवा, मिरगावतिइं बहुरि गिव लावा।

श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने गहबरि आवा (भावातिरेक हुआ) का 'घबराया' पाठ कर दिया है जो असंगत है।

इसी छंद के चौथे चरण में उन्होंने 'नारंग' के स्थान पर 'असक' पाठ दिया है। उनका पाठ है "दारिउं दाख असक जंभीरी" जबकि अन्य पाठ है "दारिउ नारंग दाख जंभीरा"।

परमेश्वरीलाल गुप्त (२३२।२)—

तपै पचास बरहि अंगारा, तिह पर मदन तवै बिकरारा।

माताप्रसाद गुप्त (२२७।२)—

तपइ पचासनि परइ अंगारा उहि पर मदन तवइ बिकरारा

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'बजासनि (वज्राशनि)' को 'पचास' कर दिया है, जिसका कोई अर्थ प्रसंग में नहीं है।

परमेश्वरीलाल गुप्त (२१२।४)—

पण्डुर पान अदा कर खाहहि, खानि सुगन्ध सबै मँहकाहहिं।

माताप्रसाद गुप्त (२०८।४)—

पंडुर पान अडक्कर खाहीं, खानि सुगन्ध सबहिं महकाहीं।

'अडक्कर' का पाठ डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'अदाकर' दिया है जिसका कोई अर्थ नहीं है। वास्तव में शब्द 'अडक्कर' है जिसका रूप 'अडाकर' या 'अडागर' भी मध्य युगीन काव्य में मिलता है और जिसका अर्थ 'समूचा' है।[1] (देखिए चांदायन, माताप्रसाद गुप्त, २७।४, १४७।३)

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त 'बजासनि', 'बिबिक्खर' और 'अडक्कर' जैसे अनेक शब्दों का उद्धार नहीं कर सके क्योंकि उन्होंने फ़ारसी लिपि में उतारी हुई रचना की एक प्रति का लिप्यंतर मात्र किया है। प्रतियों के प्रतिलिपिकर्ताओं की एक सामान्य प्रवृत्ति होती है कि वे कठिन शब्दों को न समझ पाने पर वहाँ कोई सरल शब्द रख देते हैं जिससे मूल पाठ दब जाता है—किसी एक प्रति का लिप्यंतर करने पर, अतः मूल पाठ कभी-कभी हस्तगत नहीं हो सकता है। पाठालोचन के सिद्धान्तों का अनुगमन करते हुए प्रतियों की पाठ-परम्पराओं का यदि सम्यक् परीक्षण किया जाय तो ऐसे शब्दों का पुनरुद्धार सुगमता से हो जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि इसीलिए ऐसे कठिन शब्दों के उद्धार में सहायक होती है और प्रतिलिपिकर्त्ता-सम्पादक ऐसे स्थलो पर प्रायः चूक जाते हैं।

दिल्ली की प्रति में पाठ वृद्धि

दिल्ली की प्रति में प्रक्षेप की एक विशेष प्रवृत्ति पायी जाती है। इस प्रति मे २३-२४ मात्राओं के दोहे की पंक्ति को २८ मात्रा की पंक्ति बनाने का प्रयास अनेक स्थलों पर दिखाई पड़ता है। इस पाठवृद्धि के लिए जो शब्द जोड़े गये हैं, वे स्पष्ट रूप में चिप्पी की तरह जोड़े हुए मालूम पड़ जाते हैं। इस प्रकार के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं:

---

१. अडागर का उल्लेख 'मृगावती' के पूर्व की एक रचना 'वसन्त विलास' में भी आता है—

"ओढणी रेटइ पहुलीअ कुली अडागर पान।
तिल कुसुमोपम नासिक वासि कपूर समान।

—**बसन्त बिलास और उसकी भाषा,** डा० माताप्रसाद गुप्त आगरा १९६६ **छन्द ५७**

परमेश्वरीलाल गुप्त (३०२।६,७)—

बहुत चरित कै छूटेउ छँद कै तो आयउ मुहि गात ।
कहेउँ निरत फिर आपुन यह अवगुन यह बात ।।

माताप्रसाद गुप्त (२९८।६,७)—

बहुत चरित कै छूटेउ तौ आएउ हम गात ।
सुनिहु निरत सब मोरी यह औगुन यह बात ।।

उपर्युक्त छंद बीकानेर, दिल्ली, एकडला और मनेर शरीफ की प्रतियों में प्राप्त होता है । दिल्ली प्रति के पाठ में 'छंद कै' पाठ आगन्तुक है । बीकानेर और मनेर शरीफ में यह पाठ-वृद्धि नहीं है । अन्तः साक्ष्य भी यह प्रकट करता है कि 'छंद कै' पाठ-वृद्धि की दोहे में कोई आवश्यकता नहीं है । वहाँ ये शब्द निरर्थक हैं । पर डा० परमेश्वरीलाल गुप्त इसको समझ नहीं सके और दिल्ली की प्रति का लिप्यन्तर करके सन्तुष्ट हो गए ।

परमेश्वरीलाल गुप्त (३०३।६,७)—

मिरगावति मन ही मन रहसी मिलेउ जो जरम न होइहि भंग ।
यह मन गाढ़ उँहरेउ जो चढै न दूसर रंग ।।

माताप्रसाद गुप्त (२९९।६,७)—

मिरगावति मन मनहीं मिलेऊ जरम न होइहि भंग ।
यह मन कारहि अनुहरेउ चढ़इ न दोसर रंग ।।

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के पाठ में 'मन रहसी' अनावश्यक, पाठवृद्धि है ।

परमेश्वरीलाल गुप्त (१३७।६,७)—

चली नहाइ परेउँ खसि तिह ठाँ आइ उचायो धाइ ।
दूसरि बार आइ फुनि सरवर चीर लियों तो जाइ ।।

माताप्रसाद गुप्त (१३३।६,७)—

चली नहाइ परेउ खसि आइ उचाएउ धाइ ।
दोसर बार जो आई चीर लिएउं तौ जाइ ।।

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के पाठ मे 'तिह ठाँ' आगन्तुक पाठ है ।

परमेश्वरीलाल गुप्त (१३९।६,७)—

आवत अहा निरास भा राजा पायसु जियत क चाह ।
कुंवरि जियत कहि लोगहि औ दूसर कोउ आह ।।

माताप्रसाद गुप्त (१३५।६,७)—

आवत अहा निरास भा पाइसि जियत क चाहि ।
कुंवरि जियत कह लोगन्ह औ दोसर कोउ आहि ।।

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के पाठ में 'राजा' शब्द आगन्तुक है ।

परमेश्वरीलाल गुप्त (१५६।६,७)—

तपसप सँ रुपमनि रोई, घबर कुँवर गहा जो चीर।
उर फाटै कँह चाहै खिनक न बाँधे धीर॥

माताप्रसाद गुप्त (१५५।६,७)—

निससइ रुपमिनि रोवइ कुँअर गहा जौ चीर।
उर फीटै कहँ चाहइ खिनक न बांधइ धीर॥

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने उपर्युक्त दोहे में 'निससइ' का जो 'तपसप' र पाठ दिया है वह तो भ्रष्ट है ही, उसमें 'घबर' पाठ भी आगन्तुक है।

उपर्युक्त प्रकार के प्रक्षेपों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के प्रक्षेप भी दिल्ल प्रति में हुए हैं और डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के पाठ में वे ज्यों के त्यों चले आये है

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के संस्करण का एक छंद यहाँ प्रस्तुत किया ज रहा है :

पसरा काज बियाह कों आवा। नेउता लोग देस सब आवा।
जाचक जन मँगता बहु आये। भाट कपरिया सुनि के धाये।
होइ लाग जेउनार अपारा। जेवन कहँ सब लोग हँकारा।
छींपर नेत पटोर बिछाई। पातिह पाँति जोरि बैठाई।
जेवन जींह भई जेवनारा। करु खट पँचाबिरित अहारा।
फीका मीठा लोन कर खट्टा अहा कसैला ईंत।
खीर दहिउ घिउ माँस और अन्न आए पाँचों अँब्रीत॥

(परमेश्वरीलाल गुप्त, छंद १५२

डा० माताप्रसाद गुप्त के संस्करण में यह छन्द निम्नलिखित प्रकार से है .

पसरा काजु बियाह गनावा। नेउता लोक देस सब आवा।
होइ लागि ज्यौनार अपारा। बिजन चारि छतिसौ परकारा।
बावन पूरी (पुरई) हांडी चौरासी। बहु संधान पकवान गरासी।
छीपर नेत पटोर बिछाए। पांतिहि पांति लोग वैसाए।
जेंवन जेवहिं भइ ज्यौनारा। षट्रस पांच अंब्रित आहारा।
मींठा फीका लोनगर खाटा कसैला ईंत।
लीर दहिउ मांस मसउर और सब पांच अंब्रीत॥

(माताप्रसाद गुप्त, छंद १४८)

विवेच्य छंद के दो पाठ व्याकरण और शब्दगठन की दृष्टि से काफी भिन्न है, ह कहने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ पर हम केवल उस पाठवृद्धि या प्रक्षेप पर ाचार करेंगे जो दिल्ली की प्रति में आ गया है। डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के स्करण में 'जाचक जन-मंगता बहु आए, भाट कपरिया सुनि के धाए' छंद का द्वितीय रण है। बीकानेर में यह चरण नहीं है।

यहाँ डा० माताप्रसाद गुप्त ने बीकानेर का पाठ स्वीकार किया है और दिल्ली का पाठ अस्वीकृत कर दिया है। अन्तःसाक्ष्य पर ध्यान दिया जाय तो कारण स्पष्ट हो जायगा। द्वितीय चरण के बाद डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'होइ लाग जेवनार अपारा, जेवन कहं सब लाग हंकारा' पाठ दिया है। जाचक जन, मंगता और कपरिया जो निमंत्रण की बात सुनकर स्वतः आ जाते है उनको जेवनार नहीं दिया जाता और छीपर, नेत तथा पटोर पर बिठाकर उन्हें आमंत्रितों की पंक्ति में भोजन नहीं कराया जाता है। इसीलिए डा० माताप्रसाद गुप्त को सम्भवतः बीकानेर का 'बावन पुरी हांडी चौरासी, बहु संधान पकवान गरासी' (चरण ३) वाला पाठ स्वीकार करना पड़ा जो अप्रासंगिक नहीं है।

इसी प्रकार डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के संस्करण मे है :

पेम जाइ किह रहे सँभारा। गहे नेह आपु नाँहि सँहारा।

(परमेश्वरीलाल गुप्त, छंद २००।१)

और डा० माताप्रसाद गुप्त के संस्करण मे है—

पेम आइ मन परेउ खभारा। यह जिउ मैं अब तुम्हहि उभारा।

(माताप्रसाद गुप्त, छंद १९६।१)

मृगावती राजकुंवर से कह रही है—"प्रेम के आने से मन मे खभार (क्षोभ) पड गया है, हृदय की बात मैंने तुमसे अब खोली है।" 'खभारा' शब्द फ़ारसी के प्रतिलिपिकर्ता को दुरूह लगा तो उसे उसने 'सभारा' कर दिया। एकडला की प्रति मे इसे 'सहारा' कर दिया गया। पुनः दिल्ली तथा एकडला में दूसरे चरण में 'यह जिउ मे अब तुम्हहि उभारा' के स्थान पर एक नया चरण ही गढ़ लिया गया, जिसमें प्रथम चरण की पुनरुक्ति मात्र है : 'पेम आइ किह रहै संभारा' तथा 'गहे नेह आपु नाहि सहारा' सर्वथा एक ही अर्थ के चरण हैं। डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के संस्करण मे भी यही प्रक्षिप्त पाठ स्वीकार कर लिया गया है।

पाठ-सम्बन्धी जिस प्रकार की अशुद्धियों की चर्चा ऊपर की गई है उनकी सख्या डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के संस्करण में इतनी अधिक है कि उनको विस्तार से देना एक निबन्ध में सम्भव नहीं है, इसलिए उन्हें यहाँ पर छोड़ा जा रहा है।

अर्थ-विमर्श

अब हम यहाँ कुछ अर्थों पर विचार करेंगे जिनको श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने अपनी पाद-टिप्पणियों में सम्मिलित किया है।

परमेश्वरीलाल गुप्त (१७०।५)—

नल हूँ अइसी परी न अवस्था। औ न मुनी सो भरथरि कस्था।।

माताप्रसाद गुप्त (१९६।५)—

(न) लहु न असी परी अउर न मुनी भरथहरि कस्था।

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'कस्था' का अर्थ 'कष्ट' दिया है किन्तु 'कस्था' का अर्थ 'कथा' है। 'कथा' के अर्थ में 'मृगावती' में कस्था का प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है। (देखिये ३६/६,३३८/६—डा० माताप्रसाद गुप्त का संस्करण)

परमेश्वरीलाल गुप्त (४२१।१)—

कुँवर क जीउ इँदरासन गया, इहाँ रहै कस्ठा कै कथा।

माताप्रसाद गुप्त (४१६।१)—

कुँवर क जिय इंद्रासन गया। इहां रही कथ्था कै कया।

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने यहां 'कस्था' या 'कथ्था' को 'कस्ठा' कर दिया है और इसका अर्थ "काष्ठ या शरीर" किया है। डा० परमेश्वरी लाल गुप्त के पाठ के अनुसार अर्थ होना चाहिए "कुंवर का जीव इन्द्रासन में चला गया और यहाँ काष्ठ या शरीर की कथा रह गयी।" डा० मातासप्रसाद गुप्त के अनुसार इसका अर्थ होना चाहिए—"कुंवर का प्राण इन्द्रासन चला गया और यहाँ कथा की काया शेष रही।" डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के पाठ से इस चरण की साहित्यिक काया ही मूर्च्छित हो गयी है।

परमेश्वरीलाल गुप्त (१९६/२)—

धाइ एक हम राखसि राँधा, मैं उहि सौं बातहिं जिउ बाँधा।

माताप्रसाद गुप्त (१९२/२)—

धाइ एक हम राखेसि रांधा, मैं ओहि सेउं बातन्ह जिउ बांधा।

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'रांधा' का अर्थ 'पहरेदार' कल्पित किया है किन्तु 'रांधा' का अर्थ समीप है (राद्ध > रांध > रांधा)। इस अर्थ मे यह अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है (देखिए १५०।१, १९८।४, 'मृगावती'—डा० माताप्रसाद गुप्त)। 'चंदायन' मे भी 'राध' शब्द इस अर्थ में आया है—"इक चित कइ मोहि आपहु दूसर राध न जाइ" (चांदायन, २४८।६—डा० माताप्रसाद गुप्त का संस्करण)

परमेश्वरीलाल गुप्त (१७२।२)—

बहु दिन ऊपर जोगी आयउ। करम मोर आयसु मैं पायउ।

माताप्रसाद गुप्त (१६८।२)—

बहुत दिना पर पांहुन आवा। करम मोर आइस मैं पावा।

"आयसु" (आइस) का अर्थ श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'आगन्तुक' किया है। वस्तुतः इसका अर्थ एक प्रकार का योगी है। इस अर्थ में 'मृगावती' में (१५७।५ माताप्रसाद गुप्त का संस्करण) यह शब्द अन्यत्र भी प्रयुक्त है। मौलाना दाऊद कृत 'चंदायन' मे भी यह शब्द इस अर्थ मे आया है—"एहि मढ महं एक आयसु अहा" (१६७।१, गुप्त) ऐसे योगी 'आयसु' क्यों कहे जाते थे इसका कारण तुलसीदास कृत 'कवितावली' से स्पष्ट हो जाता है

"आयसु, आदेश, बाबा भलो भलो भावसिद्ध
तुलसी विचारि जोगी कहत पुकारि हैं ।
(उत्तर कांड, १४०)

'आयस' शब्द का यह 'योगी' या 'तपस्वी' अर्थ सीताराम लालस के 'राजस्थानी सबद कोस' में भी देखा जा सकता है ।[1]

परमेश्वरीलाल गुप्त (२०२।३)—

पंथी जो ईंह पंथ चल आई । हम कहँ गुदर देह तो जाई ।

माताप्रसाद गुप्त (१९८।३)—

पंथी जो आइहि पंथ चलाई । हम कहं गुजर देइ तौ (जाई) ।

'गुदर' का अर्थ डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'सूचना' किया है किन्तु यह शब्द फ़ारसी का 'गुज़र' है जिस का अर्थ है 'पेशी', 'उपस्थिति' या 'हाज़िरी' ।

परमेश्वरीलाल गुप्त (२०४।३)—

जनु दालदि लछ बहु पाई, खिन खिन रहसँ अंग न समाई ।

माताप्रसाद गुप्त (२००।३)—

जनु दालिदी लच्छि बहु पाई, खिन खिन रहसइ अंग न समाई ।

"लच्छि" का एक सरलीकृत पाठ 'लछ' लेकर डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने उसका अर्थ 'लाख' कर दिया जबकि शब्द 'लच्छि' (लक्ष्मी) है और पाठ का अर्थ होना चाहिए—"जैसे दरिद्र ने बहुत लक्ष्मी प्राप्त की हो ।"

परमेश्वरीलाल गुप्त (२१२।१)—

फुनि जो राजदुआरिन्ह जाई । कुंवरहिं के भल पन्थ अथाई ।

माताप्रसाद गुप्त (२०८।१)—

फुनि जो राजदुवारेहि आई । कुंअरन्ह कै भलि वैठि अथाई ।

'अथाई' शब्द का अर्थ गोष्ठी है और यह संस्कृत शब्द 'आस्थानिका' से बना है, किन्तु डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने इसका अर्थ "समाप्त हुआ या अन्त हुआ" किया है । 'अथाई' शब्द आस्थानिका (गोष्ठी) के अर्थ में 'चंदायन' और 'मधुमालती' में भी आया है ।

राइ कुरी कइ वइस अथाई ।
हम फुनि ठाढ़ भए तहाँ जाई ।
—(**चांदायन**, माताप्रसाद गुप्त, छंद २६।१)

सुरुजभान तहं वैसेउ आई ।
औ जो अहै सभ राज अथाई ।
—(**मधुमालती**, माताप्रसाद गुप्त, छंद ६४।५)

---

१ **राजस्थानी सबद कोस**—सीताराम लालस राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर १९६२

एक और उदाहरण नीचे दिया जा रहा है जिस में डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने एक सरल पाठ देकर अर्थ का अनर्थ कर दिया है—

परमेश्वरीलाल गुप्त (२०१।१)—

रूप मुरारि भइ पुरि आसा ।
कीत पयान गये कबिलासा ।

माताप्रसाद गुप्त (१६७।१)—

रूप मुरारिहि भइ परिआसा ।
कीता पयान गए कबिलासा ।

शब्द 'परियास' है जो संस्कृत के 'पर्यास' से बना है, जिसका अर्थ है समाप्ति, अवसान या पतन । अर्द्धाली का अर्थ होगा 'रूपमुरारि की समाप्ति (मृत्यु) हुई ।' डा० परमेश्वरीलाल गुप्त के अनुसार इसका अर्थ होगा 'रूप मुरारि की आशा पूरी हुई,' जो सर्वथा अप्रासंगिक है ।

जिन शब्दों को ऊपर अर्थ-विमर्श के लिए लिया गया है वे अपवाद स्वरूप नहीं हैं । श्री परमेश्वरीलाल जी के अनेक शब्दों के अर्थ इसी प्रकार के हैं । यदि वे शब्दार्थ न देते तो पाठक गुमराह होने से बच जाता । संतोष है कि उन्होंने अपने छन्दों का अर्थ या टीका करने का प्रयास नहीं किया और यह कह कर संतोष कर लिया कि "मेरी धारणा है कि इस काव्य में कुछ ऐसा नहीं है जो पाठकों की समझ के बाहर हो और किसी प्रकार की व्याख्या की अपेक्षा रखता हो । व्याख्या करना अनावश्यक श्रम ही नहीं, अकारण ही ग्रन्थ की आकार-वृद्धि का प्रयास भी होता, जो मुझे अभीष्ट नहीं ।"[1] उपर्युक्त छंदो में उनके द्वारा जो शब्दार्थ दिये गये हैं उनके संक्षिप्त विवेचन के सन्दर्भ को दृष्टि में रखकर, अनुसंधित्सु श्री गुप्त के कथन के औचित्य का विचार स्वयं कर लेंगे ।

डा० परमेश्वरीलाल गुप्त का सम्पूर्ण प्रयास दिल्ली की फ़ारसी प्रति का नागरी लिपि में एक प्रतिलिपि कर देने का है । उन्हें सम्पादक के बजाय प्रतिलिपिकर्त्ता का यश अवश्य मिल जायेगा किन्तु जब तक वह प्राचीन साहित्य तथा सम्पादन कला की विधा का अध्ययन कर पाठ प्रस्तुत नहीं करेंगे तब तक वही हाल होगा जैसा उनकी 'मिरगावती' का हुआ है । कुतुबन कृत 'मृगावती' में काव्य की आत्मा और उसकी काया को श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने काफी आघात पहुँचाया है । डा० माताप्रसाद गुप्त का प्रयास एक वैज्ञानिक सम्पादक का प्रयास है । सर्वथा निर्दोष न होते हुए भी उसने रचना की आत्मा और काया की संरक्षा की है ।

---

१ भूमिका (अनुशीलन) पृष्ठ ११

५

जायसी की प्रेम-साधना

सूफ़ीमत की साधना प्रेम की साधना है। ईश्वर से प्रेम करना और उसकी सत्ता में अपनी सत्ता को विलीन कर देना सूफ़ी साधक का चरम लक्ष्य है। सूफ़ियों के अनुसार साधक को प्रेम की जो अनुभूति होती है, वह वर्णनातीत है। शब्दों की सीमा में उस अनुभूति को बाँधा नहीं जा सकता। इसीलिए जन-साधारण के समक्ष जिस समय सूफ़ी अपने को प्रकट करता है उसे लौकिक प्रतीकों, रूपकों या कथाओं का आश्रय लेना पड़ता है। फ़ारसी के सुप्रसिद्ध कवि सनाई, फरीदुद्दीन अत्तार, जलालुद्दीन रूमी, निज़ामी, उमर ख़ैय्याम, हाफिज, जामी आदि ने प्रेम की महत्ता बताने तथा सूफी साधना पद्धति को हृदयंगम कराने के लिए न केवल संकेतों और तर्कों का आश्रय लिया है बल्कि यूसुफजुलेखा, लैला-मजनूँ, शीरींखुसरो आदि कथाओं को भी ग्रहण किया है और शराब, साकी, प्याला, जाम, सरूर आदि संकेतों से अपने दीवानेपन का परिचय दिया है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि प्रेम कथा लिखने वाले इन सूफ़ी कवियों की प्रेरणा सतही है, वह इसलिए कि इन आख्यानों के नायक तथा नायिकाएँ कभी-कभी साधारण प्रेमी जैसा क्रिया कलाप करते पाये जाते हैं। किन्तु इस बात को विस्मृत नहीं किया जा सकता कि इन कवियों ने कविता के माध्यम से साधारण जन तक अपना सिद्धान्त प्रेषणीय बनाने का प्रयत्न किया है। अन्तर्मुखी साधना को लौकिक अभिव्यक्ति देते समय प्रेम, मिलन, विरह, उन्माद, मूर्छा आदि की सामान्य शब्दावली को ग्रहण करना इनके लिए अनिवार्य हो गया है।

सूफ़ी कवि की दृष्टि सदैव इस बात पर रहती है कि वासना का परिमार्जन किया जाय। वह इसमें विश्वास नहीं करता कि संसार से अपना सम्पर्क विच्छेद कर लिया जाय और जीवन से मुख मोड़कर वासना को उभरने न दिया जाय

अलग़ज़ाली ने कहा है, "विवाह लाभप्रद होता है। केवल संतान उत्पन्न करने के लिए नहीं बल्कि संतोष और ताजगी के लिए भी विवाहित जीवन आवश्यक है। पत्नी के साहचर्य से हृदय को सान्त्वना मिलती है। ईश्वर की सेवा करने के लिए इससे शक्ति प्राप्त होती है।"[१]

लौकिक प्रेम वासना का परिष्कार होते ही प्रेम ईश्वरीय प्रेम में बदल जाता है। सूफी साधक इस पद्धति का ही अनुसरण करते हैं। 'इश्क़ मजाजी' 'इश्क़ हक़ीक़ी' तक पहुँचने की पहली सीढ़ी है—इसी पृष्ठभूमि में सम्पूर्ण सूफ़ी काव्य लिखा गया है।

अलग़ज़ाली ने दो बड़ी रोचक कथाएँ दी हैं। इन कथाओं से सूफ़ी प्रेम साधना का अच्छा परिचय मिलता है और यह समझते देर नहीं लगती कि सूफ़ी कवि लौकिक प्रेम को किस प्रकार ईश्वरीय प्रेम का रूप देते हैं।

"ज़ुलेखा का यूसुफ से प्रेम हो गया। वह प्रेम इतना घनीभूत हुआ कि उससे कोई आकर यह कह देता कि मैंने यूसुफ को देखा है तो उसे गले का हार दे देती। उसके पास ७० ऊँट हीरे थे। धीरे-धीरे वे सब समाप्त हो गये। वह केवलमात्र यूसुफ को याद करती थी। यहाँ तक जब वह आकाश की ओर देखती तो तारों में यूसुफ का नाम उसे दिखाई पड़ता। किन्तु विवाह हो जाने के पश्चात् उसका प्रेम और व्यापक हो गया और उसने यूसुफ के साथ रहना अस्वीकार कर दिया। उसने यूसूफ से कहा "मैं तुमसे उस समय तक प्रेम करती थी जब तक उस ईश्वर को नहीं जानती थी। ईश्वरीय प्रेम ने मेरे हृदय में घर कर लिया है। अब मैं उस स्थल पर किसी दूसरे को नहीं रख सकती।"[२]

इससे भी प्रभावशाली कथा मजनूं की है। वह लैला के पीछे पागल हो गया था। यदि उससे कोई उसका नाम पूछता तो वह कह उठता 'लैला'। यदि कोई पूछता, क्या लैला मर गयी तो वह कह उठता, "लैला तो मेरे हृदय में है उसकी मृत्यु नहीं हुई है। मैं ही लैला हूँ।" एक दिन वह लैला के कूचे से गुजर रहा था। आकाश की ओर उसकी आँखें लगी हुई थीं। किसी ने कहा, "मजनूं तुम आकाश की ओर न देखो बल्कि लैला के घर की दीवालों की ओर देखो। शायद वह दिखाई पड़ जाय।" मजनूं ने तत्काल उत्तर दिया, "मैं तो उन तारों से ही सन्तुष्ट हूँ जिनका प्रतिबिंब लैला के घर पर पड़ रहा है।'[३]

इन कथाओं से स्पष्ट हो जाता है कि सूफी विचारों के अनुसार लौकिक प्रेम जब उच्च धरातल पर पहुँच जाता है, वह ईश्वरीय प्रेम का रूप धारण कर लेता है। भारतीय सूफी प्रेमसाधना भी विचारों की इसी रसधारा में पगी हुई है।

---

१. **अलग़ज़ाली दी मिस्टिक**, मार्गरेट स्मिथ, लंदन, १९४४, पृ० ५६।
२. **वही**, पृ० १७७।
३ **वही** पृ० १७७

इस्लाम के आगमन के साथ भारत में सूफ़ीमत तथा फारसी साहित्य का प्रचार हुआ। मुल्तान, दिल्ली, डलमऊ, कड़ा मानिकपुर, आगरा, जौनपुर आदि फारसी और अरबी साहित्य के अध्ययन के अच्छे केन्द्र बन गये। मुस्लिम और मुगल बादशाहों ने इस साहित्य को प्रश्रय दिया। बहुतों ने स्वयं भी इसमें साहित्य लिखा। हिन्दी के सूफ़ी कवियों की मूल प्रेरणा फ़ारसी की है। इस स्थान पर विस्तार में जाना अप्रासंगिक होगा। तब भी इतना जान लेना आवश्यक है कि अवधी-भाषा तथा प्रायः दोहा, चौपाई छन्दों को लेकर चलने वाले सूफ़ी कवियों की प्रेम-साधना का मूल फ़ारसी तथा कुछ अरबी साहित्य मे सन्निहित है। जायसी को भी इस परम्परा से विच्छिन्न करके नहीं देखा जा सकता। वह इस धारा के सिद्ध कवि हैं।

'पद्मावत' जायसी की सर्वश्रेष्ठ रचना है और इसमें उन्होंने प्रेम-साधना का विस्तृत विवेचन किया है। वस्तुतः इसी केन्द्र पर 'पद्मावत' की सम्पूर्ण कथा स्थिर है। सैयद असरफ से उनके हृदय में प्रेम का दीपक जला था। उनकी प्रेरणा से ही उन्होंने 'पद्मावत' की रचना की।[1] मेहदवी सम्प्रदाय के अन्य संत शेख बुरहान उनके अन्य गुरु थे। वे कालपी में रहते थे।[2]

काव्य के नायक रत्नसेन के हृदय में पद्मावती के प्रति प्रेम का उदय होता है। यह प्रेम इतना दृढ़ बन जाता है कि नायक अपना सारा सुख, सारा वैभव तथा समस्त सुविधाएँ छोड़कर जोगी बन जाता है और जब तक उसे प्राप्त नहीं कर लेता, उसे चैन नहीं मिलता। वह अपनी पत्नी नागमती को रोते-बिलखते तथा तड़पते छोड़कर सिंहल के लिए रवाना हो जाता है। उसके मार्ग में न जाने कितनी बाधाएँ आती हैं किन्तु वह अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होता। इन विपत्तियों से ही उसकी प्रेम साधना में निखार आता है और उसकी वासना का परिमार्जन होता चलता है। इसीलिए सूफ़ी साधक प्रेम के मार्ग को अत्यन्त दुर्गम, जटिल तथा कंटकाकीर्ण बताते हैं। इसमें सफलता उसी को प्राप्त होती है जो अपना प्राण हथेली पर लिये घूमते है और जो हर प्रकार का कष्ट झेलने के लिए तत्पर रहते हैं। 'पद्मावत में हीरामन सुग्गा रत्नसेन को समझा रहा है—

प्रेम सुनत मन भूलु न राजा,
कठिन पेम सिर देइ तौ छाजा।

---

१. सैयद असरफ पीर पिआरा, तिन्ह मोंहि पंथ दीन्ह उजियारा।
लेसा हियें पेम कर दिया, उठी जोति भा निर्मल हिया।।
—पद्मावत, जायसी ग्रंथावली, संपादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, छंद १८

२. (अ) महदीं गुरु सेख बुरहानू, कालिप नगर तेहिंक अस्थानू।
—जायसी कृत चित्ररेखा, पृ० ७४

आ अगुआ भएउ सेख बुरहानू, पंथ लाइ जेंहि दीन्ह गिआनू

पेम फाँद जो परा न छूटा,
जीउ दीन्ह बहु फाँद न टूटा।[1]

सुग्गा रत्नसेन से जब पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन करता है, उसको मूर्छा आ जाती है। जायसी कहते हैं कि प्रेम का घाव बड़ा गहरा होता है। इसको वही जानता है जिस पर इसका असर होता है—

सुनतहि राजा गा मुरुछाई,
जानहुँ लहरि सुरुज कै आई।
पेम घाव दुख जान न कोई,
जेहि लागै जानै पै सोई।
परा सो पेम समुंद अपारा,
लहरहिं लहर होइ बिसंभारा।[2]

प्रेम का मार्ग निश्चित रूप से अत्यन्त दुर्गम है किन्तु इस खेल के खेलने वालों के दोनों जग बन जाते हैं। दुख के भीतर प्रेम-रस निहित रहता है, इसको वही चखता है जिसमें मृत्यु की पीड़ा सहने की क्षमता होती है। प्रेम के मार्ग में दुख तभी तक है जब तक प्रेमास्पद से मिलन नहीं होता। इसके बाद सारा दुख मिट जाता है। रत्नसेन को इसका ज्ञान है—

राजैं लीन्ह ऊभ भरि सांसा,
ऐस बोल जनि बोलु निरासा।
भलेहि पेम है कठिन दुहेला,
दुइ जग तरा पेम जेइँ खेला।
दुख भीतर जो पेम मधु राखा,
गंजन मरन सहै जो चाखा।
जेइँ नहि सीस पेम पँथ लावा,
सो प्रिथिमी महँ काहे कौं आवा।
अब मैं पेम पथ सिर मेला,
पाँव न ठेलु राखु कै चेला।
पेम बार सो कहै जो देखा,
जेइँ न देख का जान बिसेखा।
तब लगि दुख प्रीतम नहि भेंटा,
मिला जौ गा जरम क दुख मेंटा।[3]

---

१. पद्मावत, जायसी ग्रंथावली—संपादक डा० माताप्रसाद गुप्त, छंद ६७।
२. वही, छंद ११६।
३ वही छंद ९८

जिस व्यक्ति के हृदय में प्रेम है वही अमर है अन्यथा एक मुट्ठी राख और उसमें अन्तर ही क्या है ?

मानुस पेम भएउ बैकुंठी,
नाहि त काह छार एक मूँठी।[1]

प्रेम का प्रादुर्भाव सौंदर्य से होता है। इसीलिए सूफी कवि अपने नायक या नायिका को अप्रतिम सौन्दर्य प्रदान करते हैं। सौंदर्य के कारण ही नायक का नायिका के प्रति अथवा नायिका का नायक के प्रति सहज आकर्षण होता है। 'पद्मावत' काव्य में नायिका पद्मावती परम सुन्दरी है। उसके सौंदर्य का चित्रण जायसी ने बड़े कौशल के साथ किया है। यह सौंदर्य ईश्वर के सौंदर्य की झलक है। हुसन सुहरावर्दी ने कहा है, "सौंदर्य के गहरे चिंतन के लिए हृदय का झुकाव ही प्रेम है।[2]" अलग़ज़ाली ने कहा है, "इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि जहाँ सौंदर्य है वहाँ प्रेम स्वाभाविक हो जाता है। जहाँ सौंदर्य अधिक होगा वहाँ प्रेम भी प्रखर होगा और ईश्वर पूर्ण सौंदर्य है अतः सच्चा प्रेम का अधिकारी वही है।[3] ईश्वर विराट् ज्योति पुंज है। संसार मे जहाँ कहीं भी सुन्दरता है वह उसकी ज्योति से अनुप्राणित है। मलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावती भी ईश्वर की ज्योति से भास्वर है। रत्नसेन पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन सुनता है और उसकी प्राप्ति के लिए अधीर हो उठता है। उसके प्रेम का भिखारी बन जाता है।

प्रेम अपने शैशव काल में वासना से विनिर्मुक्त नहीं रहता। इसीलिए साधक को तप करना पड़ता है। जब तक उसमें वासना है, भय है, उसे सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। पद्मावती के देश में रत्नसेन पहुँच चुका है। बसंत के दिन पद्मावती मंदिर में पूजा करने गयी है किन्तु वहाँ रत्नसेन उसको प्राप्त नहीं कर पाता। वह सोता रह जाता है और पद्मावती उसके हृदय पर चंदन से यह लिख कर चली जाती है कि "हे जोगी तुमने भीख लेना नहीं सीखा। जब समय आया तब तुम सो गये। तुम्हें अभीष्ट कैसे प्राप्त होगा ?"[4] रत्नसेन अपने अनुयायियों के साथ सिंहल का गढ़ घेर लेता है। उसके बाद सुग्गे से एक पत्र भेजता है जिसमें सम्पूर्ण कष्ट-कथा अंकित है। सुग्गा पद्मावती के पास पहुँचकर पत्र गिरा देता है और रो-रोकर सारा वृत्तान्त कह जाता है, "देखो, जिसके पत्र में अंकित विरह की जलन से मेरा कण्ठ

---

१. **पद्मावत** – जायसी ग्रन्थावली, सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, छंद १९६।
२. **दी आवारिफ़ुल मारिफ़**, शेखशहाबुद्दीन उमरबिन मुहम्मद सुहरावर्दी, अनु० एच० विल्वरफोस क्लार्क, कलकत्ता १८९१, पृ० १०१।
३. **अलग़ज़ाली दी मिस्टिक**—मार्गरेट स्मिथ, लन्दन, पृ० १०९।
४. तब चंदन आखर हियँ लिखे, भीख लेइ तुइँ जोगि न सिखे।
बार आइ तब गा तैं सोई, कैसे भुगुति परापति होई।
—**पद्मावत**, छंद १९५

जलने लगा, वह स्वयं किस प्रकार जलता होगा ? उसने अपनी काया इस प्रकार जला दी है जैसे मछली जलती है। क्या तुम उसे जल नहीं दोगी ?"[१] पद्मावती सुग्गे को उत्तर देती है कि "वह अभी मेरा मर्म नहीं जानता। प्रेम का मर्म वही जानता है जो मरकर गांठ जोड़ता है। मैं समझती हूँ अभी वह कच्चा है। मुझे अभी ज्ञात नहीं है वह प्रीति के रंग में ठीक ढंग से रंगा है अथवा नहीं। मैं नहीं जानती कि वह मलयगिरि के सुवास से सुवासित है या नहीं। न जाने वह सूर्य बनकर आकाश में चढ़ा या नहीं ?"

कहेसि सुआ मोंसों सुनु बाता,
चहौं तो आजु मिलौं जस राता।
पै सो मरमु न जानै मोरा,
जानै प्रीति जो मरि कै जोरा।
हौं जानति हौं अबहूँ कांचा,
न जनहुँ प्रीत रंग थिर रांचा।
न जनहु भयउ मलैगिरि वासा,
न जनहुँ रवि होइ चढ़ा अकासा।[२]

और जब फिर मिलन हो जाता है, दोनों मरकर भी अलग नहीं होते। पर यह मिलन तभी होता है जब प्रेमी रत्नसेन को मृत्यु का भय भी विकम्पित नहीं कर पाता, संसार का सारा आकर्षण उसके लिए अकिंचन हो जाता है।

रत्नसेन की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के उपरान्त पद्मावती और नागमती दोनों सती हो जाती हैं। चिता में भस्म होते समय वे कहती हैं, "प्रियतम ! तुमने अपने जीवन में मुझे कण्ठ से लगाया। मरते समय भी हम उस कण्ठ को न छोड़ेंगी। इस संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है। हम तुम तो दोनों जन्म के संगी हैं।"

सर रचि दान पुन्नि बहु कीन्हा,
सात बार फिरि भांवरि दीन्हा।
एक भंवरि भै जो रे बियाही,
अब दोसरि दै गोहन जाहीं।
लै सर ऊपर खाट बिछाई,
पौढ़ी दुवौ कन्त कँठ लाई।
जियत कंत तुम्ह हम कँठ लाई,
मुए कँठ नहि छांड़हि सांई।
औ जो गांठि कंत तुम्ह जोरी,
आदि अंत दिन्हि जाइ न छोरी।

---

१. पद्मावत, छंद २३०।
२ पद्मावत छंद २३१

एहि जग काहु जो आथि निआथी,
हम तुम्ह नाहं दुहूँ जग साथी।
लागी कंठ आगि दै होरीं,
छार भई जरि अंग न मोरी।
रातीं पिय के नेह गईं सरग भएउ रतनार।
जो रे उवा सो अँथवा रहा न कोइ संसार।।[1]

यह है प्रेम का स्थायित्व! यह है उसका अजर अमर शाश्वत तथा चिरंतन स्वरूप!! अलाउद्दीन का प्रेम सच्चा नहीं है। वह केवल पद्मावती के बाह्य रूपरंग पर आसक्त है। उसमें साधक की साधना नहीं है। उसमें तृष्णा है, अहंकार है। अतः वह पद्मावती का प्रेम नहीं प्राप्त कर पाता। उसको हाथ लगती है केवल चिता की राख।

निराश होकर उसे कहना पड़ता है। यह सारा संसार झूठा है—
छार उठाइ लीन्हि एक मूँठी,
दीन्हि उड़ाइ पिरिथमी झूठी।[2]

मलिक मुहम्मद जायसी ने बताया है कि जिस व्यक्ति में प्रेम जड़ जमा लेता है उसे धूप-छांह की चिन्ता नहीं होती। प्रेमी के हृदय में सत् का संचार हो जाता है। वह समुद्र में गोते लगाते हुए भी भयभीत नहीं होता। जो व्यक्ति प्रेम में तपता है उसका दुख व्यर्थ नहीं जाता।

खीर समुँद सो नांघा आए समुंद दधि मांह।
जो हहिं नेह के बाउर ना तिन्हहि धूप न छांह।।[3]

हौं अब कुसल एक पै मांगौ।
पेम पंथ सत बांधि न खांगौ।
जौं सत हिएँ तो नैनन्ह दिया,
समुंद न डरै पैठि मरजिया।[4]

जेहि जियं प्रेम चंदन तेहि आगी,
पेम बिहून फिरहि डरि भागी।
पेम कि आगि जरै जौं कोई,
ताकर दुख न अंबरिथा होई।[5]

प्रेम के मार्ग में हृदय का पवित्रीकरण अत्यन्त आवश्यक है। जब तक हृदय निर्मल नहीं है, प्रेमास्पद से मिलन असम्भव है। 'पद्मावत' में महादेव जी रत्नसेन से

१. पद्मावत, छन्द ६५०
२. वही, छंद ६५१।४
३ वही छंद १५१ ८
४. वही, छंद १४९।५,६
५. वही, छंद १५२।५,६

कहते हैं, "तुम बहुत रो चुके अब अधिक न रोओ। बिना दुख सहे प्रिय की
नहीं होती। अब तुम सिद्ध हो गये हो। तुम्हारी काया का सारा मैल धुल चु
अब तुम अपने प्रेम पथ पर लगो।"

कहेसि न रोव बहुत तैं रोवा,
अब ईसर भा दारिद खोवा।
जो दुख सहै होइ सुख ओकां,
दुख बिनु सुख न जाइ सिवलोकां।
अब तूं सिद्ध भया सिधि पाई,
दरपन कया छूट गै काई।
कहौं बात अब होइ उपदेसी,
लागु पंथ भूले परदेसी।[1]

प्रेम के कुछ विशेष लक्षण जायसी ने अपने काव्य में अङ्कित किये हैं।
हरण के लिए, पद्मावती को यह ज्ञात हो चुका है कि रत्नसेन सच्चा प्रेमी है
वह उसके विरह में विकल हो गयी है। उसके शरीर में ताप है, असीम पीड़
सताने लगी है, यहाँ तक कि स्वर्ग और पाताल भी उसकी अग्नि से जल उठे हैं,
एकनिष्ठता आ गई है। इस दशा को हीरामन सुग्गा पहचान लेता है। प्रेम
लक्षणों को जायसी के शब्दों में देखिए—

हीरामनि जौं देखी नारी,
प्रीति बेलि उपनी हियँ भारी।
कहेसि कस न तुम्ह होहु दुहेली,
अरुझी पेम प्रीति की बेली।
प्रीति बेलि जनु अरुझै कोई,
अरुझें मुएं न छूटै सोई।
प्रीति बेलि अैसै तनु डाढ़ा,
पलुहत सुख बाढ़त दुख बाढ़ा।
प्रीति बेलि संग विरह अपारा,
सरग पतार जरै तेहि झारा।
प्रीति बेलि केइं अम्मर बोई,
दिन दिन बाढ़ै खीन न होई
प्रीति अकेलि बेलि चढ़ि छावा,
दोसरि बेलि न पसरै पावा।[2]

---

१ पद्मावत, छंद, २१४
२ वही, छंद २१४

प्रेम-साधना करने वाले व्यक्ति के हृदय में क्रोध नहीं रह जाता। उसमें असीम सहनशीलता आ जाती है, उदारता आ जाती है। उसका स्वभाव पानी जैसा हो जाता है। जिस रंग में वह मिलता है, तदनुरूप अपने को बना लेता है। रत्नसेन तथा उसके अनुयायियों पर पद्मावती के पिता गंधर्वसेन आक्रमण करते हैं। चेले आक्रमण का उत्तर आक्रमण से देना चाहते हैं। रत्नसेन उनसे कहता है, "चेलो! सिद्ध बनो। प्रेम में क्रोध नहीं करना चाहिए। प्रेमी जल की भाँति तरल होता है। तलवार की धार उस पर असर नहीं करती। प्रेमी में तप की शक्ति होनी चाहिए, युद्ध की नहीं।"

गरू कहा चेला सिध होहू,
पेम बार होइ करिअ न कोहू।
जा कहं सीस नाइ कै दीजै,
रंग न होइ ऊभ जौं कीजै।
जेहि जियँ पेम पानि भा सोई,
जेहि रंग मिलै तेहि रंग होई।
जौ पै जाइ पेम सिउं जूझा,
कत तपि मरहिं सिद्ध जिन्ह बूझा।
यह सत बहुत जो जूझि न करिअै,
खरग देखि पानी होइ ढरिअै।
पानिहि काह खरग कै धारा,
लौटि पानि सोई जौ मारा।
पानी सेंति आगि का करई,
जाइ बुझाइ पानि जौं परई।[1]

जोगी रत्नसेन को बंदी बना लिया जाता है। गंधर्वसेन उसको सूली पर चढ़ा देना चाहता है किन्तु वह अविचल खड़ा है। प्रेम उसके हृदय में इतना प्रगाढ़ हो चुका है कि उसको मृत्यु का भय नहीं, प्राणों की परवाह नहीं। उसके मुखमण्डल पर मुस्कान की छटा कम नहीं होती। सब लोग पूछने लगते हैं, "हे जोगी, तुम अपनी जाति, जन्म, नाम तथा ठिकाना आदि बताओ। जहाँ तुम्हें रोना चाहिए वहाँ तुम्हें हंसी क्यों आ रही है?" रत्नसेन उत्तर देता है :—

का पूंछहु अब जाति हमारी,
हम जोगी औ तपा भिखारी।
जोगिहि जाति कौन हो राजा,
गारि न कोह मार नहिं लाजा।
निलज भिखारि लाज जेहि खोई,
तेहि के खोज परहु जनि कोई।

---

१ पद्मावत छन्द २४३

जाकर जीव मरै पर बसा,
सूरि देखि सो कस नहिं हंसा।
आजु नेह सौं होइ निबेरा,
आज पुहुमि तजि गँगन बसेरा।
आज कया पिंजर बंध टूटा,
आजु परान परेवा छूटा।[१]

प्रेम का सर्वोत्कृष्ट रूप वहाँ आता है जब रत्नसेन यह कहता है कि मेरे रक्त की बूँद-बूँद में पद्मावती बसी है, सूली पर चढ़ाने वाले कहते हैं, "तुम जिसका स्मरण करना चाहते हो, एक बार स्मरण कर लो। हम तुम्हें अब केतकी का भौंरा बनाकर छोड़ेंगे। रत्नसेन जरा भी चिन्ता नहीं करता। वह कहता है मैं हर सांस में पद्मावती का स्मरण करता हूँ। उसके नाम पर यह प्राण न्यौछावर हैं। मेरे रोम-रोम मे पद्मावती है। हाड़-हाड़ में उसकी ध्वनि सुनाई पड़ रही है। चाहे मैं जीवित रहूँ या मर जाऊँ, पद्मावती सदैव मेरे साथ है।"[२] प्रेम की यह उत्कृष्ट अवस्था है जब प्रेमी अपनी प्रेयसी को एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं कर पाता।

सूफ़ी प्रेम साधना में अदब का बड़ा महत्त्व है। प्रेमी के हृदय में प्रेम की दीपशिखा जिस समय प्रज्वलित हो उठती है उसमें उस समय अखण्ड अनुशासन आ जाता है। प्रेमी इतना एकनिष्ठ हो जाता है कि बाहरी दुनिया का सारा आकर्षण उसके लिए फीका हो जाता है। अपने प्रिय के अतिरिक्त अन्य सबको वह भूल जाता है। अहंकार उसके हृदय से एकदम समाप्त हो जाता है। लोभ और तृष्णा पर वह विजय प्राप्त कर लेता है।

'पद्मावत' में रत्नसेन पद्मावती को प्राप्त कर लेता है। दोनों का विवाह भी सम्पन्न हो जाता है। इसके बाद नागमती का सन्देश लेकर एक पक्षी आता है और उसे घर की सुधि दिला देता है। नागमती की दशा सुनकर एक बार पुनः उसकी मनःस्थिति डांवाडोल हो जाती है। वह सिंहल से घर आने के लिए उतावला हो जाता है। वह कह उठता है कि "मैं समुद्र के पार पहुँच जाता हूँ तो मेरे सदृश कोई नहीं रह जायगा।" यह लोभ और अहंकार प्रकट करता है कि अभी वह अपनी साधना में पूर्ण नहीं हुआ है। पद्मावती की प्राप्ति के बावजूद अभी उसकी साधना पूर्ण नहीं है। इसलिए उसे एक बार और संकटों का सामना करना पड़ता है। पद्मावती के साथ जिस समय वह स्वदेश वापस होने लगता है, सागर में तूफान उठता है, नौका दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है—

आधे समुंद आए सोधे नाहीं,
उठी बाउ आंधी उपराहीं।

१ पद्मावत, छन्द २६१
२ वही, छन्द २६२

लहरैं उठीं समुंद उलथाना।
भूला पंथ सरग नियराना।
अदिन आइ जौं पहुँचै काऊ,
पाहन उड़ाइ बहै सो बाऊ।
बोहित बहे लंक दिसि ताके,
मारग छांड़ि कुमारग हांके।
जौं लै भार निवाहि न पारा,
सो का गरब करैं कनहारा।
दरब भार संग काहु न उठा,
जेइं सैंता तेहि सों पुनि रूठा।
गहि पखान लै पंखि न उड़ा,
मोर मोर जेइँ कीन्ह सो बुड़ा।
दरब जो जानहिं आपन भूलहिं गरब मनाहँ।
जो रे उठाइ न लै सके बोरि चले जल माहँ ॥[1]

गर्व और अहंकार रत्नसेन को ले डूबते हैं। पद्मावती बहकर दूसरी दिशा में चली जाती है। रत्नसेन बहता हुआ वहाँ जा लगता है जहाँ कोई संदेशी कागा तक नहीं हैं। वह धाड़ मारकर रोने लगता है।

वह धन कहाँ है? वह 'पद्मावती' कहाँ है? हाय घमण्ड ने मुझे विनष्ट कर दिया—

कहं रानी पदुमावति जीउ बसत तेहि पाहँ।
मोर मोर कै खोएउं भूलेउं गरब मनाहँ ॥[2]

समुद्र ब्राह्मण का रूप धारण कर आता है और वह उपदेश देता है कि संसार में जो भी गर्व करता है उसकी यही दशा होती है। समुद्र की कृपा से ही रत्नसेन को फिर पद्मावती मिलती है। दोनों चित्तौड़ आते हैं।

प्रेम में विरह अनिवार्य है। विरह की स्थिति में ही प्रेम की तीव्रता, शुद्धता तथा एकनिष्ठता की परीक्षा होती है। इसीलिए सूफ़ी कवि विरह का चित्रण विस्तार के साथ करते हैं। 'पद्मावत' में रत्नसेन, पद्मावती तथा नागमती तीनों विरह-विकल होते हैं। विरह की आँच में तपकर जब प्रेम निर्विकार हो जाता है तब प्रेमास्पद से मिलन में कठिनाई नहीं रह जाती।

'पद्मावत' में रत्नसेन का विरह अत्यन्त कारुणिक है। पार्वती अप्सरा का रूप धारण कर रत्सेन की परीक्षा लेने आती है और प्रयत्न करती है कि वह डिग जाय। पर रत्नसेन जरा भी विचलित नहीं होता, तब वह महादेव से कहती है—

---

१. पद्मावत, छन्द ३८९

२ वही, छन्द ४०४ ८,९

गौरैं हंसि महेस सों कहा,
निस्चैं यहु बिरहानल दहा।
निस्चैं यह ओहि कारन तपा,
परिमल पेम न आछै छपा।
निस्चैं पेम पीर यह जागा,
कसत कसौटी कंचन लागा।
बदन पियर जल डभकहिं नैनां,
परगट दुऔ पेम के बैनां।
यह ओहि लागि जरम एहि सीझा।
चहै न औरहि ओहीं रीझा,
महादेव देवन्ह के पिता।
तुम्हरी सरन राम रन जीता।
एहू कहं तसि मया करेहू,
पुरवहु आस कि हत्या लेहू ॥[1]

मलिक मुहम्मद जायसी ने रत्नसेन के विरह का चित्रण करते हुए यहाँ तक कहा है कि धरती और स्वर्ग भी उसके विरह की अग्नि से जल उठे हैं। उसका विरह इतना प्रगाढ़ है कि समस्त संसार में वह व्याप्त हो गया है। संसार में खड्ग की धार बड़ी तेज समझी जाती है किन्तु विरह का कष्ट उससे भी तीव्र है।

जग महं कठिन खरग कै धारा,
तेहि तें अधिक बिरह कै झारा।[2]

जिस समय रत्नसेन के हृदय में प्रेम की लौ लग जाती है, वह पद्मावती से मिलने के लिए चल पड़ता है। पद्मावती भी उसके प्रेम के प्रभाव से अब वंचित नहीं रह पाती। वह भी प्रेम के वश में हो जाती है और विरह व्यथा में तड़पने लगती है—

'पदुमावति तेहि जोग संजोगां,
परी पेम बस गहे बियोगां।
नींद न परै रैनि जौं आवा,
सेज केवांछ जानु कोइ लावा ॥[3]

× × ×

परीं बिरह बन जानहुँ घेरी,
अगम असूझ जहां लगि हेरी।
चतुर दिसा चितवै जनु भूली,
सो बन कवन जो मालति फूली ॥[4]

---

१. पद्मावत, २११
२ वही, छन्द १५३।५
३. वही, छन्द १६८।१,२
४ वही छन्द १६९ १ २

सूफ़ी कवियों का विश्वास है कि रूह खुदा से विलग होते ही तड़पने लगती है और पुन: जब तक उसमें अपने को फ़ना नहीं कर देती, वह विरह से जलती रहती है। इसीलिए सूफ़ी कवि विरह को प्रेम का अनिवार्य गुण मानते हैं और उसका विशद् वर्णन करते हैं। मलिक मुहम्मद जायसी ने रत्नसेन, पद्मावती तथा नागमती में विरह की जो तीव्रता दिखाई है उसका मूल रहस्य यही है।

इस प्रकार जायसी की प्रेम-साधना अत्यन्त उच्च भावभूमि पर स्थित है। कवि ने लौकिक कथा अवश्य ली है, किन्तु इसमें एक स्वस्थ दर्शन की प्राणधारा सर्वत्र दिखाई पड़ती है। अपनी परम्परागत मान्यताओं से कवि कहीं दूर नहीं हटा है। काव्य की आवश्यकताओं की भरपूर रक्षा करते हुए ईश्वर, आत्मा, प्रेम, विरह तथा संसार के प्रति सूफ़ी साधक का जो दृष्टिकोण होता है उसका निर्वाह महाकवि जायसी ने सम्यक्‌रूपेण किया है।

६

जायसी और फ़ारसी कवि निज़ामी का नखशिख : एक तुलनात्मक अध्ययन

सौंदर्य के चित्रण के लिए मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' में पद्मावती का नखशिख वर्णन किया है और लौकिक संकेतों से परम-सौंदर्य की एक झलक देने का प्रयास किया है। उनका सादृश्य विधान प्रायः भारतीय काव्य परम्पराओं के अनुकूल है फिर भी उसमें एक प्रच्छन्न भावधारा दिखाई पड़ती है और यह विशेषता फ़ारसी के कवियों के नखशिख वर्णन में भी पाई जाती है। जायसी ने पद्मावती के सौंदर्य का अंकन करने के लिए अनेक स्थलों पर नखशिख वर्णन किया है किन्तु इस लेख मे केवल दो प्रसंगों को लिया गया है। प्रथम प्रसंग पद्मावती के विवाह के पूर्व का है जिसमें शुक रत्नसेन के पास जाता है और पद्मावती का रूप वर्णन करता है। द्वितीय प्रसंग उस समय का है जब रत्नसेन द्वारा निर्वासित किए जाने पर राघवचेतन दिल्ली पहुँचता है और अलाउद्दीन से पद्मावती के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करता है। प्रथम नखशिख में वर्णन सिर से प्रारम्भ किया गया है और क्रमशः मांग, ललाट, भौहों, नयनो, बरौनियों, नासिका, अधरों, मुख, दांतों, जिह्वा, श्रवणों, भुजाओं, कुचों, पेट, पीठ, कटि, नाभि, नितम्बों आदि का वर्णन करते हुए इस प्रसंग का समापन किया गया है।[1]

सिर के बालों की तुलना भ्रमरों तथा विषधर से की गई है। मांग पर अभी सिंदूर नहीं चढ़ा है क्योंकि वह अविवाहिता है। उसके सिर पर मोती हैं ऐसा लगता है जैसे जमुना के बीच गंगा का स्रोत चला गया है। ललाट की तुलना द्वितीया के चन्द्र से की गई है और चन्द्र से उसे श्रेष्ठ बताया गया है। उसकी भौंहें धनुष हैं।

---

१ देखिए, पद्मावत, छंद ९९ से ११८ तक

बरौनियाँ ऐसी हैं जैसे दो सेनायें वाण साधे विराजमान हों। नासिका की तुलना खड्ग से की गयी है। अधर को बंधूक पुष्प कहा गया है। दाँत ऐसे हैं मानों हीरा जड़े हुए हों या भादों मास की बिजली हो। उसकी जिह्वा मधुर है। कपोल जैसे एक नारंगी के दो टुकड़े हों। उसकी ग्रीवा क्रौंच पक्षी के सदृश है। उसकी भुजाएँ कनक दंड सदृश हैं। हृदय रूपी थाल पर कुच कंचन लड्डू के सदृश हैं। कुचों का सादृश्य बेल से भी दिखाया गया है। उसकी कटि से सिंह की कटि भी मुकाबला नहीं कर सकती।

रूप वर्णन का द्वितीय प्रसंग भी सिर पर स्थित केश-राशि के वर्णन से प्रारम्भ होता है। माँग का वर्णन करते हुए यहाँ सिंदूर की रेखा का भी चित्रण है क्योंकि पद्मावती अब विवाहिता है। पूर्व प्रसंग की भाँति कवि यहाँ भी क्रमशः ललाट, भौहों, नेत्रों, बरौनियों, नासिका, अधरों, दाँतों, जिह्वा, कपोलों, श्रवणों, भुजाओं, कुचों, पेट, कटि, पीठ तथा नाभि का वर्णन करता है।[1]

नखशिख वर्णन के ये दोनों प्रसंग सादृश्य-विधान और उत्प्रेक्षाओं की दृष्टि से प्रायः समान हैं। वर्णन-विस्तार में अन्तर अवश्य दिखाई पड़ता है। किन्तु दोनों वर्णनो मे जो एक विशेष बात परिलक्षित होती है, वह है जायसी की आध्यात्मिक दृष्टि। लौकिक चित्रण के मध्य वह अपने अलौकिक संकेतों की एकसूत्रता बनाए रखने की चेष्टा करते हैं।

जायसी की आध्यात्मिक दृष्टि

जिस समय पद्मावती अपने बालों को खोलती है, उस समय स्वर्ग और पाताल मे अन्धकार छा जाता है।[2] तपस्वी अपने को इसलिए चिरवाते हैं कि सम्भवतः उनके रक्त से वह सिंदूर लगाले।[3] इससे स्पष्ट है कि पद्मावती को प्राप्त करने के लिए तप करना पड़ता है। उसका मस्तक द्वितीया के चन्द्र की भाँति सुशोभित है बल्कि सूर्य भी उसके प्रकाश के सामने छिप जाता है। चाँद में कलंक है, वह कलंक रहित है।[4]

पद्मावती की भौंहें काल सदृश हैं। वह एक साधारण नारी नहीं है। वह एक ईश्वरीय शक्ति है। उसकी भृकुटि के विक्षेप से मृत्यु होती है। यही धनुष कृष्ण

---

१. देखिए, **पद्मावत,** छंद ४६८ से ४८८ तक

२. बेनी छोरि झारु जौं बारा। सरग पतार होइ अँधियारा।।

—**पद्मावत, ९९।४**

३. करवत तपा लेहिं होइ चूरू। मकु सो रुहिर लै देइ सेंदूरू।।

—**पद्मावत, १००।७**

४. सहस करां जो सुरुज दिपाई। देखि लिलाट सोउ छपि जाई।।
का सरबरि तेहि देउं मयंकू। चांद कलंकी वह निकलंकू।।

, १०१।२,३

और राम के पास भी था जिससे उन्होंने रावण का वध किया।[1] इस प्रकार जायसी ने यह संकेत किया है कि पद्मावती, राम और कृष्ण एक ही तत्त्व के भिन्न-भिन्न रूप है। पद्मावती के नेत्र भी साधारण नहीं हैं, उनके चंचल होने से समस्त संसार विचलित हो उठता है।[2] अपनी बरौनियों से उसने सम्पूर्ण संसार को बेध रखा है। आकाश के नक्षत्र, जिनकी गणना नहीं हो सकती, उसके बाण से बिद्ध हैं। पद्मावती ने अपने बाणों से धरती को बिद्ध कर रखा है, जितने वृक्ष खड़े हैं सब इसकी साक्षी दे रहे हैं। मनुष्य के रोम-रोम में उसका ही बाण बिधा हुआ है।[3] उसके हँसने से सारा ससार उज्ज्वल हो उठता है।[4] जिस दिन उसके दाँतों की ज्योति का निर्माण हुआ, उस ज्योति से बहुत-सी ज्योतियों का निर्माण हुआ। चन्द्रमा-सूर्य तथा नक्षत्रों को उसने ज्योति दी है। रत्न, माणिक्य और मोती में उसका ही प्रकाश है। जहाँ-जहाँ वह स्वाभाविक रूप से हँसती है, तहाँ-तहाँ ज्योति प्रकट होकर बिखर जाती है।[5] चारो वेदों का ज्ञान उसके पास है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम तथा अथर्ववेद से वह परिचित है। उसके एक-एक बोल में चौगुना अर्थ है जिससे इन्द्र और ब्रह्मा सिर धुनते हैं।[6]

---

१. उहै धनुक उन्ह भौंहन्ह चढ़ा। केइँ हतियार काल अस गढ़ा।।
   उहै धनुक किरसुन पहँ अहा। उहै धनुक राघौ कर गहा।।
   उहै धनुक रावन संघारा। उहै धनुक कंसासुर मारा।।
   —पद्मावत, १०२।२,३,४

२. जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अडार चाह पल माहाँ।।
   —पद्मावत, १०३।५

३. उन्ह बानन्ह अस को को न मारा। बेधि रहा सगरौं संसारा।।
   गँगन नखत जस जाहिं न गने। हैं सब बान ओहि के हने।।
   धरती बान बेधि सब राखी। साखा ठाढ़ि देहिं सब साखी।।
   रोवँ रोवँ मानुस तन ठाढ़े। सोतहि सोत बेधि तन काढ़े।।
   —पद्मावत, १०४।४,५,६,७

४. बिहँसत जगत होइ उजियारा। —पद्मावत, १०६।३

५. जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहुतन्ह जोति जोति ओहि भई।।
   रवि ससि नखत दीन्हि ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।।
   जहँ जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।।
   —पद्मावत, १०७।४,५,६,

६. चतुर बेद मति सब ओहि पाहाँ। रिग जजु साम अर्थबन माहाँ।।
   एक एक बोल अरथ चौगुना। इन्द्र मोह बरम्हा सिर धुंना।।
   अमर भारथ पिंगल औ गीता। अरथ जूझ पंडित नहिं जीता।।
   भावसती ब्याकरन सरसुती पिंगल पाठ पुरान।
   बेद भेद सैं बात कह तस जनु लागहिं बान।।
   , १०८ ५,६ ७,८,९

बहुत से राजा तपकर मर गए पर पद्मावती प्राप्त नहीं हुई। उसके कुचों को कोई छू नहीं सका और सब हाथ मलते रह गये।[१] इससे आध्यात्मिक संकेत स्पष्ट हो जाता है। असाधारण तप करने पर भी पद्मावती का प्राप्त हो सकना संभव नहीं है। इस तप का महत्त्व जायसी ने और भी स्पष्ट किया है और कहा है कि पद्मावती की प्राप्ति के लिए हिमालय जैसा तप आवश्यक है।[२] उसकी सुगंधि से संसार बेधा हुआ है।[3] देवता उसके चरण हाथों से उठा लेते हैं, जहाँ उसका पैर पड़ता है वहाँ वे शीश देते हैं।[४]

उसका सौंदर्य अद्वितीय है। संसार में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसको तुलना में बैठाया जा सके। राजा रत्नसेन शुक से पद्मावती का सौंदर्य सुनकर मूर्च्छित हो जाता है और उसे प्रेम का गहरा घाव लग जाता है।[५]

नखशिख वर्णन के अन्तर्गत कवि ने जो अलौकिक संकेत दिए हैं, उससे उसकी अन्तर्दृष्टि और भाव-गाम्भीर्य पर प्रकाश पड़ता है। पद्मावती ईश्वरीय सौंदर्य है इसलिए उसके चित्रण में पारलौकिकता का अपूर्व मिश्रण है। शुक पद्मावती के रूप का स्थूल वर्णन कर संतोष नहीं करता बल्कि उस दिव्य सौंदर्य का स्पष्टीकरण करता है, जिससे सम्पूर्ण संसार को ज्योति प्राप्त होती है। राघवचेतन ने अलाउद्दीन से पद्मावती का जो रूप-सौंदर्य वर्णित किया है, उसमें भी आध्यात्मिकता की अन्तःसलिला प्रवाहित होती दिखाई पड़ती है। सूर्य की कांति तथा निर्मल नीर की भाँति उसका शरीर निर्मल है। उसको कोई सामने देख नहीं पाता। देखने पर आँखों में पानी भर आता है।[६] उसका सिंदूर देखकर देवता बलि हो जाते हैं। नित्य प्रातः उगता हुआ सूर्य उस माँग की पूजा करता है। प्रातः और संध्या के सूर्य की जो लाली है, वह

---

१. राजा बहुत मुए तपि लाइ लाइ भुइं माथ।
काहूँ छुअै न पारे गए मरोरत हाथ ॥ —पद्मावत, ११३।८,९

२. को ओहि लागि हिवंचल सीझा। का कहँ लिखी अैस को रीझा ॥
—पद्मावत, ११७।४

३. बेधि रहा जग बासन परिमल मेद सुगंध।
तेहि अरधानि भँवर सब लुबुधे तजहि न नीवी बंध ॥
—पद्मावत, ११७।८,९

४. देवता हाथ हाथ पगु लेहीं। पगु पर जहाँ सीस तहँ देहीं ॥
माँथें भाग को दहुं अस पावा। कंवल चरन लै सीस चढ़ावा ॥
—पद्मावत, ११८।४,५

५. सुनतहि राजा गा मुरछाई। जानहुँ लहरि सुरुज कै आई ॥
पेम घाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई ॥
—पद्मावत, ११९।१,२

६ सूरुज क्रांत करा असि निरमल नीर सरीर।
सौंह निरख नहि जाइ निहारी नैनन्ह आवै नीर। ४६८ ८,९

उसके सिन्दूर से प्राप्त की गई है।[1] सूर्य और शशि जो इतने निर्मल हैं, उसी ललाट के कारण हैं।[2] उसके अधर में प्रेम का रस भरा हुआ है किन्तु उसके बीच अलक रूपी भुजंगिनी लटकी हुई है। जब इस सर्पिणी से कोई मुक्ति पा जाय तब वह अधर का रसपान कर सकता है।[3] राघवचेतन यह भी कहता है, उसके दाँतों की ज्योति नयन के रास्ते से हृदय में पैठ गई इस कारण बाहर अंधेरा दिखाई पड़ने लगा और केवल उसी पर दृष्टि पड़ने लगी।[4] उसके कंठ से शारदा विमुग्ध हो उठती है। सरस्वती की जीभ उसके समक्ष कुछ भी नहीं है। इन्द्र, चन्द्र, सूर्य तथा और देवता उसके मुख की इच्छा करते हैं।[5]

अलाउद्दीन भी पद्मावती के रूप सौंदर्य की चर्चा सुनकर मूर्च्छित हो जाता है। ऐसा लगता है वह मूर्ति उसके हृदय में प्रकट हो गई और दर्शन देकर छिप गई।[6]

फ़ारसी के कवियों का नखशिख वर्णन

फ़ारसी के कवियों ने भी नखशिख वर्णन किया है और उनकी कल्पनाएँ और उद्भावनाएँ हिन्दी के सूफ़ी कवियों से भिन्न हैं। निज़ामी ने 'खुसरो शीरीं' में शीरीं का नखशिख वर्णन किया है। निज़ामी ने शीरीं की तुलना चाँद और परी से की है। शीरीं एक परी थी।[7] वह महताब की भाँति जवानी की रात को रोशन करने वाली

---

१. बलि देवता भए देखि सेंदूरू। पूजै माँग भोर उठि सूरू॥
भोर साँझ रबि होइ जो राता। ओहीं सो सेंदुर राता गाता॥
—पद्मावत, ४७१।६,७

२. ससि औ सूर जो निरमल तेहि लिलाट की ओप।
निसि दिन चलहिं न सरबरि पावहिं तपि तपि होंहि अलोप॥
—पद्मावत, ४७२।८,९

३. अधर धरहिं रस पेम का अलक भुअंगिनि बीच।
तब अंब्रित रस पाउ पिउ ओहि नागिनि गहि खींचु॥ —पद्मावत, ४७६।८,९

४. दसन जोति होइ नैन पँथ हिरदै माँझ बईठि।
परगट जग अंधियार जनु गुपुत ओहि पै डीठि॥ —पद्मावत, ४७७।८,९

५. कंठ सारदा मोहहिं जीभ सुरसती काह।
इन्द्र चन्द्र रबि देवता सबै जगत मुख चाह॥ —पद्मावत, ४७८।८,९

६. राघौ जौं धनि बरनि सुनाई। सुना साह मुरुछा गति आई॥
जनु मूरति वह परगट भई। दरस देखाइ तबहि छपि गई॥
—पद्मावत, ४८६।१,२

७. परी दोख़्ते परी बगुज़ार माहे।
बज़ेरे मक़्न साहब कुलाहे॥—खुसरो शीरीं, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ,
सन् १९०२ ई०, पृ० २०,

थी और उसकी काली आँखें अमृत की भाँति थीं।[1] उसका क़द बाग के सरो (सर्व) (एक पतला वृक्ष) की तरह खींचा हुआ था। वह गम से बेपरवाह थी और उसने आफत को नहीं देखा था।[2] उसका क़द खींचा हुआ था और वह चाँदी के वृक्ष की भाँति थी। उसकी दोनों काली जुल्फें उसके शरीर पर ऐसी लटक रही थीं कि जैसे दो हबसी आदमी छुहारे चुन रहे हों।[3] उसके दाँतों के मोती नूर की तरह थे और सीप को उसने दूर से दाँत की चमक दे दी थी।[4] मिश्री उसके मधुर होंठों से ईर्ष्या करती थी और हलवा भी उसकी मिठास के आगे फीका था।[5] वह अपने जादू से दिलों की आग को तेज करती थी और उसके ओठ अत्यन्त नमकीन थे। पर इससे शकर टपकती थी।[6] उसके दोनों होठ अक़ीक पत्थर की भाँति थे, उनमें रौनक थी।[7]

उसकी पिंगल लटों ने चमक दिल से खींची है। लगता है, बालछड़ घास पर फूल उगे हुए हैं।[8] उसने अपनी आँखों को जादूगर बना लिया है और अपने जादू से बदन ज़री का मुंह बंद कर दिया है।[9] उसके अधरों पर मुस्कान का लावण्य रहता है। पर इस नमक में मधुरता है।[10] उसकी नाक चाँदी की एक तलवार है। उस

---

१. शब अफरोज़े चो महताबे जवानी।
सियह चश्मे चो आबे ज़िन्दगानी।।—खुसरो, शीरीं पृ० २०

२. क़दे चूं सरे बोस्ताँ बर कशीदा।
ज़े गम आशुदाब आफ़ताब न दीदा।। वही, पृ० २०

३. कशीदा क़ामत चूं नखलसिमी।
दो जंगी बरसरे नखलश रुतुबचीं।। वही, पृ० २०

४. ब मरवारीद दंदा हाये चू नूर।
सदक रा आबदंदा दादा अजदूर।। वही, पृ० २०

५. न बात अज़ रश्के आं शकर गुरेज़ा।
तब राज़्द दरम्यां ओफ्तां व खेज़ां।। वही, पृ० २०

६. बसेहरे कातिश दिलसा कूनद तेज़।
लबश रा सदनमक हलक शकररेज़।। वही, पृ० २०

७. दो शकर चूं अक़ीक आब दादा।
दो गेसू चूं कमंद ताबदादा।। वही, पृ० २०

८. खमे गेसू वश ताब अज़ दिल कसीदा।
बे सुंबुले सब्ज गुलरा बरदमीदा।।—खुसरो शीरीं, पृ० २१

९. फुंसूगर करदा वर खुद चश्मे खुदरा।
ज़बाँ बस्ता बाफसूं चश्मे वद रा।। वही, पृ० २१

१०. नमक दारद लबश दरखंदा पैंबस्त।
नमक खोरीं न बाशद लैक उ हस्त। वही पृ० २१

तलवार ने सेब के दो टुकड़े किये हैं।[1] उसके हर नाज़ में एक अदा है। उसकी ठोडी सेब की भाँति है और उसका ग़बग़ब (ठोड़ी के नीचे का हिस्सा) तुरंज (नारंगी) की भाँति है।[2] उसके दोनों कुच चाँदी के दो उठे हुए अनार हैं जिन पर फूलों के हार पड़े हुए हैं।[3] उसके चेहरे पर इतनी रोशनी है कि सितारों की गति रुक गई है और सूर्य तथा चाँद की रोशनी फीकी पड़ गई है।[4] उसकी गर्दन को हरिण ने अपनी गर्दन बना ली है। उसने आँखों के पानी से अपना दामन धोया है।[5] हरिण की आँखो की भाँति उसकी आँख शहद का चश्मा है जिससे शेर अफगनों को मदहोशी की नींद आ जाती है।[6] लोगों को मार डालने का हुक्म देने के लिए उसने दस कलमें (अंगुलियाँ) रखी हैं।[7] उसके जुल्फ का छोर नाज़ और दिलबरी से भरा हुआ था और उसमे याक़ूत (एक सुर्ख रंग का पत्थर) तथा मोती जड़े हुए थे।[8]

निज़ामी की भाँति जामी ने भी अपनी मसनवी "यूसुफ़ जुलेखा" में जुलेखा का नखशिख वर्णन किया है।[9] उसका क़द ताड़ के वृक्ष के सदृश था।[10] चाँदी के पत्र की भाँति उसका मस्तक है।[11] फ़ारसी के 'अलिफ' शब्द की भाँति उसकी रजत नासिका है।[12] उसकी आकृति ईरान के उद्यानों की भाँति थी जिसमें रंग-बिरंगे गुलाब खिले रहते थे।[13] उस पर काला तिल लस रहा था। उसकी गर्दन हाथी के दाँत की

---

१. तू गोई बीनी अश तेगेस्त अज़ सीम।
   के करद आंतिग सेबे रा बदोनीम।।—खुसरो शीरीं, पृ० २१
२. मोअक़्लि करदा बरहर गमज़ा गुंजे।।
   जनख चूँ सेब ग़बग़ब चूं तुरंजे।। वही, पृ० २१
३. दो पिस्तां चूँ दो सीमी नार नव खेज।
   बरा पिस्तां गुले बुस्तां दिरम रेज़। वही, पृ० २१
४. रुखश तकबीमे अंजुम ज़दा रा।
   फशान्दा दस्त बरखूरशीद व बरमा।। वही, पृ० २१
५. निहादा गर्दने आहू गर्दनश रा।
   ब आबे चश्म शुस्ता दामनश रा।। वही, पृ० २१
६. बचश्मे आहुवां आं चश्मये नोश।
   देहद शेर अफगना रा खाबे खरगोश। वही, पृ० २१
७. बफरमाने के खाहद खल्क रा कुश्त।
   बदहस्तश दह कलम याने दह अंगूस्त।। वही, पृ० २१
८. सरे जुलफश ज़े नाज़ो दिलबरी पुर।
   लबो दं दानश यज याक़ूत वज दूर।। वही, पृ० २१
९. यूसुफ जुलेखा—अंग्रेजी अनुवाद, ग्रिफिथ, लंदन १८८२, पृ० ४०
१० वही पृ० ४० ११ वही पृ० ४०
१२ वही, पृ० ४१ १३ वही, पृ० ४१

भाँति थी।[१] उसकी भुजाएँ लम्बी थीं।[२] नरकल की भाँति उसकी कोमल अंगुलियाँ थी जिनसे वह प्रेमियों के हृदय पर प्रेम को अंकित किया करती थी।[3] इन अंगुलियों पर नख इतने लम्बे, सुन्दर थे कि ऐसा लगता था कि पूर्ण चन्द्र विकसित हो।[४] उसके पाँव इतने हल्के और लचीले थे कि कोई भी सजी हुई सेविका उसका मुकाबला नहीं कर सकती थी।[५]

मलिक मुहम्मद जायसी से तुलना

महाकवि निज़ामी और जामी के नखशिख वर्णनों की समीक्षा से यह स्पष्ट है कि इन कवियों ने जो उपमाएँ या उत्प्रेक्षाएँ ग्रहण की हैं, उन्हें जायसी ने कम अपनाया है। कवि ने भ्रमर, वासुकि, जमुना, सरस्वती शुक, दामिनी, चन्द्र, नारंगी, क्रौंच, श्रीफल आदि से नायिकाओं के अंगों का सादृश्य विधान किया है। निज़ामी ने शीरीं के क़द को सरो के वृक्ष से तुलना की है। होठों की उपमा अक़ीक पत्थर से दी है। नाक को चाँदी की तलवार कहा है तथा कुचों को चांदी का अनार बताया है। भारतीय साहित्य में ये कल्पनाएँ नहीं पाई जातीं। जायसी ने सादृश्य विधान के लिए प्रायः भारतीय परम्पराओं को ग्रहण किया है।

किन्तु फ़ारसी के सूफ़ी कवि निज़ामी और जामी ने अपनी नायिकाओं को जिस प्रकार अलौकिक सौंदर्य प्रदान किया है और उनकी शोभा के समक्ष संसार की सुन्दरता को फीका बताया है, उसी प्रकार जायसी भी अपनी नायिका को दैवी धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं। पद्मावती का-सा सौंदर्य न चाँद में है और न सूर्य में है और न संसार के किसी अन्य पदार्थ में है। वह अलौकिक सौंदर्य का प्रतीक बन जाती है। निज़ामी और जामी भी अपनी नायिकाओं को सामान्य धरातल पर नहीं रहने देते और उन्हें दैवी सौंदर्य का प्रतीक बना देते हैं। निज़ामी की शीरीं के रुख ने सितारों के रास्ते को बंद कर दिया है[६] और सूर्य तथा चाँद पर हाथ फेर दिया है। एक रात में सौ से अधिक व्यक्ति उसको स्वप्न में देखते थे पर जिस प्रकार सूर्य नहीं मिलता, वह भी प्राप्त नहीं होती थी।[७] उसके तिल के सौंदर्य को देखकर चाँद कहता है कि यह मेरा तिल है और रात इस तिल के लिए फाल (नेक शकुन) की किताब पढ़ रही है।[८]

---

१. युसुफ जुलेखा, पृ० ४१
२. वही, पृ० ४२
३. वही, पृ० ४२
४. वही, पृ० ४२
५. वही, पृ० ४३
६. रुखश तकबीमे अंजुम जदा रा।
फशान्दा दस्त बरखुरशीद व बरमा ॥—खुसरो शीरीं, पृ० २१
७. शबे शतकस फजूं बीनद बखाबश।
न बीनद शब कसे चूं आफताबश॥
८ महृमज खूबीमश खुदरू
शब अज सायश किताबे फाल खान्दा ।

जामी 'जुलेखा' के दीप्त कपोलों से प्रकाश उधार माँगते हैं। वह बोल सकें इसके लिए उसके प्रकाशमान मुख से शक्ति माँगते हैं ताकि वह जो जानते हैं कह सकें।[१] अतः जामी ने जुलेखा में भी दैवी सौंदर्य और शक्ति की प्रतिष्ठा की है। मलिक मुहम्मद जायसी ने इस परम्परा को अधिक विस्तार दिया है और अपने नखशिख-वर्णन में पद्मावती को पदे-पदे अलौकिक व्यक्तित्व प्रदान किया है।

---

१. Like her own bright hair falling loosely down,
I will touch each charm to her feet from her crown.
May the soft reflexion of that bright cheek,
Lend light to my spirit and bid me speak,
And that flashing ruby, her mouth, bestow,
The power to tell of the things I know

—यूसुफ जुलेखा, जामी, अनुवादक ग्रिफिथ, लदन १८८२, पृ० २०

७

बारह्मासा की परम्परा और 'पद्मावत'

मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' में नागमती के विरह की तीव्रता दिखाने के लिए बारह्मासा का चित्रण किया है। यह बारह्मासा आषाढ़ से प्रारम्भ होता है और जेठ मास तक चलता है। आषाढ़ आने पर आकाश में काले बादल घिर आते हैं और नागमती के हृदय में विरह की अग्नि प्रज्वलित हो उठती है।[1] श्रावण में मेघ जल की वर्षा करते हैं पर नागमती विरह में सूखने लगती है।[2] भाद्रपद की रात में प्रियतम रत्नसेन के अभाव में उसकी रात नहीं कट पाती। शैया नाग बनकर डस रही है।[3] बिजली की कौंध तथा मेघों की गर्जन में वियोग काल बन गया है। इसी प्रकार क्वार, कार्तिक, अगहन, पूस, माघ, फागुन, चैत, बैसाख, जेठ सभी महीने नागमती को पीड़ित कर रहे हैं।[4]

जायसी के परवर्ती सूफ़ी कवि मंझन तथा उसमान ने भी बारह्मासा का चित्रण किया है किन्तु मंझन का बारह्मासा श्रावण से प्रारम्भ होता है[5] तथा उसमान का बारह्मासा चैत से प्रारम्भ होता है।[6]

---

१. चढ़ा आसाढ़ गगन घन गाजा। साजा विरह दुंद दल बाजा॥
—पद्मावत, ३४४।१

२. सावन बरिस मेह अति वानी। भरनि भरइ हौं विरह झुरानी॥
—वही, ३४५।१

३. भर भादौं दूभर अति भारी। कैसे भरौं रैनि अंधियारी॥ —वही, ३४६।१

४. **पद्मावत**, छन्द ३४७ से ३५६ तक।

५. मंझन कृत **मधुमालती**—सम्पादक, डा० शिवगोपाल मिश्र, पृ० १२० से १२३ तक (प्रथम संस्करण, १९५७)।

६. उसमान कवि कृत **चित्रावली**—सम्पादक श्री जगन्मोहन वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १६९ १७०, १७१ १७२ १७३

भारतीय साहित्य में बारहमासा की रचना सर्वप्रथम १३वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुई बताई जाती है और कदाचित् इस परम्परा की सर्वप्रथम रचना जिण-धम्मसूरि कृत बारहनावउं है।[1] 'हिन्दी अनुशीलन' संवत् २०१० के, अंक ४, (पौष-फाल्गुन) में श्री अगरचन्द नाहटा ने 'बारहमासा की प्राचीन परम्परा' शीर्षक एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने कहा है कि "अभी तक प्राप्त बारहमासों में अपभ्रंश की यह रचना सबसे प्राचीन है।....इस रचना में जिन धर्मसूरि की स्तुति की गई है, वे बड़े प्रभावक आचार्य थे। सांकाभरि के अजयपाल और विग्रहराज इनके भक्त थे। विग्रह-राज ने तो इनके उपदेश से जैन मन्दिर भी बनवाया था। यह पाटन भण्डार में उप-र्युक्त धर्मसूरि स्तुति में पूर्व रविप्रभ सूरि रचित धर्मशेषसूरि स्तुति प्रकाशित हुई है, इससे स्पष्ट है। अतएव इस बारहनावउं की रचना १३ वीं शताब्दी का प्रारम्भ सुनि-श्चित है और इसमें बारहमासा संज्ञक भाषा काव्यों की रचना ८०० वर्ष पुरानी सिद्ध होती है।"[2]

'बारहनावउं' श्रावण मास से आरम्भ होता है और आषाढ़ तक चलता है। इसका प्रारम्भिक और अन्तिम अंश नीचे दिया जा रहा है :

तिहुयण मणि चूड़ामणिहिं, बारहनावउं धम-सुरि-नाहह
निसुणहु सुयणहु नाण सणाहह पहिलउं सावण सिरिफुरिय
कुवलय दल सामण घणु गज्जइ नं मद्दल-मण्डल भुणि छज्जइ
विज्जु लड़ी सबकिहिं लवइ।[3]

× × ×

माणिणि माण भहंतु मयगव मउ मोडिवि
सहि मंडालि वण पत्तु आषाढ़ सुकेसरि
मेहड़लइ नवि गयणि घुड़क्कइ पसरिउ
इंदुघणु हु फुडफारू
किउ विज्जुलिय तरल झलकारू।[4]

इस परम्परा की दूसरी रचना विनयचन्द्र सूरि कृत 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' है। कुछ स्थानों पर इसका रचनाकाल संवत् १३५३ मिलता है। कहीं संवत् १३५८ मिलता है। श्री दलाल इसका रचनाकाल संवत् १३५८ ही मानते हैं। श्री मुनि जिनविजय जी का विचार है कि यह रचना संवत् १३३८ की है। श्री स्वामी

---

१. हिन्दी अनुशीलन, प्रयाग, वर्ष ६, अंक ४, पृ० ४०।
२. वही, पृ० ४०।
३ वही पृ० ४३
४ वही पृ० ४६

मदास जी इसे संवत् १३२५ का मानते हैं।"[1] अतः इस कृति का रचना
ी शताब्दी के आसपास सरलता से स्वीकार किया जा सकता है।

'नेमिनाथ चतुष्पदिका' का प्रारम्भ श्रावण से होता है और अन्त आषा
है। उसका प्रारम्भ और अन्त नीचे दिया जा रहा है :—

सोहग-सुंदरु घण-लायण्णु सुमरवि सामिउ सामल वन्नु।
सखि-पति राजल-चड़ि उत्तरिय बारमास सुणि जिम वज्जरिय॥
नेमि-कुमरु सुमरवि गिरनारि।
सिद्धी राजल-कन्न कुमारि॥
श्रावणि सरवणि कडुयं मेहु, गज्जइ, विरहि रि! झिज्झइ देहु।
विज्जु झबक्कइ रक्खसिजेव नेमिहिविणु सहि! सहियइ केम॥[2]
आषाढ़ह दिठ्ठु हियउं करेवि गज्जु विज्जु सवि अवगन्नेवि।
भणइ वयणु उग्रसेणहजाय करिसु धम्मु सेविसु प्रिय पाय॥[3]

'नेमिनाथ चतुष्पदिका' में बारहमासा आषाढ़ मे समाप्त तो हो जाता है
बाद कवि अधिकमास का भी चित्रण करता है।

अधिक मासु सवि मासहि फिरइ, छइ रितु केरा गुण अणुहरइ।
मिलिवा प्रिय अबाहुलि हूय, सउमुकलाविउ उग्रसेण-धूय॥[4]

संवत् १४०० के आसपास की रचना[5] 'बीसलदेव रास' में भी बारहमास
है किन्तु यह बारहमासा कार्तिक से प्रारम्भ होता है और क्वार तक चलता है
ासा का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

चालियउ उलगाणउ कातिग मास,
छोड़ीया मंदिर घर कविलास।
छोड़ीया चउबारा चउषंडी,
तठइ पंथि सिरि नयण गमाइया रोइ।
भूष गई त्रिस ऊचटी,
कहि न सषीय नींद किसी परि होइ।[6]

हिन्दुस्तानी, प्रयाग, भाग २० (१९५९ जनवरी-मार्च), अंक १ में प्रकाशित
हरिशंकर शर्मा का लेख।

नेमिनाथ चतुष्पदिका, छंद २, सम्पादक—डा० हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी
श्री थार्बस गुजराती सभा ग्रंथावलि, ६१, वम्बई, सन् १९५५।

वही, छन्द ३५।

वही, छन्द ३८।

देखिए, बीसलदेव रास की भूमिका, डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिष
सन् १९६०

बीसलदेव रास, छन्द ६७

बारहमासा का अंतिम छंद इस प्रकार है :—

आसोजइ धण मंडिया आस ।
मांडिया मंदिर घर कबिलास ।
घउलिया चउबारा चउपंडी ।
साधण धउलिया पउलि पगार ।
गउप चड़ी हरषी फिरइ ।
जउ घर आविस्यइ मुंध भरतार ।[1]

जायसी के पूर्व की एक अन्य रचना गणपति कवि कृत 'माधवानलकामकंदल प्रबन्ध' में जिसका रचनाकाल संवत् १५४८ है, बारहमासा के दो प्रसंग आये हैं। दोनों बारहमासे फाल्गुन से प्रारम्भ होते हैं और माघ तक चलते हैं। नायिका कामकंदला के विरह के प्रसंग में जो बारहमासा है उसका प्रारम्भ इस प्रकार है—

कालि ज बहु क्रीड़ा करी, आज तिजावी आस ।
माधव मुंझ मूंकी गयु, फटि रे फागुण मास ।।[2]

इसके अन्तिम अंश का एक छंद इस प्रकार है—

बाहिरि सीतल थिउ सिरइ, अंतरि पाडइ दाघ ।
माधव-पाखइ मूंहनइं, मरण-सरिखु माघ ।।[3]

आदि-ग्रंथ में दो बारहमासों का चित्रण हुआ है। प्रथम बारहमासा में विरहिणी आत्मा का आनन्द मिश्रित दुख प्रकट किया गया है। यह चैत से प्रारम्भ होकर फाल्गुन तक चलता है।[4] आदि ग्रंथ का दूसरा बारहमासा भी चैत से प्रारम्भ होकर फाल्गुन तक चलता है।[5] दूसरे बारहमासा का प्रारम्भ इस प्रकार है—

चेतु बसंतु भला भवर सुहावड़े ।
बन फूले मंझबारि मैं पिरू बाहुड़ै ।
पिरु घरि नहीं आवै धन किउ सुखु पावै बिरहि बिरोध तनु छीजैं ।
कोकिल अंबि सुहावी बोलै किउ दुखु अंकि सही जैं ।
भवरु भवंता फूली डाली किउ जीवा मरु माए ।
नानक चेति सहजि सुख पावै जे हरि वरु घरि धन पाए ।

---

१. बीसलदेव रास, छंद ७८ ।
२. माधवानलकामकंदला प्रबंध, ओरियंटल इंस्टीच्युट, बड़ौदा, सन् १९४२, पृ० २०३
३. वही, पृ० २१५ ।
४. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, प्रकाशक—शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर, १९५१ पृ० १३३ १३६ ।
५ वही, पृ० ११०८ ११०९

इस बारहमासा का अन्त इस प्रकार होता है—

फलगुनि मनि रहसी प्रेमु सुभाइआ ।
अनदिनु रहसु भइया आपु गवाइआ ।
मन मोहु चुकाइआ जातिसु भाइआ करि किरपा घरि आओ ।
बहुते बेस करी पिर बाझहु महली लहा न थाओ ।
हार डोर रस पाट पटंबर पिरि लोड़ी सीगारी ।
नानक मेलिलइ गुरि अपणै घरिवरु पाइआ नारी ।

एक अन्य काव्य 'मैनासत' में, जिसका समय सम्भवतः १५०० ई० के आस-पास है,[1] बारहमासा आषाढ़ से प्रारम्भ होता है । डा० माताप्रसाद गुप्त का मत है कि 'मैनासत' पहले मुल्ला दाऊद कृत 'चंदायन' का एक अंग था ।[2] 'मैनासत' में बारहमासा आषाढ़ से प्रारम्भ होता है और ज्येष्ठ तक चलता है । प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है—

रितु आषाढ़ बरखै पयसारा । सब कोहू घर बार संभारा ।।
दीप गये सो आवन हारा । तेरी कंथ न देखूं बारा ।।[3]

बारहमासा का अंतिम अंश इस प्रकार है—

जेठ मास रवि किरण पसारी । टूटत बरती परत अंगारी ।।
धरनी आग पाटी परसारी । धावपात जरबर भये छारी ।।
काया बन लागौ दौ भारौ । तोहि परिहर गयौ कंत पियारौ ।।
अंग न सीतल मानै जेही । अधिकौ बिरह होइ है तेही ।

सूफ़ी सरम्परा में सन् १३७९ में मौलाना दाऊद ने 'चंदायन' की रचना की । उसमें बारहमासा श्रावण से प्रारम्भ होता है और आषाढ़ तक चलता है ।[4] 'मृगावती' (१५०३ ई०) में भी बारहमासा श्रावण से प्रारम्भ होता है और आषाढ़ तक चलता है ।[5]

'पद्मावत' में नागमती का विरह दिखाने के लिए बारहमासा का विधान किया गया है । वह रतनसेन की प्रथम विवाहिता है किन्तु वह उसे छोड़कर पद्मावती की खोज में निकल पड़ता है, अतः उसमें प्रथम विवाहिता होने का गर्व तथा पति के पुनर्मिलन की आशा बनी हुई है । आषाढ़ में जब आकाश काली घटाओं से घिर उठता है, वह विरहविकल हो उठती है । जायसी के पूर्व के जिन कवियों का उल्लेख ऊपर

---

१. मैनासत, सम्पादक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी, ग्वालियर, सन् १९५९, पृ० ८८ ।
२. हिन्दुस्तानी, प्राचीन हिन्दी काव्यों में पूरक कृतित्व, भाग २०, अंक १ ।
३. मैनासत—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी, ग्वालियर, सन् १९५९, पृ० १७९ ।
४. चांदायन (दाऊद कृत)—डा० माताप्रसाद गुप्त- छंद ३४१ से ३५४ तक ।
५ मृगावती कुतुबन कृत —डा० गुप्त छंद ३१७ से ३२८ तक

किया गया है उनमें चार कवियों का बारहमासा श्रावण से प्रारम्भ होता है। 'बीसलदेव रास' में बारहमासा कार्तिक से प्रारम्भ किया गया है। जायसी के पूर्व का 'मैनासत' ही केवल एक काव्य ऐसा प्राप्त होता है जिसमें बारहमासा आषाढ़ से प्रारम्भ होता है।

विनयचन्द्र सूरि की नायिका राजुल का विरह एक अविवाहिता का विरह है। नेमिनाथ से उसका प्रारम्भ में विवाह नहीं हो पाता किन्तु उसको पति के रूप मे स्वीकार कर वह विरह में संतप्त रहती है। उसकी सखी चाहती है कि राजुल नेमिनाथ से विमुख हो जाये पर उसका प्रयास विफल होता है। 'बीसलदेव रास' मे नायिका राजमती विवाहिता है और उसकी ही गलतियों से बीसलदेव परदेस जाता है, फिर भी नायिका तड़प उठती है और बारह महीने उसको सताने लगते हैं। सम्भवत: 'बीसलदेवरास' का बारहमासा पहला बारहमासा है जिसका प्रारम्भ कार्तिक से हुआ है। श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने एक लेख में उल्लेख किया है कि जैन परम्परा मे १२ महीनों में से किसी कवि ने चैत्र से, किसी ने आषाढ़ से, किसी ने श्रावण से, किसी ने वैशाख व मार्गशीर्ष से तो किसी ने कार्तिक और फाल्गुन से प्रारम्भ किया है।[1] किन्तु कार्तिक से प्रारम्भ होने वाला कोई अन्य बारहमासा अभी प्रकाश मे नही आ सका है। वैसे लोक परम्परा में ऐसे बारहमासे हैं जो कार्तिक से प्रारम्भ होते हैं।[2]

'माधवानलकामकंदला प्रबन्ध' की एक विशिष्टता यह है कि उसकी नायिका एक वेश्या है फिर भी उसके हृदय में नायक माधव के प्रति उतनी ही तड़प है जितनी एक सहज नारी में हो सकती है। यह बारहमासा फाल्गुन से प्रारम्भ होता है।

जायसी के बारहमासा की एक निजी विशेषता है। इसमें वर्णन का विस्तार है। अतः नायिका की विरह वेदना बहुत ही प्रखर रूप में पाठकों के समक्ष आती है। नागमती में एक सहज और प्रकृत नारी के निश्छल भाव देखे जा सकते हैं। वह कहती है, 'पट्ट महादेवी हृदय न हारो। जी में समझो और अपनी चेतना बटोर कर रखो। भ्रमर कमल के साथ है पर वह पराया न होगा। स्मरण कर वह फिर मालती पर आयेगा।'[3]

---

१. हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ६, अंक १।

२. (अ) कविता कौमुदी—श्री रामनरेश त्रिपाठी, बम्बई, सन् १९६६, भाग ३, पृ० ७०५, ७११।
   (आ) भोजपुरी ग्रामगीत—श्रीकृष्णदेव उपाध्याय, इलाहाबाद, संवत् २००५, पृ० १८२।

३. पाट महादेइ हिएं न हारू। समुझि जीउ चित चेतु संभारू॥
   भंवर कंवल संग होई न परावा। संवरि नेह मालति पहं आवा॥
   पद्मावत छन्द ३४३

संस्कृत साहित्य में बारहमासा प्राप्त नहीं होता। वाल्मीकि ने अपनी रामायण मे चार ऋतुओं—वसन्त, वर्षा, शरद, हेमन्त—का चित्रण भिन्न-भिन्न प्रसंगों में किया है। पंपासर के निकट राम और लक्ष्मण वसन्त की शोभा निरखते हैं। वर्षा ऋतु का प्रसंग दशरथ के मृगया के समय उपस्थित किया गया है। शरद का प्रसंग उस समय आया है जब राम ऋष्यमूक पर्वत पर शरद् की शोभा देख रहे हैं। फिर राम-सीता गोदावरी-तट पर हेमन्त में वार्तालाप करते हुए चित्रित किये गये हैं।[1]

कालिदास ने 'ऋतुसंहार' में षट्ऋतुओं का वर्णन किया है। यह वर्णन ग्रीष्म से प्रारम्भ होता है और वसन्त तक चलता है।[2] माघकृत 'शिशुपाल वध' में षट्ऋतु वर्णन वसन्त से प्रारम्भ होता है।[3] कवि ने वसन्त का वर्णन विस्तार से किया है, अन्य ऋतुओं का वर्णन संक्षिप्त है। ग्रीष्म का वर्णन तो अत्यन्त संक्षेप में हुआ है। महाकवि माघ ने श्रीकृष्ण के रैवतक पर्वत के विहार की पृष्ठभूमि में षट्ऋतुओं का वर्णन किया है। अतः यह एक भिन्न प्रकार का ऋतुवर्णन है।

अपभ्रंश में दोनों परम्पराएँ प्राप्त होने लगती हैं। अब्दुर्रहमान कृत 'संदेश-रासक' में षट्ऋतु वर्णन ग्रीष्म से प्रारम्भ होता है और विरहिणी के हृदय की करुण पुकार इस ऋतुवर्णन में सुनी जा सकती है।[4] अपभ्रंश में बारहमासा की भी परम्परा चल पड़ी। संभवतः लोक परम्परा से बारहमासा ग्रहण किये गये। जैन कवियो ने लोककथाओं और लोकपरम्पराओं का आश्रय लेकर अपने मतों का प्रचार किया। अतः लोक प्रचलित बारहमासे को ग्रहण कर लेना कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी। संस्कृत की परम्परा में बारहमासा नहीं प्राप्त होता और लोक में आज भी बारहमासे प्राप्त होते हैं और केवल हिन्दी क्षेत्र में ही नहीं, बंगला, गुजराती आदि में भी प्राप्त होते हैं। अतः यह सरलतापूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है कि जैन कवियों ने बारहमासा लोक परम्परा से ही ग्रहण किया होगा।

संभवतः मलिक मुहम्मद जायसी ने भी लोक परम्परा से ही बारहमासा लिया होगा। अवधी और भोजपुरी क्षेत्र में आज भी बारहमासे प्रचलित हैं। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने ग्रामगीत में बारहमासों का संग्रह किया है जिसमें चार बारहमासे आषाढ से प्रारम्भ होते हैं। दो बारहमासे कार्तिक से प्रारम्भ होते हैं और एक चैत से प्रारम्भ होता

---

१. वाल्मीकि रामायण, अनु० द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी, इलाहाबाद, सन् १६४६ से १६५२ तक। यह १० भागों में है।

२. कालिदास-ग्रन्थावली, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, संवत् २००१, पृ० ३१२।

३. माघकृत शिशुपालवध, महाकाव्य, अनुवादक—श्री रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री प्रयाग, सं० २००६; पृ० १४८ से १५४ तक।

४ संदेशरासक तृतीय प्रकरण, छंद १३० तक हिन्दी ग्रंथागार, बम्बई

प्रथम

है।[1] डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने 'भोजपुरी ग्रामगीत' के अन्तर्गत १५ बारहमासों को संगृहीत किया है, जिनमें आठ बारहमासे आषाढ़ से प्रारम्भ होते हैं।[2] इससे विदित होता है कि बारहमासा को आषाढ़ से प्रारम्भ करने की प्रवृत्ति लोककवियों मे अधिक रही है। जायसी ने भी आषाढ़ से बारहमासा प्रारम्भ कर कदाचित् अपनी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति का ही परिचय दिया है। कालिदास के यक्ष की तड़पन भी आषाढ़ में ही प्रारम्भ होती है। जायसी के पूर्व के किसी फ़ारसी कवि ने बारहमासा का चित्रण नही किया है। निज़ामी और जामी तो अभारतीय कवि थे, भारतीय कवि अमीर खुसरो ने भी ऋतुवर्णन के अन्तर्गत न तो षट्ऋतुओं को ही लिया है और न बारहमासा को ही। सच बात तो यह है कि फ़ारसी कवियों में ऋतुवर्णन की कोई ऐसी परम्परा नहीं है जैसी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश या हिन्दी साहित्य में है। अतः सरलतापूर्वक कहा जा सकता है कि जायसी ने बारहमासा की परम्परा भारतीय लोकजीवन और साहित्य से ग्रहण की है[3] और वर्णन के विस्तार तथा कल्पनाओं में अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है।

---

१. कविता कौमुदी, तृतीय भाग, सम्पादक—पंडित रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ७०२ से ७१७ तक।

२. भोजपुरी ग्रामगीत—डा० कृष्णदेव उपाध्याय, इलाहाबाद (प्रथम संस्करण), पृ० १८० से २१३ तक।

३. बारहमासा के अध्ययन के लिए फ्रेंच विद्वान् सुश्री शार्लोत वॉदवील का ग्रंथ "**बारहमासा**" भी देखिए Barahmasa, Ch. Vaudeville Pondichery 1965

८

'पद्मावत' के ऐतिहासिक आधार की मीमांसा

मलिक मुहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' एक सरस सूफ़ी काव्य है। इसमें कवि ने इतिहास, कल्पना और लोकतत्त्वों को एक साथ जोड़कर अपनी कथा की रूपरेखा खड़ी की है। अतः इसकी ऐतिहासिकता पर एकदम प्रश्न-चिन्ह लगा देना समीचीन नहीं कहा जा सकता। 'पद्मावत' के ऐतिहासिक आधार को समझने के पूर्व उसकी कथा को संक्षेप में अङ्कित कर देना आवश्यक है। कथा का संक्षिप्त रूप जायसी ने स्वयं दे दिया है—

सिंहल दीप पदुमिनी रानी,
रतनसेन चितउर गढ़ आनी।
अलाउदीं दिल्ली सुलतानू,
राघौ चेतन कीन्ह बखानू।
सुना साहि गढ़ छेंका आई,
हिन्दु तुरकहि भई लराई।
आदि अंत जसि कथ्था अहै,
लिखि भाषा चौपाई कहै ॥[1]

"पद्मिनी सिंहल द्वीप की रानी थी। रत्नसेन उसे चित्तौड़ ले आये। दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन से राघवचेतन ने उसकी चर्चा की। उसने आकर गढ़ घेर लिया। हिन्दू-मुसलमानों में लड़ाई हुई।" इसी कथा को मलिक मुहम्मद जायसी ने विस्तार दिया है।

कथा के मुख्य रूप से दो खण्ड हैं। एक खण्ड वहाँ समाप्त होता है जब रत्नसेन अपनी विरह-विकल पत्नी नागमती को छोड़कर योगी बन जाता है और सिंहल जाकर पद्मिनी को हस्तगत करता है। इसके पूर्व पद्मावती का जन्म और उसके यौवन का अत्यन्त मनोहर चित्र जायसी ने अङ्कित किया है। पद्मावती सिंहल के राजा गंधर्वसेन के यहाँ उत्पन्न होती है। छठी रात को बड़ा समारोह होता है। पण्डित आते है। जन्मपत्री तैयार होती है। शनैः-शनैः समय व्यतीत होता चलता है। अब पद्मावती १२ वर्ष की हो गयी है—

बारह बरिस मांह भइ रानी,
राजैं सुना संजोग सयानी।
सात खण्ड धौराहर तासू,
पदुमिनि कहँ सो दीन्ह नेवासू।[1]

सात मंजिलों वाला घर पद्मावती को अलग से दिया जाता है। साथ मे सखियाँ भी रहने लगती हैं। भवन में एक तोता है—महापण्डित, शास्त्रवेत्ता और चतुर। पद्मावती से उसका बड़ा स्नेह है—

सुआ एक पदुमावति ठाऊँ,
महापण्डित हीरामनि नाऊँ।
दैयं दीन्ह पंखिहि असि जोती,
नैन रतन मुख मानिक मोती।
कंचन बरन सुआ अति लोना,
मानहु मिला सोहागहिं सोना।[2]

पद्मावती और तोता दोनों साथ रहते हैं। वेदशास्त्र का अध्ययन करते हैं। पद्मावती के पिता को सुग्गे से चिढ़ हो जाती है। वह उसको मार डालने का आदेश देता है। नाऊ बारी उसे महल में पकड़ने जाते हैं किन्तु पद्मावती उसे छिपा लेती है। पर बेचारा सुग्गा अब समझ जाता है कि यहाँ प्राण नहीं बचेंगे। पद्मावती से आज्ञा लेकर वह महल छोड़ देता है। वह रोती-बिलखती रह जाती है। वन में भटकते हुए सुग्गे को बहेलिया पकड़ता है और उसे एक ब्राह्मण के हाथ बेच देता है। सुग्गा चित्तौड़ पहुँच जाता है। रत्नसेन उसे पण्डित समझकर खरीद लेता है। रत्नसेन और पद्मावती का विवाह इस तोते के प्रयास से होता है।

कथा का द्वितीय खण्ड तब प्रारम्भ होता है जब चित्तौड़ से निर्वासित किये जाने पर एक ब्राह्मण राघवचेतन दिल्ली पहुँचता है और अलाउद्दीन खिल्जी से पद्मावती के रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा करता है। बादशाह पद्मावती को प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठता है। वह चित्तौड़ पर चढ़ाई करता है। रत्नसेन कैद कर दिल्ली लाया

---

१ पद्मावत छन्द ५४।
२ वही

जाता है। पद्मावती का जीवन दुख के काले बादलों से घिर जाता है। वह गोरा और बादल के घर जाती है और कहती है—

तुम्ह गोरा बादल खंभ दोऊ,
जसभारथ तुम्ह और न कोऊ।
दुख बिरिखा अब रहै न राखा,
मूल पतार सरग भइ साखा।[1]

गोरा-बादल सुनकर पसीज जाते हैं। दृगों में अश्रुकण छलछला आते हैं। पद्मावती को वे आश्वासन देते हैं। उसको धैर्य बँधाकर युद्ध की तैयारी करते हैं। पूरी तैयारी के साथ दिल्ली पहुँचते हैं और रत्नसेन को मुक्त कराते हैं। गोरा बादल के साथ रत्नसेन को चित्तौड़ वापस कर देता है। गोरा अपने साथ केवल एक हजार सैनिकों को रखकर शेष को बादल और रत्नसेन के साथ भेज देता है। अलाउद्दीन और गोरा की सेनाओं में भयङ्कर युद्ध होता है और गोरा को वीरगति प्राप्त होती है। बादल राजा रत्नसेन को लेकर आगे बढ़ जाता है और चित्तौड़ पहुँच जाता है। घर पर आते ही पद्मावती से सूचना मिलती है कि कुंभलनेर राजा देवपाल ने दूती भेज कर किस प्रकार कुदृष्टि का परिचय दिया? उसकी दुष्टता का बदला लेने के लिए रत्नसेन देवपाल पर आक्रमण करता है। वह घायल होता है। घर वापस होते समय उसकी मृत्यु हो जाती है। पद्मावती और नागमती दोनों पत्नियाँ शव के साथ सती हो जाती हैं। इसी बीच अलाउद्दीन की सेना दुर्ग पर आक्रमण करती है। किन्तु इसके पूर्व ही पद्मावती अग्नि की लपलपाती लपटों में अपने को होम कर चुकी थी। अला-उद्दीन को केवल निराशा ही हाथ लगती है। वह कह उठता है—"यह सारा संसार झूठा है।"

छार उठाइ लीन्हि एक मूँठी।
दीन्हि उड़ाइ परिथिमी झूँठी।।[2]

यह है पद्मावती की कथा का संक्षिप्त रूप। इस रूपरेखा के भीतर ही कवि ने कल्पना का गहरा रंग भर कर काव्य का ठाठ तैयार किया है।

ऐतिहासिकता पर विचार

पद्मावत के कथानक के पूर्वार्द्ध में कल्पना और लोकतत्त्वों की प्रचुरता है। पद्मिनी और हीरामन सुग्गा की कथा आज भी भोजपुरी तथा अवधी क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में प्रचलित है।[3] पर अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि लोक

---

१. **पद्मावत**, छन्द ६०९।

२. **वही**, छन्द ६५१।

३ **पद्मावत** पण्डित रामचन्द्र शुक्ल भूमिका (द्वि० सं०) संवत् १९९२ प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा काशी पृ० २६

कथा के रूप में हीरामन सुग्गा तथा पद्मिनी की जो कथा प्रचलित है वह 'पद्मावत' के पूर्व प्रचलित थी अथवा नहीं। शिष्ट साहित्य की चीजें भी लोक में आती रहती है अतः 'पद्मावत' के माध्यम से इस कथा का लोक में प्रचलित हो जाना असम्भव नही है। 'पद्मावत' में लोकतत्त्वों की प्रचुरता है। कथा के अनेक अभिप्राय या रूढ़ियाँ (Motifs) इसमें ऐसी मिलती हैं जिनका स्रोत लोक कथाओ में ढूँढ़ा जा सकता है। पक्षी को पण्डित मानना, उससे संदेश भिजवाना, नायिका अथवा नायक को अलौकिक शक्तियों द्वारा सहायता किया जाना, स्वप्न, चित्रदर्शन या श्रवण से प्रेम का प्रादुर्भाव होना, राक्षस आदि का प्रेमी के मार्ग में बाधक होना, शिव-पार्वती का आगमन, सिंहल तथा कदलीवन की चर्चा आदि लोक कथाओं की ऐसी रूढ़ियाँ हैं जिन पर अनेक कथानको की भित्ति खड़ी होती है। केवल यही एक पुष्ट आधार है जिसके सहारे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जायसी ने लोक कथा के आधार पर अपने कथानक का पूर्वांश निर्मित किया होगा।

कथा का उत्तरांश अधिक विवादास्पद है। पद्मिनी, रत्नसेन और अलाउद्दीन की कथा ऐतिहासिक है अथवा नहीं, इस प्रश्न को लेकर 'पद्मावत' के आलोचकों मे ही नहीं इतिहासकारों में भी मतभेद है। इतिहासकारों का एक वर्ग ऐसा है जो यह कहता है कि आइने-अकबरी, तारीखे-फरिश्ता आदि में पद्मिनी और अलाउद्दीन की जो कथा आती है वह पद्मावत से ग्रहण की गयी है।[1] अबुलफजल तथा फरिश्ता के युग में 'पद्मावत' का प्रचार हो गया था। शेरशाह के समय में 'पद्मावत' लिखा गया अतः अकबर तथा उसके परवर्ती इतिहासकारों की कृतियों में इस कथा का आ जाना असम्भव नहीं है। किन्तु समस्या यह है कि यदि 'पद्मावत' से ही इतिहासकारो ने पद्मिनी की कथा ली है तो उनमें परस्पर इतना अन्तर क्यों है ? जियाउद्दीन बरनी, अमीर खुसरो, एसामी आदि इस घटना का उल्लेख नही करते। इसी कारण इसकी ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है।

जियाउद्दीन बरनी 'तारीखे फ़ीरोजशाही' में केवल इतना ही कहता है—"सुलतान अलाउद्दीन ने पुनः शहर देहली से सेना लेकर चित्तौड़ पर चढ़ाई की। चित्तौड़ को घेर लिया और शीघ्रातिशीघ्र किले पर विजय प्राप्त करके घर लौट आया।"[2]

अमीर खुसरो अपने ग्रंथ 'खजाइनुल-फुतुह' में चित्तौड़ की विजय का विस्तृत विवरण देता है किन्तु उसमें भी पद्मिनी का कोई उल्लेख नहीं। वह कहता है—"सोमवार ८ जमादी उस्सानी ७०२ हिजरी (२८ जनवरी, १३०३) को सुलतान ने

१. हिस्ट्री आफ दी खल्जीज—डा० के० एस० लाल, इलाहाबाद, १९५० पृ० १२२—१२३।

२. देखिए, अतहर अब्बास रिजवी का हिन्दी अनुवाद, खल्जीकालीन भारत, अलीगढ़, १९५५, पृ० ७६

चित्तौड़ की विजय का दृढ़ संकल्प किया। देहली से झंडे के चांद निकल पड़े। शाही काला चत्र बादलों तक पहुँच रहा था। सुलतान सेना लेकर चित्तौड़ पर पहुँच गया। सेना के दोनों बाजुओं के लिए यह आदेश हुआ कि वे किले के दोनों ओर शिविर लगा दें। शाही सेना दो मास तक आक्रमण करती रही किन्तु विजय न प्राप्त हो सकी। चत्रवारी नामक पहाड़ी पर सुलतान अपना श्वेत चत्र सूर्य के समान लगाता और सेना का प्रबन्ध करता था। वह पूर्वी पहलवानों से लड़वाता रहा।[1] अमीर खुसरो इस आक्रमण के बारे में आगे लिखता है—

"सोमवार ११ मुहर्रम ७०३ हिजरी (२५ अगस्त, १३०३ ई०) को सुलतान उस किले में जहाँ चिड़िया भी प्रविष्ट न हो सकती थी, दाखिल हो गया। उसने राय को कोई हानि नहीं पहुँचाई किन्तु उसके क्रोध द्वारा ३० हजार हिन्दुओं की हत्या हो गयी। जब शाही क्रोध ने समस्त मुकद्दमों का विनाश कर दिया और उस भूमि से दुरंगी का अन्त कर दिया तो उसने कृषि करने वाली प्रजा को जिनमें कोई भी कांटा नहीं होता, प्रसन्न कर दिया। चित्तौड़ का नाम खिज्राबाद रखा गया। खिज्र खां के सिर पर लाल छत्र रखा गया। उसने ऐसे वस्त्र धारण किये जिनमें जवाहरात जड़े हुए थे। दो झंडे जो काले तथा हरे रंग के थे, लगाये गये। उसका दरबार दो रंग के दूरबाशों से सजाया गया। इस प्रकार वह खिज्र खाँ को सम्मानित करने के उपरान्त सीरी की ओर रवाना हो गया। २० मुहर्रम के पश्चात् शाही झण्डों को देहली की ओर प्रस्थान करने का आदेश दिया गया।"[2]

अमीर खुसरो के इस विवरण में पद्मिनी का कहीं उल्लेख नहीं है। वह रत्नसेन की भी कोई चर्चा नहीं करता किन्तु केवल इसी आधार पर कि तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकार एकदम मौन हैं, रत्नसेन, पद्मिनी और अलाउद्दीन की कथा को अनैतिहासिक कह देना समीचीन नहीं प्रतीत होता।

'आइने-अकबरी' में जहाँ यह कथा आती है वहाँ फजल यह कहता है कि "प्राचीन कथाकार ऐसा लिखते हैं"। फारसी से श्री एच० एस० जारेट का किया हुआ अनुवाद इस प्रकार है :—

"Ancient chroniclers record that Sultan Alauddin Khilji, king of Delhi had heard that Rawal Ratansi prince of Mewar possessed a most beautiful wife. He sent a demand of her and was refused upon which he had led an army to enforce compliance and laid seige to Chitor."[3]

---

१. खल्जीकालीन भारत (खजाइनुल फुतुह), पृ० १६० ।
२. खल्जीकालीन भारत,—अतहर अब्बास रिज्वी, पृ० १६०-१६१ ।
३ आइने अकबरी भाग २ अनुवादक एच० एस० जारेट एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, सन् १८६१, पृ० २६१

''प्राचीन कथाकारों ने लिखा है कि दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन ने यह सुना था कि मेवाड़ के राजा रतनसी की पत्नी अतीव सुन्दरी है। उसने उसकी मांग की किन्तु राजा ने इन्कार कर दिया। इस पर अपने आदेश का पालन कराने के लिए सेना सहित उसने चित्तौड़ कूच किया और घेरा डाला।''

'आइने अकबरी' तथा 'पद्मावत' की कथा में अनेक स्थानों पर भिन्नता है। इस कथा में रतनसी के मन्त्री पद्मिनी की ओर से एक जाली पत्र भी अलाउद्दीन के यहाँ भेजते हैं। 'आइने अकबरी' के अनुसार ७०० सैनिकों का दल स्त्री वेश मे अलाउद्दीन के शिविर में जाता है। इस प्रसंग का भी 'पद्मावत' से मेल नहीं बैठता। फजल के अनुसार गोरा-बादल दोनों युद्ध में मरते हैं और रतनसी को चित्तौड़ पहुँचा देने में सहायता करते हैं। बादशाह दिल्ली लौट आता है और फिर दूसरी बार उसकी इच्छा होती है कि हम चित्तौड़ पर हमला करें। रतनसी सन्धि करना चाहता है और चित्तौड़ से ७ कोस की दूरी पर मिलता है जहाँ उसकी हत्या कर दी जाती है।

'पद्मावत' में रत्नसेन कुंभलनेर के देवपाल से युद्ध में घायल होता है। चित्तौड़ वापस आने के पूर्व उसकी मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार अनेक बातों में हम 'आइने अकबरी' और 'पद्मावत' की कथा में अन्तर पाते हैं। ''प्राचीन कथाकारो ने लिखा है'' यह कथन भी इस बात का द्योतक है कि 'आइने अकबरी' की कथा किसी प्राचीन स्रोत से ली गई है। अकबर और शेरशाह के काल में इतना अन्तर नही है कि उसे प्राचीन कहा जाय।

फरिश्ता के इतिहास में जो कथा आती है उसके अनुसार ''राय रतनसेन की एक अतीव सुन्दरी लड़की पर अलाउद्दीन आकृष्ट हुआ। फरिश्ता के अनुसार रत्नसेन ने अपनी लड़की भेजने का निश्चय कर लिया था। किन्तु लड़की ने बड़ी चतुराई से कैद पिता को मुक्त कराया। फरिश्ता लिखता है कि लड़की स्वयं दिल्ली पहुँची और पिता को कैद से मुक्ति दिलायी।''[1]

कर्नल टाड ने तो अपने इतिहास में स्वयं कहा है ''भट्ट लोगों ने अपने ग्रन्थो में वर्णन किया है कि पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी। वह डाह या यश की प्राप्ति के लिए नहीं आया था।''[2]

'आइने अकबरी', 'तारीखे फरिश्ता' तथा टाड के इतिहास में जो उल्लेख मिलता मिलता है वह निश्चय ही 'पद्मावत' के स्रोत से नहीं आया है। इस कथा का स्रोत

१. 'तारीखे फरिश्ता' का ब्रिग्स द्वारा अनुवाद, हिस्ट्री आफ दी राइज आफ दी मोहम्मडन पावर, कलकत्ता, १६०८, भाग १, पृ० ३६२।
२ कर्नल टाड 'एनाल्स आफ का हिन्दी अनुवाद का इतिहास, —खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई, सवत् १६८२, पृ० १३६ १४१

अभी अन्धकार में प्रच्छन्न है। यदि अलाउद्दीन के समकालीन इतिहासकार इसकी चर्चा नहीं करते तो इस घटना को केवल इसी आधार पर अनैतिहासिक कह देना युक्ति-संगत नहीं।

'पद्मावत' के पूर्व के एक प्रेमाख्यान 'छिताई वार्ता' में भी एक प्रसंग आता है जिसमें अलाउद्दीन कहता है, "मैंने चित्तौड़ की पद्मिनी का उल्लेख सुना और रत्नसेन को कैद कर लाया जिसको बादल छुड़ा ले गया। यदि अब छिताई को नहीं प्राप्त कर लेता तो देवगिरि में जाकर मैं शीश दे दूँगा :—

यौं बोलै ढिल्ली को धनी,
मैं चीतौर सुनी पदमिनी।
बांध्यौ रतनसैनि मैं जाइ,
लै गौ बादिलु ताहि छिडाइ।
जौ अब के न छिताई लैंउ,
तौ निज सीसु देवगिरिहि देउं।
इतनी बात कहै यौं साहि,
क्या कीजै गढ़ देवगिरि ढाहि॥[1]

'छिताई वार्ता' के रचयिता नारायणदास तथा रत्नरंग ने अलाउद्दीन खिल्जी तथा देवगिरि के राजा रामदेव की लड़की छिताई को आधार बनाकर अपना काव्य लिखा है। इसका रचनाकाल संवत् १५०० से सं० १५५० (१४४३ ई०—१४७३ ई०) के बीच है।[2] 'पद्मावत' का रचनाकाल ९४७ हिजरी अर्थात् १५४० ई० स्वीकार किया जाता

१. नारायण दास कृत, छिताईवार्ता, सम्पादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०१५, पृ० ४६-४७।

२. (अ) छिताई वार्ता, संपादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, काशी, संवत् २०१५ भूमिका, पृष्ठ २६। छिताई वार्ता के मूल लेखक नारायणदास हैं। इसमें श्री रत्नरंग तथा देवचन्द ने पूरक कृतित्व किया। डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'छिताई वार्ता' नारायणदास और रत्नरंग दोनों की सम्मिलित कृति है। इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में डा० माताप्रसाद गुप्त का मत इस प्रकार है—"इस प्रकार नारायणदास की रचना का समय संवत् १५०० के लगभग और रत्नरंग की रचना का समय संवत् १५५० के लगभग मान लेने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए, इतना तो अभी भी प्राप्त सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है।"

(आ) श्री हरिहरनिवास द्विवेदी के अनुसार नारायणदास की रचना का काल सवत् १५८३ से पुव होना चाहिए श्री हरिहरनिवास द्विवेदी का मत है, इन पंक्तियों से प्रकट है कि कवि कहीं से मालव के

है। अतः यह प्रश्न विचारणीय है कि 'पद्मावत' के पूर्व की इस रचना में पद्मिनी और रत्नसेन का उल्लेख किस स्रोत से आया ? 'छिताई वार्ता' के पीछे इतिहास के सबल आधार हैं और यह एक स्वतंत्र परम्परा का काव्य है। अतः अनुमान किया जा सकता है कि यह कथा किसी हिन्दू स्रोत से आयी होगी। इतिहास के इस प्रसङ्ग को और रंगीन बना दिया गया हो तो यह असंभव नहीं है। यह प्रसङ्ग अनैतिहासिक है, यह कथन अभी पर्याप्त प्रमाणों की अपेक्षा करता है।[1]

सारंगपुर नगर में पहुँचा और यहाँ १५८३ विक्रमी (सन् १५२६ ई०) को विष्णु मन्दिर में उसने पहले लिखे हुए 'छिताई चरित' को सुनाना प्रारम्भ किया।

—(छिताई चरित, ग्वालियर, सन् १९६०, भूमिका, पृष्ठ १९)।

१. पटना से प्रकाशित "परिषद् पत्रिका" के वर्ष ५, अंक ३, अक्तूबर १९६५, पृ० १०५-११०, में श्री गणेश चौबे का एक लेख "पद्मावत की मूल कथा" प्रकाशित हुआ है उसमें उन्होंने पद्मावत की भोजपुरी लोक कथा तथा पद्मावत की कथा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है और दोनों कथाओं की समानताओं पर विचार किया है 'पद्मावत' के अध्येता के लिए यह लेख उपयोगी है

९

मंझन की जीवनी पर नया प्रकाश

'मधुमालती' के रचयिता मंझन के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में प्रस्तुत लेखक ने सन् १९५९ में एक लेख लिखा था[1] जिसमें मंझन को चुनार का निवासी बताया था। मंझन ने मधुमालती में चर्नाढी[2] शब्द का प्रयोग किया है जो चुनार के लिए ही आया है। इसी आधार पर मेरी धारणा बनी थी कि मंझन चुनार के निवासी होंगे। किन्तु अब मंझन के जीवन के सम्बन्ध में नये तथ्य प्रकाश में आये हैं। यह बात अवश्य है कि मंझन चुनार में रहे थे और अपने गुरु शेख मुहम्मद गौस से दीक्षा ली थी किन्तु उनकी जन्मभूमि सम्भवतः लखनौती थी।[3] सूफ़ियों की शत्तारी शाखा के एक प्रमुख लेखक गौसी शत्तारी ने 'गुलज़ारे अबरार' नाम की एक पुस्तक ९९८ हिजरी अर्थात् १५९० ईस्वी में प्रारम्भ की और १०२२ हिजरी अर्थात् १६१३ ईस्वी में पूर्ण की।[4]

---

१. त्रिपथगा, सम्पादक—काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर', लखनऊ १९५९, पृ० १११-१७

२. गढ़ अनूप बसि नगरि चर्नाढी,
कलिजुग महं लंका सों गाढी।
पुरुब दिसा जरगी फिरि आई,
उतर पछिम गंग गढ़ खाई। —मंझनकृत 'मधुमालती', सम्पादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, इलाहाबाद, सन् १९६१, छंद, ३४

३. मुग़ल कालीन भारत, सैयद अत्तर अब्बास रिजवी, भाग २, अलीगढ़ १९६२, पृ० ४९२

४. वही—पृ० ३३

इसमें शत्तारी शाखा का वर्णन विस्तार से किया गया है और उसमें शेखमुहम्मद ग़ौस के अतिरिक्त मंझन के जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। 'गुलज़ारे-अबरार' फ़ारसी का एक ग्रन्थ है जिसमें तत्कालीन सूफ़ी साधकों का अच्छा परिचय मिलता है, इसकी एक प्रति अलीगढ़ विश्वविद्यालय की फ़ारसी पाण्डुलिपियों के संग्रहालय (हबीबगंज संग्रह) मे वर्तमान है। अतहर अब्बास रिज़वी ने 'मुग़ल कालीन भारत' के भाग २ में 'गुलजारे-अबरार' में वर्णित मंझन के जीवनवृत्त को प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त अलीगढ़ विश्वविद्यालय में सन् १९६६ में क़ाज़ी मुइनुद्दीन अहमद ने शत्तारी शाखा पर पी० एच डी० की उपाधि ली। उसमें भी मंझन के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी के लिए इन दोनों ग्रन्थों की उपयोगिता इसलिए है कि इनसे मझन के जीवनवृत्त पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

मंझन का जन्म स्थान—मंझन की जन्म-भूमि लखनौती थी, इसका उल्लेख किया जा चुका है। गौसी शत्तारी ने 'गुलजारे अबरार' में उल्लेख किया है "जिस वर्ष शेरखाँ सूर ने रायसेन के किले को विजय करके उसका नाम इस्लामाबाद रखा तो वे वहाँ 'शेखुल-इस्लाम' रहे और वहीं अपनी एक खानकाह स्थापित की। जब रायसेन पर दुष्ट काफिरों का अधिकार हो गया तो वे वहाँ से सारंगपुर (मालवा) चले गये।"[1] मंझन का सम्बन्ध शेरशाह के पुत्र और उत्तराधिकारी इस्लामशाह से भी रहा। जहाँगीर काल के एक इतिहासकार मुहम्मद कबीर ने 'अफसानाए बादशाहान' में यह सूचना दी है :

"इस्लामशाह के साथ धर्माचार्य (उलमा) विद्वान (फ़ुजलः) और कवि (शुअरा) रहा करते थे।………उनमें मधुमालती के रचयिता मीर सैयद मंझन, शाह मुहम्मद फरमूली उनके छोटे भाई मूसन और सूरदास प्रभृति विद्वान् रहा करते थे और उनमे अरबी, फ़ारसी और हिन्दवी की कविताएँ पढ़ी जाती थीं।…'अफसानाए-बादशाहान" में अनेक प्रसंगों में मंझन को मीर सैयद मंझन राजगिरी कहा गया है। हो सकता है, राजगिरी का अर्थ "राजगृह का" हो।[2]

मालवा में मृत्यु—मंझन कुछ दिनों सारंगपुर के समीप आश्ता नामक स्थान पर रहे फिर १००१ हिजरी में पुनः सारंगपुर वापिस आ गये। उस समय उनकी अवस्था ८० वर्ष की हो गयी थी। १००१ हिजरी (जनवरी सन् १५९३) में ही मंझन की मृत्यु हुई।[3]

---

१. **गौसी** कृत गुलज़ारे अबरार, **मुग़ल कालीन** भारत, हुमायूँ, भाग २, सैयद अतहर अब्बास रिज़वी (अनुवादक), सन् १९६२, पृ० ४९३।

२. देखिये, कुतुबनकृत मिरगावती, सम्पादक डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, विश्व-विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९६७, पृ० ३९-४०।

३ **मुग़ल कालीन भारत भाग २ पृ० ४९३**

मंझन का परिवार—मंझन के पिता का नाम अब्दुल्लाह् काजी खैरुद्दीन शरीफ था। उनके पिता काजी ताजुद्दीन नहवी शेख महमूद जिन्दापोश कशी इश्की के वंश के थे। उनकी खानकाह् इस्लाम के नगर बल्ख में थी किन्तु बाद में हिन्दुस्तान में आ गये और लखनौती नगर में बस गये।[१] मंझन की माँ दिल्ली की थीं और उनके नाना काजी समाउद्दीन देहलवी थे[२] जो उस समय के सम्मानित व्यक्ति थे तथा उन्हें कुतलून खाँ की उपाधि प्राप्त थी। मंझन के एक पुत्र उसमान का भी उल्लेख मिलता है।[3]

मंझन और अकबर—९८६ हिजरी में अकबर मालवा पहुँचा तब मंझन ने भी उससे भेंट की।[४] 'गुलज़ारे-अबरार' का लेखक ग़ौसी शत्तारी भी उस समय मंझन की सेवा में पहुँचा था।[५] ग़ौसी शत्तारी जब 'गुलज़ारे-अबरार' के लिए सामग्री का संकलन कर रहा था तब उसने मंझन के पुत्र उसमान से भी सन् १६०५ में भेंट की थी।[६] उसमान स्वयं सूफ़ी सन्तों के सम्बन्ध में काफी जानकार थे। उसी वर्ष ग़ौसी ने उस खिर्के का भी दर्शन किया जिसे शेख मुहम्मद ग़ौस ने अपने प्रिय शिष्य मंझन को दिया था[७] और जो उनकी मृत्यु के पश्चात् भी उसमान के पास सुरक्षित था।

मंझन और शेख मुहम्मद ग़ौस—मंझन के प्रारम्भिक गुरु सैयद ताजुद्दीन बुखारी थे जो भारत में आकर स्वयं शेख मुहम्मद ग़ौस के शिष्य बन गए तथा शत्तारी सिलसिले में सम्मिलित हो गये। सैयद ताजुद्दीन बुखारी ने मंझन की भी सिफारिश शेख मुहम्मद ग़ौस से की और शेख ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया। मंझन ने अपने गुरु गौस का उल्लेख बड़े सम्मान के साथ किया है :—

> सेख मुहम्मद पीरु अपारा,
> सात समुंद नाउ कंडहारा।[८]

शेख मुहम्मद ग़ौस के सम्बन्ध में प्रस्तुत लेखक ने अन्यत्र विस्तार से विचार

---

१. वही, पृ० ४९२।
२. **हिस्ट्री आफ दी शत्तारी सिलसिला**—काज़ी मुइनुद्दीन अहमद पृ० ८९ (१९६२ में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)।
३. वही, पृ० ९१।
४. **गुलज़ारे-अबरार**—ग़ौसी शत्तारी कृत, पाण्डुलिपि अलीगढ़ विश्वविद्यालय, हबीबगंज संग्रह, पाण्डुलिपि की क्रम संख्या २५८,४१—५१। इस पाण्डुलिपि की १८२ क्रम संख्या में मंझन का परिचय दिया गया है।
५ **हिस्ट्री आफ दी शत्तारी सिलसिला**—काजी मुइनुद्दीन अहमद पृ० ९१।
६. **मुग़लकालीन भारत**, भाग २, अतहर अब्बास रिज़वी, पृ० ४९२।
७. वही, पृ० ४९२।
८ **मधुमालती** डा० माता प्रसाद गुप्त, छन्द १५।१

किया है।[1] अतः उसका पिष्टपेषण अनावश्यक होगा। फिर भी इस स्थान पर इतना उल्लेख आवश्यक है कि मंझन ने अपने गुरु शेख मुहम्मद ग़ौस की प्रसिद्ध कृति 'जवाहिरे-खम्सा' का अध्ययन उन्हीं की देख-रेख में किया[2] और उसी पर अपना जीवन आधारित किया।

ग़ौसी कृत 'गुलज़ारे-अबरार' में यह भी उल्लेख मिलता है कि मंझन शेख अहमदी के सहपाठी थे जो अपने समय के एक बड़े विद्वान् और प्रगल्भ वक्ता थे।[3] ग़ौसी यह भी सूचित करता है कि मंझन बहुत बड़े विद्वान् थे। यहाँ तक कि जब वह सारंगपुर (मालवा) पहुँचे तो उनके पुस्तकालय के समस्त ग्रंथ दुर्घटना के कारण नष्ट हो गये थे अतः उन्होंने प्रत्येक प्रसिद्ध ग्रन्थ की अपनी स्मृति के अनुसार टिप्पणियाँ तैयार की और अपने शिष्यों को उनसे लाभान्वित किया। उनके आ जाने के कारण सारंगपुर को शीराज के समान प्रसिद्धि मिल गयी।[4]

इन नवीन तथ्यों के आलोक में मंझन की कृति 'मधुमालती' पर विचार करने में सहायता मिल सकती है और आशा है कि यदि लखनौती के सांस्कृतिक केन्द्र का अध्ययन किया जाय तो सूफ़ी काव्य के अध्ययन को नयी दिशा मिल सकेगी, क्योंकि लखनौती गौड़ देश में था। बंगाल मे उत्पन्न कवि अवधी में कैसे काव्य लिख सका? यह प्रश्न अवश्य विचारणीय रह जाता है।

---

१. (क) देखिये इसी पुस्तक का लेख, संख्या ११—'मंझन के गुरु शेख मुहम्मद ग़ौस।'
   (ख) अलीगढ़ विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग द्वारा प्रकाशित मैडीवियल इण्डिया क्वाटर्ली के भाग १, अंक २, अक्टूबर १९५० में प्रकाशित खलीक अहमद निज़ामी का लेख 'दी शत्तारी सैंट्स एण्ड देयर एटीच्यूड टूवार्डस दी स्टेट, इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है।
२. मुग़ल कालीन भारत, भाग २, पृ० ४९२ 'जवाहिरे-खम्सा' की एक प्रति अलीगढ़ विश्वविद्यालय के मुनीर आलम संग्रह में वर्तमान है (४१–५)।
३ मुग़ल कालीन भारत, भाग २, पृ० ४९३।
४ हिस्ट्री आफ दी शत्तारी सिलसिला, पृ० ९१।

१०

मंझन का साधना-स्थल चुनार[1]

मधुमालती के रचयिता तथा सूफ़ी प्रेमाख्यानक परम्परा के कवि मंझन के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों को बहुत कम जानकारी रही है। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने मंझन के संबंध में केवल इतना उल्लेख किया है—"इनके संबंध मे अभी कुछ ज्ञात नहीं है।"[2]

डाक्टर रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' मे लिखा है—

"इसकी (मधुमालती) केवल एक प्रति रामपुर स्टेट लायब्रेरी में प्राप्त हो सकी है। इसके लेखक मंझन थे। उन्होंने १५४५ ई० में इसकी रचना की।"[3]

डाक्टर कमल कुलश्रेष्ठ ने 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य' में बताया है कि "सलीम शाह सूर के राज्यकाल में सन् ९५२ हिजरी में मनोहर मधुमालती की कथा मंझन ने लिखी थी।"[4]

पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने रामपुर की एक प्रति तथा हिन्दी प्रचारक काशी से प्रकाशित 'मधुमालती' के आधार पर मंझन के सम्बन्ध में बताया है—"फिर

---

१. यह लेख मूलरूप में १९५९ में लिखा गया था, यह त्रिपथगा में "मंझन का जीवनवृत्त" नाम से छपा था। अब इसमें संशोधन किया गया है। इसके प्रकाशन के बाद मंझन के जीवन के सम्बन्ध में विद्वानों की काफी मान्यतायें बदलीं और उन्होंने अपने विचारों में परिवर्तन किए। डा० माताप्रसाद गुप्त ने भी मेरे मत की पुष्टि अपनी 'मधुमालती' में की है। देखिए, भूमिका पृष्ठ १४ से १६ तक।

२. **हिन्दी साहित्य का इतिहास**—पं० रामचन्द्र शुक्ल, काशी (संवत् २०१९), पृष्ठ ९५।

३ **हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, इलाहाबाद सन १९४८ पृ० ४४०**

भी मंझन के जन्म स्थान आदि का स्पष्ट परिचय नहीं मिलता और न उसके पिता अथवा मित्रादि की ओर किया गया ऐसा कोई संकेत ही मिलता है, जिसके आधार पर उनके सामाजिक जीवन पर भी कुछ प्रकाश पड़ सके। एक स्थल पर उक्त रामपुर की प्रति की इस रचना की दो पंक्तियाँ इस प्रकार की दी गयी मिलती हैं—

गढ़ अनूप बस नगर चनाढ़ी कलजुग मंह लंका सों गाढ़ी।
पुरब दिशा जाकी बहराई, उत्तर पछिम लंका गढ़ खाई।

जिनसे केवल इतना ही ज्ञान पड़ता है कि यदि यह कवि के जन्म व वासस्थान की ओर संकेत है तो वह संभवतः चनाढ़ी नाम का होगा और खाइयों से घिरी सुदृढ़ लंका सा वह दुर्जेय भी रहा होगा।"[१]

डा० सरला शुक्ल ने 'हिन्दी सूफ़ी कवि और काव्य' में मंझन के संबंध मे लिखा है—"मंझन कवि के निवास-स्थान के बारे में एक स्थल पर संकेत मिलता है कि अनूपगढ़ नामक कोई नगर उसका निवास-स्थान था जो सम्भवतः गढ़ी की भाँति सुरक्षित एवं दृढ़ था, जिसकी पूर्व दिशा में बहराइच नगर है तथा उत्तर-पश्चिम मे लंका गढ़ के सदृश सुदृढ़ खाई है।"[२]

इन उल्लेखों से हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते। आचार्य चतुर्वेदी ने यह अनुमान लगाया है कि कोई चनाढ़ी नगर मंझन का जन्म या वासस्थान हो सकता है। इसका खण्डन श्री शिवगोपाल मिश्र ने 'मंझन कृत मधुमालती' के प्रथम संस्करण (१९५७ ई०) की भूमिका में किया है। उन्होंने लिखा है—"अतः चौबेजी का अनुमान है कि 'ढ़ी' से अन्त होने वाला कोई नगर मंझन की जन्म-भूमि हो सकता है। चनाढ़ी नामक नगर के रूप में एकडला की प्रति में वर्तमान है, किन्तु यह मंझन की जन्मभूमि न होकर सुरजभानु की राजधानी है। उक्त प्रति में चनाढ़ी स्पष्ट शब्दों मे लिखा है किन्तु इसकी स्थिति कहाँ है? किसी भौगोलिक नगर के रूप में आसानी से नहीं ढूँढ निकाली जा सकती। वैसे यह गंगा के किनारे का ही नगर होना चाहिये (सम्भवतः चुनारगढ़ ही हो) क्योंकि गंगा का पानी किले के भीतर भरा रहता था किन्तु कथा किसी ऐतिहासिक राजा का चित्रण न करके कल्पना मात्र है। अतः चनाढ़ी की स्थिति का पता लगाने के लिए आकाश-पाताल बाँधने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।"[३]

---

१. **सूफ़ी काव्य संग्रह**, पं० परशुराम चतुर्वेदी, इलाहाबाद, शक संवत् १८८० (तृ० सं०), पृ० १३६।

२. **जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफ़ी कवि और काव्य**—डा० सरला शुक्ल, लखनऊ, संवत् २०१३, पृ० ३३५-३३६।

३. मंझनकृत मधुमालती, डा० शिवगोपाल मिश्र, भूमिका, पृ० २०, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, काशी, सन् १९५७। इसका द्वितीय संस्करण (१९६५ ई०) में प्रकाशित हुआ है और उसमें उन्होंने अपना पूर्व विचार बदल दिया है, देखिए पृ० १० ११

डा० मिश्र ने चनाँढ़ी को मंझन की जन्म-भूमि न मानकर कथा के नायक मनोहर के पिता सुरजभानु की राजधानी स्वीकार की है। उन्होंने चनाँढ़ी की भौगोलिकता में संदेह किया है।

एकडला की प्रति के आधार पर सम्पादित डाक्टर मिश्र की 'मंझनकृत मधुमालती' के निकल जाने पर ग्वालियर के श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने 'भारती' में एक लेख लिखा जिसमें यह मत व्यक्त किया कि मंझन ग्वालियर के रहने वाले थे। श्री द्विवेदी ने लिखा है—"गाजीपुर ग्राम के पीर निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा में ग़ौस मुहम्मद थे और उस स्थान से ग्वालियर पधारे थे। उनके शिष्य मझन ने जब अपने इस प्रसिद्ध गुरु का नाम दे दिया और उसके चरणों में बैठकर ज्ञान प्राप्त करने की बात लिख दी तब फिर उसे अनूपगढ़ का तथा उसकी चनाँढ़ी मे बसे नगर का नाम देना आवश्यक न था।

ऊपर के विवेचन की पृष्ठभूमि में यदि उस गढ़ अनूप का मंझन का वर्णन पढ़ा जाय तब यह संदेह नहीं रहता कि वह ग्वालियर गढ़ का वर्णन कर रहा है। जहाँ वह अपने पीर शेख मुहम्मद के निर्देशन में आत्मशुद्धि और आत्मचिन्तन कर रहा था।

"तात्पर्य यह है कि ग्वालियर गढ़ की छाया में शेख ग़ौस मुहम्मद के आश्रय मे मलिक मंझन के (हिजरी सन् ९५२ में सन् १४४५) चित्त में यह अभिलाखा उपजी थी कि—कथा एक बांधऊं रस भाखा।"[1]

श्री द्विवेदी ने केवल इस आधार पर कि मुहम्मद गौस मंझन के गुरु थे, वह ग्वालियर चले गये थे। अतः मंझन भी वहीं के थे, ऐसा मान लिया है।

मंझन ने गढ़ का बखान करते हुए 'मधुमालती' में लिखा है :—

गढ़ अनूप बस नगरि चनाँढ़ी। कलिजुग महं लंका सों गाढ़ी।
पुरुब दिसा जरगी फिरि आई। उतर पछिम गंग गढ़ खाई।
देखे बनँ जाइ नहिं कही। गढ़ भीतर गंगा चलि बही।
साहि सहस जौ लागहिं आई। जांहि हारि सिर ठेंगा खाई।
ऊपर छाजा अनवन भाँती। हेठ बही सुरसरि सरसाती।
नगरि अनूप सोहावनि औगढ़ विखम अगंम।
बरबस हाथ न आवँ बिनु जस पुब्ब करंम।[2]

---

१. मंझन की मधुमालती, भारती पत्रिका, ग्वालियर—श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने कृपापूर्वक इसका एक रिप्रिंट मुझे १९५९ में भेजा था किन्तु उसमें प्रकाशन तिथि नहीं दी गयी है।

२ डा० गुप्त द्वारा सम्पादित मधुमालती, ११६ छन्द ३४

मंझन ने चर्नाढी के अनूपगढ़ की चर्चा की है। वह गढ़ ऐसा है जो दुर्जेय है। इसके पूर्व 'जरगो' फिरकर आयी है। उत्तर पश्चिम गंगा का खड्ड है। गढ़ के भीतर गंगा जल रहता है।

यदि मिर्जापुर जिले के चुनारगढ़ का हम निरीक्षण करें तो वहाँ ये सारी बातें मिल जाती हैं। इसके पूर्व में आज भी जरगो नदी विद्यमान है। गढ़ के उत्तर-पश्चिम में गंगा नदी है, खड्ड भी हैं। चुनारगढ़ मुस्लिम युग में दुर्जेय गढ़ समझा जाता रहा है। सोलहवीं शताब्दी में चुनार की काफी महत्ता थी। बाबर जौनपुर के अफगानों को कुचलने के लिये सन् १५२९ फरवरी के मध्य में यहाँ स्वयं आया था।[1] 'हुमायूँनामा' में गुलबदन बेगम ने लिखा है कि फिरदौसी समकानी की मृत्यु के ६ महीने बाद बब्बन और बायजीद गौड़ की ओर आगे बढ़े। यह समाचार सुनकर बादशाह हुमायूं आगरे से उधर चले और बब्बन तथा बायजीद को परास्त कर चुनार आये जिस पर अधिकार कर आगे पहुँचे।[2] इसके बाद चुनार शेरशाह के कब्जे में आया।[3] जब अकबर सम्राट हुआ, चुनार अकबर के अधीन हुआ।

अकबर के समय तक चुनार के दो नाम प्रचलित थे। चरणाद्रि तथा चनाढ। संस्कृत स्रोतों में चरणाद्रि आता है। अकबर के समय में गौड़ीय महाकवि श्री चन्द्रशेखर ने राजा सुर्जन के राजाश्रय में 'सुर्जनचरित महाकाव्यम्' लिखा। हाड़ावंश के सुर्जनराय ने रणथम्भौर अकबर को सौंप दिया था और उससे सन्धि कर ली थी। इसका उल्लेख 'आइनेअकबरी' में भी आता है। अकबर ने उन्हें पहले गढ़-करना फिर चुनार का प्रशासक बनाया।[4] 'सुर्जन चरित' महाकाव्य में भी यह उल्लेख आया है कि राय सुर्जन को काशी राज्य मिला था और उनकी मृत्यु भी वहीं हुई थी। मृत्यु के तुरन्त बाद उनके पुत्र भोज को उत्तराधिकार मिला। काव्य के २०वें अध्याय मे यह उल्लेख आता है कि वृन्दावती के राजा भोज चरणाद्रि में रहकर सुशासन कर रहे हैं :—

> इत्थं सोऽवहितो रणे वितरणे सम्यक् प्रजापालने,
> लक्ष्मीमुज्ज्वलयन् कुल स्थितिकरीं कीर्तिञ्च जंघालयन्।
> दिल्लीशेन पुरस्कृतः परिवृत्तो रत्नादिभिर्नन्दनै,
> रह्मास्ते चरणाद्रि माहत बुधो वृन्दावती नायकः ॥[5]

---

१. **मेम्वायर्स आफ बाबर**—अनु० जानलीडेन विलियम तथा एर्सकाइन आदि लन्दन, १८२६, पृ० ४०५

२. **हुमायूँनामा**, गुलबदन बेगम अनु० श्री ब्रजरत्नदास, काशी, सम्वत् २००८, पृ० ३७।

३. **राइज आफ मोहम्मडन पावर**—ब्रिग्स द्वारा फरिश्ता के इतिहास का अनुवाद द्वि० भाग (प्रथम संस्करण) कलकत्ता, १९०९ ई०, पृ० ११०

४. अबुलफजलकृत **आइनेअकबरी**, अनुवाद ब्लाचमैन, कलकत्ता, १८७१, पृ० ४०९।

५. महाकवि चन्द्रशेखर विरचितम् **सुर्जनचरित्र महाकाव्यम्**, सम्पादक चन्द्रधर शर्मा हिन्दू [illegible] काशी १९५२ ई० पृ० २३१।

इस प्रकार रण में, दान देने में, सम्यक् रूप में प्रजा-पालन करने में तत्पर लक्ष्मी को उज्जवल करते हुए तथा कुल की अचल कीर्ति कायम रखते हुए वृन्दावती के राजा भोज चरणाद्रि में बैठकर शासन चला रहे हैं। दिल्ली के सम्राट अकबर ने उन्हे पुरस्कृत किया है वे धनधान्य से परिपूर्ण हैं तथा विद्वानों का आदर करते हैं।

इसका मुस्लिम काल में एक रूप चनांढ भी रहा होगा। क्योंकि फारसी ग्रन्थों मे चनाध रूप मिलता है।[1] फारसी में उर्दू का 'डाल' शब्द नहीं है इसीलिए 'डलमऊ' को भी फारसी में 'दलमऊ' लिखा जाता है। फारसी में चनाढ़ लिखने के लिए 'चनादह्' या 'चनाध' लिखा गया होगा इसीलिए 'हुमायू नामा', 'आइनेअकबरी' तथा 'अकबर-नामा' आदि में चुनार के लिए चनादह् या चनाध (चनाढ़) शब्द आता है। अंग्रेजी अनुवादकों ने उसको या तो चुनार कर दिया है अथवा चनाध (चनादह्) ही रहने दिया है।

मंझन ने अपने समय में लोक-प्रचलित रूप चनाढ़ को ही ग्रहण किया। गाढ़ी से तुक मिलाने के लिए उसका चनाढ़ी हो जाना सम्भव है। अतः मंझन मियाँ ने चुनार के गढ़ का वर्णन किया है। इसमें सन्देह नहीं रह जाता। चुनारगढ़ चरण के आकार की एक छोटी पर्वत श्रेणी पर स्थित भी है।

चुनार के विभिन्न प्रकार के लोगों का भी वर्णन मंझन ने किया है—

गढ़ सुहाव गढ़पति सुर-ग्यानी, नगरलोक सभ सुखी नियानी।
सभ सुर हरी भगत औ ग्यानी, आनन्दी पर दुखी बिनानी।
दाता औ दयाल धरमिस्टा, सभै पेमरस लीन गरिस्टा।
भागिवंत भोगी सभ लोगा, औ सभ कहं कुलवंत संजोगा।
मोहि अस्तुति मुँह कही न जाई, जानु सरग भुइं छात्रा आई।
खोरि खोरि सभ घर घर, नगर आनन्द हुलास।
कलिजुग महँ जस प्रिथिमी, उतरि बसी कबिलास ॥[2]

मंझन ने अपना काव्य ९५२ हिजरी में लिखा—

सन नौ सै बावन जब भए, सती पुरुख कलि परिहरि गए।
तब हम जिय उपजी अभिलाखा, कथा एक बांधउं रस भाखा।[3]

सन् ९५२ हिजरी में ही शेरशाह की मृत्यु हुई। उसी वर्ष उसका एक लड़का जलाल खां कालिंजर में तख्तनशीन हुआ, उसका नाम ही सलीमशाह हुआ।[4] मंझन ने अन्य सूफ़ी कवियों की भाँति शाहे वक्त की प्रशंसा की है—

---

१. देखिए **आइनेअकबरी**, सम्पादक ब्लाचमैन, प्रकाशक एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, सन् १८७१, पृ० ४२९
२. **'मधुमालती'** डा० माताप्रसाद गुप्त, इलाहाबाद, १९६१, छन्द ३५
३. **'मधुमालती'**—वही, छन्द ३९
४ तारीखे फरिश्ता का ब्रिग्स द्वारा अनुवाद **हिस्ट्री आफ दी राइज आफ द मुहम्मडन पावर'** (द्वितीय भाग) पृ० १२६।

साहि सलेम जगत भा भारी,
जेइं भूंजी बर मेदिनि सारी।
जौ रे कोंपि पैरी पां चापैं,
इंद्र कर इंद्रासन कांपै।
नौ खंड सात दीप सभ ठाऊं,
भएउ भरम अति क्रित गा नाऊं।
अंतरिख कर अस राज संभारा,
जग महं कोइ न रहा जुझारा।
दसहुँ दिसा मानी जग संका,
खरग झार भइ खरभरि लंका।
प्रिथिमीं पति गुन गाहक दस औ चारि निधान।
पर भुअ गंजन सापुरुस गरुव गरिस्ट सुजान ॥[1]

मंझन का सम्बन्ध सलीमशाह से था। इसका उल्लेख जहाँगीर काल के एक इतिहासकार मुहम्मद कबीर ने 'अफसानाए बादशाहान' में किया है। "इस्लामशाह के साथ 'मधुमालती' के रचयिता मीर सैयद मंझन, शाह मुहम्मद फरमूली, उनके छोटे भाई मूसन और सूरदास प्रभृति विद्वान् रहा करते थे।............'अफसानाए बादशाहान' की एक प्रति पटना के जायसवाल रिसर्च इन्स्टीट्यूट में सुरक्षित है।"[2]

मझन के गुरु शेख मुहम्मद गौस थे जिनका विस्तार से उल्लेख अन्यत्र हो चुका है।[3] उन्होंने अपने गुरु की काफी प्रशंसा की है।[4] वह शेख मुहम्मद ग़ौस से से चुनार में मिले थे। इसका उल्लेख 'गुलजारे अबरार' में शेख मुहम्मद ग़ौसी शत्तारी ने किया है।[5] उन्होंने अपने गुरु को प्रसिद्ध कृति 'जवाहिरे खम्सा' का अध्ययन उन्हीं की देख-रेख में किया और उसी पर अपने जीवन को आधारित किया।

---

१. मधुमालती, मंझनकृत डा० माताप्रसाद गुप्त, इलाहाबाद, सन् १९६१, छंद १०।
२. देखिए कुतुबन कृत मिरगावती, सम्पादक डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, वाराणसी १९६७, पृष्ठ ३९-४०।
३. देखिए—शेख मुहम्मद ग़ौस तथा शत्तारी सम्प्रदाय का दर्शन और मंझन।
४. 'मधुमालती'—डा० माताप्रसाद गुप्त छंद १४ से २१ तक।
५. मुग़ल कालीन भारत भाग २ (हुमायूँ) अतहर अब्बास रिजवी, अलीगढ़, १९६२ ई०, पृष्ठ ४९२

११

मंझन के गुरु शेख़ मुहम्मद ग़ौस

हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी के लिए शेख मुहम्मद ग़ौस का अध्ययन केवल इसीलिए नहीं आवश्यक है कि वह तानसेन के गुरु बताये जाते हैं बल्कि इसलिए भी कि वह सुप्रसिद्ध सूफी कवि मंझन के भी गुरु हैं। 'मधुमालती' में मंझन ने बड़े सम्मान के साथ मुहम्मद ग़ौस को स्मरण किया है और कहा है—"शेख मुहम्मद मेरे पीर हैं और सात समुद्र में पड़ी हुई नौका के मांझी हैं। उनके चरणों को स्मरण कर जो भी आता है उसे प्रथम दर्शन में ही सुख प्राप्त होता है। फिर वह दोनों जग की मनोकामनाओं को पूर्ण करते हैं और उनके चरणों के स्पर्श से पाप कट जाते हैं। ज्ञान को छोड़कर उनके मुख से और कोई बात नहीं निकलती है; वे चतुर्दश विद्याओं के मंत्र और सिद्धि के देने वाले हैं। वह हर्ष-विषाद से ऊपर उठ चुके हैं और सदैव लौ लगाये रहते हैं। जिस प्रकार पारस मणि के स्पर्श से ताम्र स्वर्ण हो जाता है उसी प्रकार शेख मुहम्मद ग़ौस के दर्शन से बिना साहस के मैंने सिद्धि प्राप्त की है।"

सेख मुहम्मद पीरु अपारा,
सात समुन्द नाउ कंडहारा।
सँवरि पाँउ जौ आवै कोई,
परथम मुख देखत सुख होई।
फुनि दुहुँ जग पूजै मन आसा,
परसत चरन पाप गा नासा।
ग्यान छाड़ि मुख और न बाता,
दस औ चारि मंत सिधि दाता।
बिसमौ हरख न घट महि लाहैं,
संतत रहहिं लीन लौ माहैं।

दाता औ गुन गाहक, गौस मुहम्मद पीर।
दुहुँ कुल निरमल सापुरुष गरुअ गरिष्ट गंभीर ॥[1]
जस पारस के परसत भीन हेम होइ जाइ।
तिमि मैं सेख मुहम्मद देखे बिनु साहस सिधि पाइ ॥[2]

मंझन ने गौस को परमतत्व का वेत्ता कहा है और बताया है कि वह मन के रहस्य को जानते हैं। "प्रगट रूप को तो सब देख लेते हैं पर गुप्त, अप्रकट स्वरूप को कम ही लोग जान पाते हैं। सृष्टि बनाने वाले महान् ईश्वर ने इस संसार को प्रकट और अप्रकट दो रूपों मे बनाया है, यह दोनों हैं। सृष्टि संसार के ठाकुर हैं, शेख मुहम्मद गौस (वह उसके प्रकट और गुप्त दोनों रूपों को जानते हैं)।"

परम तंत लौ लीन जो जानै,
सो मन के आखर पहिचानै।
मन के आखर बिखम अपारा,
गुरू होइ तौ लावै पारा।
चहै मन के आखर लखि आवै,
सहज सो आपु अपान गँवावै।
गुरू पीर चाहहु परसादा,
चीन्हहु मन हुतें छांड़ि बिबादा।
प्रगट कला सभ काहूँ देखा,
पै बिरला जन गुपुत सरेखा।
ये दोऊ विधि निरमये, सिस्टि राउ जग धीर।
इन्ह दूनौ सिध ऊपर, गौस मुहम्मद पीर ॥[3]

शेख मुहम्मद गौस मध्ययुगीन इतिहास के एक प्रभावशाली व्यक्तित्व हैं। 'आइने-अकबरी' 'मुंतखाबुत तवारीख' तथा हिन्दी की कुछ पुस्तकों में यत्र-तत्र उनकी चर्चा की गयी है। इन बिखरे हुए सूत्रों को बटोर कर यदि हम विचार करे तो उनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश पड़ सकता है।

दतिया के राजकीय पुस्तकालय में खड्गराय कृत 'गोपाचल आख्यान'[4] की एक प्रति सुरक्षित है। यह रचना सन् १७९४-९५ ई० की है। इसमें बताया गया है कि शेख मुहम्मद गौस गाजीपुर के कुम्हरगढ़ा गाँव से ग्वालियर में आये थे :—

१. मंझन कृत 'मधुमालती' संपादक डा० माताप्रसाद गुप्त, इलाहाबाद, १९६१ छंद १५,
२. मधुमालती छंद १६।
३. मधुमालती छंद १७।
४. 'गोपाचल आख्यान' से जो भी उद्धरण यहाँ दिए गए हैं, श्री हरिहर निवासी द्विवेदी द्वारा उतारी गयी प्रति से दिए गये हैं, लेखक इसलिए उनका आभारी है

पूरब गाजीपुर को ठाँऊ,
कुम्हरगडा ता गांवै नांऊ।
महमद गौस तहाँ तै आई,
रहे ग्वालियर में सुख पाई।

'गोपाचल आख्यान' में यह भी बताया गया है कि गौस को बाबर के समय आगरा आना पड़ा था :—

बरजि सेख बाबर अति दये,
आपुनि सेख आगरैं गये।
मिले सेख बाबर कौं जाई,
आपुनि साहि मिले सुख पाई।

बाबर शेख मुहम्मद गौस को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उनकी आज्ञा से ही बाबर ने हुमायूं को छत्र दिया :—

आपुनु साह बुलाये सेख,
महापीर पीरनि मत लेख।
हिरदै साहि पीर करि गनै,
पुत्र दिखाए चार आपनै।
बाबर साहि बूझियौ सोइ,
इनमें पातिस्याह को होइ।
बेटनि के नाम, हिमाऊँ मिरजा
कामयार मिरजा,
आसूरी मिरजा, हिन्दाल मिरजा ।।
सेख इसारति कीनी ईस,
मिरजा छत्र हिमाऊँ सीस।
सुनिकै बात धरी चित माहि,
अति सुख पायौ बाबर साहि ।।
कछु दिन बीति आगरे गये,
दान बहुत छह दरसन दये।
दीनौ छत्र हिमाऊँ सीस,
छह दरसन की लई असीस।

हुमायूं शेख मुहम्मद गौस पर पूर्ण विश्वास करता था और उनको अपना परम मित्र समझता था। इसका उल्लेख बदायूंनी ने अपने इतिहास 'मुंतखाबुत तवारीख' में भी किया है।[1] 'मुंतखाबुत तवारीख' में यह भी उल्लेख आया है कि गौस ने चुनार की

---

१ 'मुंतखाबुत तवारीख' ———यूंनी (अंग्रेजी अनुवाद), अनुवादक एस० ए० रैंकिंग एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, १६१८ ई० भाग १, पृ० ४१६

पहाड़ियों में १२ वर्ष तक तपस्या की थी। बदायूंनी ने ९६६ हिजरी में उन्हें आगरे मे देखा था। उसने गौस के सम्बन्ध में जो विवरण दिया है, वह इस प्रकार है :—

"शेख मुहम्मद गौस ग्वालियरी ने चुनार की पहाड़ियों के अंचल में १२ वर्ष तक घोर तपस्या की। वे गुफाओं में निवास करते थे और वृक्षों के पत्तों का भोजन करते थे। दावते अस्मा (भूत प्रेत का अपसरण) में उन्होंने बड़ी दक्षता प्राप्त कर ली थी। हुमायूँ बादशाह उनका बहुत बड़ा भक्त था। ९६६ हि० (१५५८-५९ ई०) मे मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूंनी ने आगरे में उन्हें दूर से देखा। वे सवार थे और लोगों की भीड़ उनके चारों ओर एकत्र थी। किसी के लिए भी उस भीड़ का पार करना संभव नही था। दाहिने और बायें लोगों के सलाम का उत्तर देते उनके सिर को क्षण भर के लिए आराम नहीं मिला था। उस दशा में उनकी पीठ झुकने के कारण घोड़े की काठी से मिल जाती थी। वे जिस किसी को भी देखते उसका सम्मान करते थे। ९७० हिजरी में ९० वर्ष की अवस्था पार करके उनका देहावसान आगरे मे हो गया।"[1]

मंझन ने 'मधुमालती' में भी यह उल्लेख किया है कि "गौस १२ वर्ष तक एक ऐसे स्थान पर दुरे रहे जहाँ सूर्य की रश्मियाँ भी नहीं पहुँच पाती थीं। यह स्थान विकट था, भयानक था। यह स्थान धुंध का दरी था। इसके चारों ओर विषम और दुर्गम पर्वत थे। मनुष्य की गति वहाँ किसी प्रकार संभव नहीं थी। ऐसे स्थान पर वन में मुहम्मद गौस ने जामुन के पत्ते खाकर समय काटा, मन मतंग को वश में किया तथा ज्ञानामृत का महारस पान किया।............वह १२ वर्ष तक वन-पर्वत में समाधि लगाये रहे :—

बारह बरिख तहां गै दुरे,
जहाँ सूर ससि दिष्टि न परे।
बिकट बिखम औ भयावन ठाऊं,
कलिजुग धुंध दरी ओहि नाऊं।
चहुँ दिसि परवत बिखम अगंमा,
तहां न केहूँ मानुस गंमा।
तहां जाइकै जपेउ विधाता,
कै अहार बन जामुनि पाता।
मन मतंग मारि बस किया,
ग्यान महारस अंब्रित पिया।
साहस उदित अपान साधिकै, लीन्हि सिद्धि अवराधि।
बारह बरिख रहे बन परबत लाए जो ब्रह्म समाधि॥[2]

---

१. 'हकायके हिन्दी'—अनुवादक श्री अतहर अब्बास रिज़वी, प्राक्कथन पृ० १८
२ द २१

मंझन चुनार में रहे थे।[1] 'मधुमालती' की रचना उन्होंने ९५२ हिजरी में की थी। इसके पूर्व ही मंझन शेख मुहम्मद ग़ौस के सम्पर्क में आये होंगे। हिजरी सन् ९७० में शेख मुहम्मद गौस आगरे में मरे थे, यह उल्लेख बदायूंनी ने किया है अर्थात् १५६३ ई० में उनका देहान्त हुआ। मंझन ने १५४५ ई० में 'मधुमालती' लिखी। इस प्रकार 'मधुमालती' की रचना के १८ वर्ष पश्चात् गौस की मृत्यु का समय ठहरता है।

मुहम्मद ग़ौस ९२९ हिजरी में चुनार छोड़कर ग्वालियर गये थे। (लेख १२, शत्तारी सम्प्रदाय.......) मंझन इसके पूर्व चुनार में उनके सम्पर्क में आये होंगे। 'मधुमालती' की रचना ९५२ हिजरी में हुई। अतः लगता है कि 'मधुमालती' की रचना के लगभग २३ वर्ष पूर्व वह चुनार में शेख मुहम्मद ग़ौस के सम्पर्क में आये होंगे। मंझन की मृत्यु १००१ ई० में हुई थी। अतः उन्होंने ४९ वर्ष की उम्र में 'मधुमालती' की रचना की, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। २६ वर्ष या उसके पूर्व की आयु मे वह मुहम्मद ग़ौस के सम्पर्क में आ गये होंगे और यह असम्भव नहीं कि मुहम्मद गौस के चुनार छोड़ने के बाद भी वह वहाँ रहे हों और ९५२ हि० में वहीं अपनी कृति पूर्ण की हो। चुनार के विस्तृत वर्णन के संदर्भ में यह असंगत नहीं कहा जा सकता। 'गुलज़ारे-अबरार' से यह पता चलता है कि "मुहम्मद ग़ौस की कृति 'जवाहिर ख़म्सा' का अध्ययन उनकी देख-रेख में उन्होंने किया और उसी पर अपने जीवन को आधारित किया। ग़ौसुल औलिया चुनार की तपस्या के समय जो खिर्क़ा पहिने थे वह उन्होंने मंझन को दिया।"[2]

९२९ हि० से ९४७ हि० तक मुहम्मद ग़ौस ग्वालियर रहे। यदि मंझन इस बीच उनके सम्पर्क में ग्वालियर रहकर फिर चुनार चले गये हों और वहाँ ९५२ हिजरी में 'मधुमालती' की रचना की हो तो यह भी असम्भव नहीं है। इसमें संदेह नहीं है कि मंझन का चनाढ़ी का चित्रण चुनार का चित्रण है।

आगरा में गौस गुजरात की ओर से ९६५ हिजरी में आये थे।[3] मुगलो के निकट सम्पर्क में होने के कारण शेरशाह के समय उन्हें संभवतः चुनार का क्षेत्र छोड़ना पड़ा होगा। 'आइने अकबरी' में यह उल्लेख आता है कि शेख मुहम्मद ग़ौस ने हुमायूँ के अमीर ख्वाजा अब्दुल मजीद को, जिसने अकबर के समय में सेना का भी संचालन किया, चुनारगढ़ दिलाने में सहायता की थी।

'आइने अकबरी' का पूर्ण विवरण इस प्रकार है—"ख्वाजा अब्दुल मजीद हुमायूं का अमीर और दीवान भी था। अकबर के तख्तनशीन होने पर उसने सेना का उत्तरदायित्व संभाला। जब बादशाह ने बैरम खां का विद्रोह दबाने के लिए

---

१. देखिये मेरा लेख, 'मंझन का जीवन वृत्त', **त्रिपथगा**, लखनऊ, जुलाई १९५९
२. **मुग़ल कालीन भारत**—अतहर अब्बास रिज़वी, अलीगढ़, १९६२ ई०, भाग २, पृ० ४९२)।
३. देखिए 'तारीखे फरिश्ता' ब्रिग्स कृत अंग्रेजी अनुवाद, **'हिस्ट्री आफ दी राइज आफ दी मुहम्मडन पावर**, कलकत्ता १९०९, भाग २ पृ० १९५

पंजाब की तरफ कूच किया, अब्दुल मजीद को आकिफ खाँ की पदवी मिली। इसके बाद आकिफ को देहली का प्रशासक बना दिया गया। ३ हजार सेना का वह सेना-नायक बनाया गया। आदिली का एक सेवक फात्तू जब चन्नाढ़ (चुनार) का किला सौंप देने को मजबूर हुआ, तब आकिफ खाँ ने शेख मुहम्मद गौस की सहायता से इस पर कब्जा किया। वह गंगा के तट पर स्थित कड़ा मानिकपुर का प्रशासक बना दिया गया।"[1]

'आइने-अकबरी' के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि शेख मुहम्मद गौस चुनार के बड़े प्रभावशाली व्यक्ति थे, उनके संकेत पर राजनीति भी चलती थी, मुगलों से उनका घनिष्ठ सम्पर्क था। अकबर ने भी उन्हें सम्मान दिया।

'तारीखे फरिश्ता' में यह उल्लेख आता है—"९६५ हिजरी (१५५९ ई०) के रज्जब के महीने में मुहम्मद गौस, जो शेख बहलोल के भाई थे, परिवार सहित बादशाह (अकबर) के दरबार में आ गये। मुगलों से सम्पर्क के कारण उन्हें गुजरात भागना पड़ा था। दरबार में (आगरा में) उनका स्वागत हुआ और बैरम खाँ से कहा गया कि उनके लिए समुचित व्यवस्था की जाय। शेख ग़ौस का बादशाह से निकट सम्पर्क था। अतः बैरम खाँ की वह उतनी परवाह नहीं करते थे जितना वह चाहता था। इस कारण बैरम खाँ ने उनके रहन-सहन की व्यवस्था में देर लगायी और गड़बड़ी की। अतः ग़ौस ने दरबार में रहने से असहमति प्रकट कर दी और वे अपने पुराने वास-स्थान ग्वालियर में चले गये।"[2]

शेख मुहम्मद ग़ौस की कब्र आज भी ग्वालियर में वर्तमान है। गाजीपुर जिले मे भी एक गौसपुर है। वह शेख मुहम्मद ग़ौस से किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। बताया जाता है कि वह बड़े पर्यटनशील थे। अतः वह जौनपुर में भी रहे हों तो आश्चर्य नहीं। शेख मुहम्मद ग़ौस शत्तारी सम्प्रदाय के थे। शेख अब्दुल्ला शत्तारी इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे। यह शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी के वंशज थे और अब्दुल्ला हुसेनशाह शर्की के समय में जौनपुर आकर बसे थे।[3] ग़ौस इस सम्प्रदाय के थे। इसलिए भी यह सम्भव है कि वह जौनपुर में कुछ दिन रहे हो। जौनपुर में भी एक गौसपुर है। यहाँ साल में एक बड़ा मेला लगता है जिसमें हिन्दू मुसलमान दोनों उपस्थित होते हैं। इस मेले में आमतौर से वही लोग जाते हैं जिनका जादू-टोना, भूत-प्रेत, मनौती आदि में विश्वास है। लोगों का ख्याल है कि ग़ौस मनो-कामनाओं को पूर्ण करते हैं। इसीलिए उनके मजार पर भारी भीड़ होती है।

---

१. **'आइने अकबरी'**—अब्दुल फजल अल्लामी, अनुवादक ब्लाच मैन, पृ० ३६७।
२. **'तारीखे फरिश्ता'** का ब्रिग्स कृत अंग्रेजी अनुवाद, हिस्ट्री आफ दी राइज आफ मुहम्मडन पावर, भाग २, पृ० १९५।
३ **'सूफिज्म इटस सेंटस एण्ड श्राइन्स'**, जान ए० सुभान, लखनऊ, सन् १९६० पृ० ३१७-३१८

'बहरुल हयात' शेख मुहम्मद गौस की महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। यह संस्कृत के 'अमृत कुण्ड' का अनुवाद है।[1] इसमें ईश्वर के अस्तित्व, मनुष्य पर नक्षत्रों का प्रभाव आलमों की विशेषता, अंतःकरण, तपस्या तथा आसनों की विधि, मानव शरीर, ब्रह्मांड आदि विषयों का परिचय दिया गया है। उनकी अन्य रचनाएँ है 'जवाहिरी खुम्सा' तथा 'औरादे गौसिया'। इनकी पुस्तकों में जादू, टोना, चमत्कार, दैवी कृपा तथा प्रकोप आदि के सम्बन्ध में लिखा गया है।

बदायूंनी ने भी गौस के चमत्कारों के सम्बन्ध में उल्लेख किया है—"६४५ हिजरी में मिर्जा हिंदाल ने शेख मुहम्मद गौस के बड़े भाई शेख बहलोल की हत्या करा दी। गौस भूत, प्रेत और आत्मा बुलाने की कला तथा जादू एवं चमत्कार के प्रवर्तक थे। हुमायूं की उन पर पूर्ण आस्था थी। वह इनका मित्र था।"[२]

गौस संगीत के जानकार थे अथवा नहीं इस सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से अभी कुछ कह सकना संभव नहीं है। तानसेन का जन्म १५०६ ईस्वी से लेकर १५३२ ईस्वी तक ठहराया जाता है।[3] उनकी मृत्यु का समय १५८६ ई० से १५९५ ई० तक खींचा गया है। अधिकतर लोगों का मत है कि तानसेन ग्वालियर से ७ मील दूर बेहट में पैदा हुए थे। सम्भव है ग्वालियर में अपनी युवावस्था में तानसेन गौस से मिले हों। तानसेन अकबर के दरबार में आगरा आ गये थे। वहाँ भी गौस के सम्पर्क में आने की सम्भावना है। पर अभी उनको तानसेन के गुरु के रूप में स्वीकार करने के लिए पर्याप्त प्रमाणों की आवश्यकता है।

---

१. 'हकायके हिन्दी'—अनुवादक अतहर अब्बास रिज़वी, प्राक्कथन पृ० १८, १६।
२. 'मुंतखबुत तवारीख़'—अलबदायूंनी, अनुवादक एस० ए० रैंकिंग, एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, पृ० ४५६।
३. 'कवि तानसेन और उनका काव्य'—श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, इलाहाबाद सं० २०१३, पृ० ११।

१२

शेख मुहम्मद गौस, शत्तारी सम्प्रदाय का दर्शन और मंझन

हिन्दी के सुप्रसिद्ध सूफी कवि मंझन ने 'मधुमालती' में शेख मुहम्मद गौस को अपना आध्यात्मिक गुरु बताया है और उन्हें बड़े सम्मान से स्मरण किया है। मंझन कहते हैं शेख संसार में बड़े है और विधाता के प्यारे हैं। उनमें ज्ञान की गुरुता है और रूप की असीमता है। यदि कोई उन्हें स्मरण कर स्पर्श करने आता है तो उसको ज्ञान लाभ होता है और उसका पाप कट जाता है। यदि हृदय से वह किसी को अपना स्नेह दे देते हैं तो उसे बुलाकर सहज ही सिर पर ताज पहना देते हैं। जिस पर वह अपनी (दया) दृष्टि रखते हैं उसका प्रतिपालन करते हैं और उसकी काया का सब कलक धो डालते हैं। समझ-बूझकर यदि कोई गुरु-शिष्य दृष्टि का प्रतिपालन करता है तो वह व्यक्ति अपना यम (काल) धोकर निकाल देता है। गुरु का दर्शन दुःख को धो डालने वाला है! वह दृष्टि धन्य है जिसमें (गुरु के प्रति) भाव है। जो व्यक्ति गुरु और शिष्य की दृष्टि का प्रतिपालन करता है वह चारों युग का राजा है।"[1]

---

१. सेख बड़े जग बिधि पियारा। ग्यान गरुअ औ रूप अपारा।
संवरि नाउं परसै जौ आवै। ग्यान लाभ होइ पाप गंवावै।
जाकहं मया जीउ सेंउ करहीं। सहज बोलाइ ताज सिर धरहीं।
जाकहं दिस्टि करहिं प्रतिपारहिं। कया कलंक धोइ जग डारहिं।
बूझि गुरु सिख दिस्टि सो आपन जम धोइ निकाला।
गुरु दरसन दुख धोवन धनि धनि दिस्टि जो भाउ।
जो गुरु सिक्ख दिस्टि प्रतिपालै सो चारिहुं जुग राउ।
मंझन कृत 'मधुमालती'—सम्पादक, डा० माताप्रसाद गुप्त, मित्र प्रकाशन लिमिटेड, इलाहाबाद, १९६१, छन्द १४।
(आगामी पृष्ठों में 'मधुमालती' के समस्त उद्धरण इसी संस्करण से लिये गये हैं)

एक अन्य छन्द में मंझन उन्हें "सात समुद्रों की नौका का कर्णधार कहते हैं। उनका कथन है कि शेख मुहम्मद ऐसे पीर हैं जिनका पार नहीं पाया जा सकता। उनके पांव का स्मरण कर यदि कोई आता है तो उनका मुख देखते ही सुख प्राप्त करता है। फिर दोनों जग की (लौकिक और परमार्थिक) आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उनके चरण का स्पर्श करते ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान की बातें छोड़कर वह अन्य बातें नहीं करते। वह चौदह (विद्याओं) और मंत्रों की सिद्धि देने वाले हैं। उनके हृदय में विस्मय या हर्ष नहीं होता। वह सदा लौ में लीन रहते हैं। गौस[1] मुहम्मद पीर गुण के ग्राहक और दाता (सुखदाता) हैं। वह सत्पुरुष हैं, महान् हैं और गरिष्ठ तथा गम्भीर हैं और दोनों कुलों (इहलोक और परलोक) को निर्मल करने वाले हैं।"[2]

इन दो छन्दों के अतिरिक्त छः अन्य छन्दों में भी मंझन ने अपने गुरु, की महत्ता बतायी है,[3] और यह भी बताया है कि उन्होंने "धुंधदरी" (चुनार के पास की कोई गुफा)[4] में बारह वर्ष तक छिपकर विधाता का जप किया। उन्होंने मन-मत्तंग को मारकर उसे वश में किया तथा ज्ञान के महारस का अमृत पान किया।[5]

---

१. (अ) गौस—Ghawth—Succour, deliverance, is an epithet of the kutb, the head of the Sufi hierarchy of saints. It is used of him only when he is thought of as one whose help is sought, but that, from the nature of the kutb, is practically always. Thus it is a normal sequent to kutb. Others say that ghawth is immediately below the kutb in the hierarchy. (Shorter Encyclopaedia of Islam. H. A. R, Gibb, J. H. Kramers. London 1961, Page 111).

(आ) गौस का अर्थ फ़ारसी और उर्दू के कोशों में आपत्ति में सहायता देने वाला, दुहाई सुननेवाला, न्यायकर्त्ता दिया गया है। इसका अन्य अर्थ वह मुसलमान महात्मा है जो वली से बड़ा पद रखता है। (उर्दू-हिन्दी शब्दकोश सद्दाह, लखनऊ १९५९)।

२. सेख मुहम्मद पीरु अपारा। सात समुंद नाउ कंडहारा।
संवरि पांउ जो आवैं कोई। परथम मुख देखत सुख होई।
फुनि दुहुँ जग पुजैं मन आसा। परसत चरन पाप गा नासा।
ग्यान छाड़ि मुख और न बाता। दस औ चारि मंत सिधि दाता।
बिसमौ हरख न घट महिं लाहैं। संतत रहहिं लीन लौ माहैं।
दाता औ गुन गाहक गौस मुहम्मद पीर।
दुहुं कुल निरमल सापुरुस गरुअ गरिस्ट गंभीर। —मधुमालती, छन्द १५

३. **मधुमालती**, छन्द १६, १७, १८, १९, २०, २१

४. **मंझन का जीवन वृत्त**—श्याम मनोहर पाण्डेय, त्रिपथगा, लखनऊ, जुलाई १९५९

५. बारह बरिख तहां गँ दुरे। जहाँ सुर ससि दिस्टि न परे।
बिकट बिसम औ भयावन ठाऊं। कलियुग धूंध दरी ओहि नाऊं

हैं। यह गाज़ीपुर के इलाके में है। आपका कयाम भी खेड़ा में था।"[1] औराद-ए-गौसिया[2] का हवाला देते हुए प्रोफ़ेसर मुहम्मद मसूद अहमद ने उल्लेख किया है कि "शाह मुहम्मद गौस ग्वालियरी ९०७ हिजरी (सन् १५०१) में ज़हूराबाद (ग़ाज़ीपुर) में पैदा हुए और ९७० हिजरी में अकबराबाद में वफ़ात पायी और ग्वालियर में मदफ़ून हुए।[3] शेख़ मुहम्मद ग़ौस ग़ाज़ीपुर से आये थे। इसका उल्लेख खड्गराय कृत 'गोपाचल आख्यान'[4] (संवत् १८५३) में भी प्राप्त होता है। 'गोपाचल आख्यान' में शेख़ मुहम्मद ग़ौस के सम्बन्ध में कहा गया है—

पूरब गाज़ीपुर को ठाऊं,
कुम्हरगड़ा ता गावै नाऊं।
मुहम्मद ग़ौस तहां ते आई,
रहे ग्वालियर में सुख पाई।[5]

खड्गराय कृत 'गोपाचल आख्यान' १८ वीं शताब्दी की रचना है। इसमे शेख मुहम्मद ग़ौस का स्थान ग़ाज़ीपुर का कुम्हरगड़ा बताया गया है। हो सकता है कि 'गोपाचल आख्यान', 'मुनाक़ब ग़ौसिया' जैसी किसी फ़ारसी कृति पर आधारित हो जिससे 'खेड़ा' का 'कुम्हरगड़ा' पाठ बन गया हो। खेड़ा को कुम्हरगड़ा पढ़ा जाना फारसी लिपि के कारण असम्भव नहीं है। गाजीपुर के खेड़ा या कुम्हरगड़ा के सम्बन्ध मे अभी और छानबीन करने की आवश्यकता बनी हुई है। सैयद फजल अली शाह ने 'कुल्लियाते ग्वालियरी' में शेख् मुहम्मद ग़ौस का वतन ग़ाज़ीपुर (पटना) बताया है।[6] 'कुल्लियाते ग्वालियरी' अकबर के काल की कृति है।

प्रारम्भिक जीवन

'औराद-ए-गौसिया' में शेख मुहम्मद ग़ौस ने अपने जीवन के प्रारम्भिक काल के कुछ वृत्तों का उल्लेख किया है।

---

१. **शाह मुहम्मद ग़ौस**—प्रोफ़ेसर मसूद अहमद, मीरपुर ख़ास, हैदराबाद (पाकिस्तान), १९६४) पृ० २ से उद्धृत।
२. **औराद-ए-ग़ौसिया**—यह पुस्तक शेख मुहम्मद ग़ौस ने ९४९ हिजरी में पूर्ण की थी। ग़ौसी शत्तारी ने 'गुलजारे-अबरार' में तथा गुलाम सरवर लाहौरी ने 'खज़ीनुतुल आसफिया' में इसका उल्लेख किया है।
३. **शाह मुहम्मद ग़ौस**—मसूद अहमद, पृ० ७१।
४. **गोपाचल आख्यान**—इसकी एक प्रति दतिया के राजकीय पुस्तकालय मे सुरक्षित है।
५. प्रस्तुत उद्धरण श्री हरिहर निवास द्विवेदी के 'भारती' में प्रकाशित एक लेख 'मंझन की मधुमालती' से लिया गया है। उसे १९५९ में उन्होंने मेरे पास भेजने की कृपा की थी. लेखक इसलिए उनका आभारी है।
६ **शाह मुहम्मद ग़ौस**—पृ० २३

फ़ारसी—"इन दरवेश हफ्त साला बूद (हिजरी ९१४) कि दरइस राहे आमद व नह साला बूद कि (हि० ९१६) मारिफत हासिल सुद व पांज दह साला बूद कि रह नमूनी मी कर्द। व बीस्त व दू साला बूद कि मेराज सुद व बीस्त व पंच साला बूद कि तालिबान राहम चूं खुद मी कर्द व सी व सह साला बूद कि मर्ज़े खास व आम सुद। सूरते अक्तदाइत व इमामियत रूए न मूद। चहल साला बूद कि अज़ बाद-शाहान तफ़ावत पैदा सुद। सफ़र अख्तियार कर्द। दर वलायत गुजरात आमद-। इन अवराद दर कुल्लिये जान प्यानेर व कलम आमद। दरवक्त इन्सा मज़कूर उम्र ईं दरवेश चहल व सह साला बूद। व तवल्द इन फ़कीर हफ्तम माह रज्जब रूज़ जुम्मा वक्त नमाज़ पीशीन सना सुबह व तसामाते सुदा बूद व इमलाये मज़कूर दर माह जमदिउल अव्वल सना तस अरब-ईन तसामातए अस्त।"[1]

(यह दरवेश ७ साल का था कि इस रास्ते में आया और ९ वर्ष का हुआ तो ज्ञान (मारिफत) प्राप्त हुआ। १५ साल का था कि वह रहनुमाई (पथ प्रदर्शन) करता था और जब २२ वर्ष का था कि मेराज हुई। जब २५ वर्ष (९३३ हि०) का था तब मैं स्वयं प्रशिक्षा की ओर अग्रसर हो रहा था। ३३ साल का था तो मुझे आम और खास का मर्ज़ हुआ और मैं नेता तथा इमाम बन गया था। चालीस साल की अवस्था में बादशाहों से मतभेद हुआ। अतः यात्रा प्रारम्भ की और गुजरात देश पहुँचा। यह 'औराद-ए-ग़ौसिया' जानपानेर में लिखा गया। इस औराद को लिखते समय इस दरवेश की उम्र ४३ साल थी। यह फ़क़ीर ७ माह रजब रोज़ जुम्मा वक्त नमाज़े पेशीं ९०७ हिजरी में पैदा हुआ।)

'औराद-ए-ग़ौसिया' के उपर्युक्त उद्धरण से यह विदित होता है कि शेख मुहम्मद ग़ौस ९०७ हिजरी (सन् १५०१) में उत्पन्न हुए थे। ७ वर्ष की उम्र में वह सूफ़ी साधना के पथ पर अग्रसर हो गये। ४० वर्ष की उम्र में गुजरात गये।

शेख मुहम्मद ग़ौस की चुनार में तपस्या

अब्दुल कादिर बदायूंनी के अनुसार—शेख मुहम्मद ग़ौस ने चुनार में बारह वर्ष तक तप किया। उसने लिखा है कि 'मैं जंगल में चुनार की पहाड़ी के नीचे पहुँचा जहाँ शेख़ मुहम्मद ग़ौस रहते थे। वह भारत के एक प्रसिद्ध शेख़ थे और प्रार्थना में लगे रहते थे। शेख़ का एक अनुयायी मुझसे मिला और उसने मुझे वह गुफ़ा दिखलाई जहाँ शेख़ मुहम्मद ग़ौस तपस्वी के रूप में १२ वर्ष तक फल और पेडो के पत्ते खाकर रहे। अपनी दुआओं की पूर्ति के लिए वे इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि

१. **शाह मुहम्मद ग़ौस**—हैदराबाद (पाकिस्तान), पृ० ३।
फारसी से उद्धरण का अनुवाद हिन्दी में लेखक ने स्वयं किया है।

शक्तिशाली और बड़े बड़े बादशाह उनके सम्मान में वफ़ादारी और श्रद्धा के साथ सिर झुकाते थे।[1]

'मुंतखबुत तवारीख' में बदायूंनी ने शेख मुहम्मद ग़ौस के चुनार में तप का उल्लेख अन्यत्र भी किया है। उसने लिखा है—"धार्मिक जीवन में प्रवेश करने के बाद शेख मुहम्मद ग़ौस ने १२ वर्ष तक चुनार की पहाड़ियों के अंचल में तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में अत्यन्त कठोर तप करते हुए व्यतीत किए। वे गुफाओं में रहते थे और वृक्षों के पत्ते खाते थे। 'दावते अस्मा' (भूतप्रेत के अपसरण) में वे सिद्ध थे और उनमें दैवी शक्ति थी। वह खुदा की तरफ रहस्यमय ढंग से लगे हुए थे। उन्होंने अपने भाई बहलोल से 'दावते अस्मा' को प्रयोग में लाने की आज्ञा ली। बहलोल स्वयं जादू और चमत्कार का प्रयोग करते थे।"[२]

'जवाहिरे खम्सा' की एक प्रति में यह उल्लेख मिलता है कि शेख़ मुहम्मद गौस १३ वर्ष और कुछ महीने इबादत (पूजा) और रियाज़त (तप) में मशग़ूल रहे।[3]

"इसके बाद कोहिस्तान चुनार में जाके १३ वर्ष और कई महीने खलूत मे

---

१. And in the jungle at the foot of the Chunar hill I came to the dwelling and abode of Shaikh Muhammad Ghows, one of the great Shaikhs of India and a man of prayer. One of his followers met me, and showed me a cave where the Shaikh had lived for twelve years as a hermit, subsisting on the leaves, and the fruit of the desert trees. So celebrated had he become for the fulfilment of his blessings, that even powerful and absolute monarchs used to bow the head of sincerity and courtesy in his honour. *Muntakhabut-Tawarikh*—BADAUNI Transl. W. H. LOWE, Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1924, Volume II, Page 28.

२. When entering on the religious life he spent twelve years on the lower slopes of the hills of Chanar and the adjoining country, practising the most severe austeriteis, having his dwelling in caves and subsisting on the leaves of trees. He was an acknowledged master in the science of exorcism. He possessed a supernatural power and was drawn in a mysterious manner towards God. He obtained leave to practise this science (exorcism) from his elder brother Shaikh Buhlul who was a worke of miracles and wonders—*Ibid*, Calcutta. 1925. Vol. II page 7.

३ शाह मुहम्मद ग़ौस (पाकिस्तान) पृ० ६।

रहे और जो कुछ हज़रत (हाजी हमीदुद्दीन हसूर)[1] ने इरशाद किया था, उसे पर अमल किया और हालाते गुज़श्ता लिख लिख के जमा किये।"

(फ़ारसी—बाद अज़ां दर कोहिस्तान किले-ए-चुनार रफ़्ता सीज्दा साला व चन्द माह दर ख़लूत बूद व इंचा फरमूदा बूदन्द बअ आंन अमल नमूद। हाल गुजश्ता रा नविश्ता जमा साख़्त।)

उपर्युक्त उद्धरण इण्डिया आफिस लाइब्रेरी लंदन में सुरक्षित 'जवाहिरे-खम्सा' की एक प्रति से लिया गया है (पाण्डुलिपि, बीजापुर संख्या ३६४१)।[2]

इसी आधार पर मुहम्मद मसूद अहमद ने यह स्वीकार किया है कि चुनार मे शेख मुहम्मद ग़ौस १३ वर्ष कुछ महीने रहे।[3] किन्तु उनका मत सरलता पूर्वक स्वीकार करना संभव नहीं है।

शेख अब्दुल कादिर बदायूंनी जब चुनार पहुँचे थे तो उन्हें यह बताया गया था कि शेख मुहम्मद ग़ौस ने वहाँ १२ वर्ष तक तप किया।[4] शेख मुहम्मद ग़ौस के प्रिय शिष्य मंझन चुनार में रहे थे (देखिए—मंझन का साधना स्थल चुनार)। उन्होने अपनी रचना 'मधुमालती' में उल्लेख किया है कि ग़ौस १२ वर्ष तक चुनार में साधना करते रहे :—

"बारह बरिख तहाँ गै दुरे। जहां सूर ससि दिस्टि न परे,
बिकट बिखम औ भयावन ठांऊ। कलिजुग धुंध दरी ओहि नाऊं।
चहुँ दिसि परबत बिखम अगंमा। तहाँ न केहूँ मानुस गंमा,
तहां जाइ के जपेउ बिधाता। कै अहार बन जामुनि पाता।

(मंझनकृत 'मधुमालती', संपादक डा० माताप्रसाद गुप्त, छन्द २१)

मंझन के उपर्युक्त साक्ष्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, खासतौर से जबकि बदायूंनी भी इसका समर्थन करते हैं। 'जवाहिरे खम्सा' की केवल एक प्रति का आधार उतना पुष्ट नहीं हो सकता। यदि यह सिद्ध हो जाय कि बदायूंनी ने अपना मत 'मधुमालती' के रचयिता से लिया है तब और बात है।

शेख मुहम्मद ग़ौस ने 'जवाहिरे खम्सा' की रचना चुनार में ९२९ हिजरी (१५२२ ई०) में की। मसूद अहमद ने अपनी पुस्तक 'शाह मुहम्मद ग़ौस' मे

---

१. हाजी हमीदुद्दीन हसूर—इनको बाद में "ज़हूरुद्दीन हसूर" कहा जाने लगा। ९३० हिजरी (१५२३ ई०) में इनकी मृत्यु हुई थी। मुहम्मद ग़ौस इनसे सारनपुर (मालवा) में मिले थे और शिष्य हुए थे।
२. शाह मुहम्मद ग़ौस—पृ० १२।
३. वही—पृ० २३।
४. मुंतखबुत तवारीख—बदायूंनी. अनुवादक डब्ल्यू० एच० लोव. कलकत्ता, १९४९ भाग २ पृ० सं० २८

'जवाहिरे' खम्सा की दो तिथियाँ दी हैं। पृष्ठ ६ और पृष्ठ ३० पर उन्होंने ९२९ हिजरी उसका रचना काल दिया है। पृ० ९८ पर उन्होंने ९२७ हिजरी दिया है। यह मुद्रण की भूल नहीं हो सकती क्योंकि इसका ईस्वी सन् उन्होंने साथ में १५२१ दे दिया है। लेखक की असावधानी से ऐसा हुआ है। हिजरी ९२९ में चुनार में 'जवाहिरे-खम्सा' लिखा गया इसका समर्थन 'मआसिरुल उमरा' से भी होता है।[1]

शेख मुहम्मद गौस सारनपुर[2] (मालवा) भी गये थे। वहाँ उन्होंने हाजी हमीदुद्दीन हसूर की (मृत्यु ९३० हिजरी, सन् १५२३ ई०) कदमबोसी का शर्फ़ हासिल किया।[3] सारनपुर शत्तारी सम्प्रदाय के सूफ़ियों का एक प्रसिद्ध केन्द्र ज्ञात होता है। यहाँ 'गुलजारे-अबरार' के लेखक शेख ग़ौसी शत्तारी तथा 'मधुमालती' के रचयिता मझन भी रहे थे।[4]

शेख मुहम्मद ग़ौस गुजरात में

शेख मुहम्मद ग़ौस तथा उनके भाई बहलोल पर हुमायूँ की बड़ी श्रद्धा थी। अब्दुल कादिर बदायूंनी लिखते हैं कि "इन दोनों फ़कीरों पर उसकी सबसे अधिक श्रद्धा थी। यहाँ तक कि बहुत कम व्यक्ति थे जिनको हुमायूं इतना सम्मान देता था। इन फ़कीरों से उसने 'दावते अस्मा' सीखी। भारत में जब उथल-पुथल हुई और शेरशाह ने जब शेख मुहम्मद ग़ौस को सताना शुरू किया तो वह गुजरात चले गये। वहाँ उन्होंने शासकों तथा राजकुमारों को भी अपनी छत्रछाया में किया और अपनी शिक्षाओं में उनका विश्वास कायम किया। यहाँ तक कि सभी उनकी सेवा के लिए तत्पर रहते थे।[5]

---

१. **'मआसिरुल उमरा' या मुगल दरबार**—अनुवादक ब्रजरत्नदास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० १९९५, भाग २, पृ० सं० १५५।
इस ग्रन्थ का लेखक शमसमुद्दौला शाह नवाज़ खां है। रचना १७४२ ई० में प्रारम्भ हुई थी।

२. **सारनपुर**—यह स्थान मालवा में है इसे सारंगपुर भी कहा जाता था। यह बम्बई से आगरा के मार्ग पर इन्दौर से ७४ मील की दूरी पर है। (देखिए—मुग़ल कालीन भारत, भाग १, अनु० अतहर अब्बास रिज़्वी, अलीगढ़ १९६१, पृ० १८, पाद टिप्पणी)।

३. **शाह मुहम्मद ग़ौस**—पृ० ७

४. ९८६ हिजरी (१५७८ ई०) में जब अकबर मालवा पहुँचा तो मालवा प्रान्त के सभी संत लश्कर में एकत्र हुए। ग़ौसी शत्तारी भी उसी समय शाह मंझन की सेवा में पहुँचा और उनकी योग्यता से लाभान्वित हुआ। **मुग़ल कालीन भारत**—(भाग २) अनु० सैयद अतहर अब्बास रिज़्वी पृ०, ४९२-९३।

५ H's late majesty the emperor Humayun on whom God's mercy has descended had the greatest faith n and attach-

मुहम्मद गौस ९४७ हिजरी में गुजरात पहुँचे थे। इसका उल्लेख 'मआसिरुल-उमरा' में इस प्रकार आया है—"जब सन् ९४७ हिजरी में शेरशाह नेउत्तरी भारत को विजय कर लिया तब हुमायूं से अपने सम्बन्ध के कारण शेख मुहम्मद गौस भय से गुजरात भाग गये।"[1]

मुफ़्ती गुलाम सरवर लाहौरी 'खजीनुतुल औलिया' में शेख मुहम्मद गौस के गुजरात जाने का एक अन्य कारण उनका 'मेराजनामा' लिखना बताते हैं। वह लिखते हैं—"आपने अपने अरुजे हाल में एक किताब मौसूम बे मेराजनामा तसनीफ फरमाई थी और इसमें अपने अरुजे हाल के मुकामात का ज़िक्र किया था। जब हुमायूं बादशाह माजुल-रियासत हुआ और हिन्दुस्तान से ईरान चला गया तो हासदों ने शेख की तसनीफ 'मेराजनामा' शेरशाह के सामने पेश की और कहा कि इसमें शेख ने बहुत सी बातें खिलाफ शरा लिखी हैं। चुनांचे शेरशाह आपकी आज़ार रसानी के दरपै हो गया। मजबूरन शेख ग्वालियर से हिजरत फरमाकर गुजरात तशरीफ ले आए।"[2] 'खजीनुतुल आसफिया' सन् १८६४ में पूर्ण हुई थी। मुफ्ती-गुलाम सरवर लाहौरी का प्रेरणा-स्रोत क्या है, इस पर सम्यक् विचार किये बिना उसका उपर्युक्त कथन सरलता से स्वीकार नहीं किया जा सकता। शेरशाह और हुमायूं के संघर्ष इतिहास में प्रसिद्ध हैं। इतिहास ग्रंथों से यह भी पता चलता है कि हुमायूं शेख मुहम्मद गौस पर बड़ी श्रद्धा करता था। शेरशाह के सताने पर वह उसकी सल्तनत छोड़कर गुजरात चले गये यह इतिहास सम्मत है।[3] 'मेराजनामा' लिखने के कारण ही उन्हे गुजरात जाना पड़ा। इसके लिए अभी बड़े पुष्ट प्रमाणों की आवश्यकता है।

---

ment to these two saints, so much so that there were very few that ranked with them in his estimation. From these venerable men he learnt the sceince of exorcism. After the rebellion in India when Shershah began to oppress, he betook Shaikh Muhammad, himself to Gujarat where also he brought princes and rulers under the yoke of subjection to him and belief in his teaching, so that all alike were ready to do him service.
Muntakhabut-Tawarikh—Abdul Qadir Badauni. Transl. Sir Oolseley Haig, Calcutta, 1925, Volume III. Page 8.

१. मआसिरुल उमरा या मुगल दरबार—भाग २, काशी संवत् १९९५, पृष्ठ १५५
२. खजीनुतुल आसफिया—ले० मुफ्ती गुलाम सरवर लाहौरी, लखनऊ, १८७३, पृ० ३३२–३४ (शाह मुहम्मद गौस—पृ० ६० से उद्धृत)।
3. *Muntakhabut*-Tawarikh—Badauni. transl ate. Wolseley Haig Calcutta 1925 Volume III Page 8

हिजरी ६६६ (सन् १५५८) में शेख मुहम्मद ग़ौस गुजरात से आगरा वापस आये थे। इसका उल्लेख भी बदायूंनी ने किया है।[1] इस प्रकार शेख मुहम्मद ग़ौस ६४७ हिजरी से ६६६ हिजरी तक अर्थात् लगभग १८ वर्ष गुजरात रहे।

'मआसिरुल-उमरा' में शेख मुहम्मद ग़ौस के गुजरात से आगरा आने की तिथि ६६३ हिजरी (सन् १६५५ ई०) दी गयी है।[2] 'तारीखे फरिश्ता' में यह तिथि ६६५ हिजरी (सन् १५५६) दी गयी है।[3]

गुजरात में कत्ल करने का षडयंत्र

अब्दुल कादिर बदायूंनी ने 'मुंतखबुत तवारीख' में यह बताया है कि गुजरात के उलमा ने शेख मुहम्मद ग़ौस की हत्या की कोशिश की थी। उनका कथन है—"जब सुलतान मुहम्मद गुजराती के जमाने में शेख मुहम्मद ग़ौस हिन्दुस्तान से गुजरात गये थे शेख अली मुतक्की ने जो मशायख़ कबार और अपने वक्त के उल्माए रोज़गार मे थे, इनके कत्ल का फतवा दिया। सुलतान ने इसका इजरा मियां वजीउद्दीन की राय पर मौकूफ़ कर दिया। चुनांचे मियां वजीउद्दीन शेख की मुलाकात को गये और पहली ही मुलाकात में इनके ऐसे मुअतक़िद हो गये कि बेअख्तियार हो गये और इस फतवे को पुर्जे-पुरजे कर डाला। यह सुनकर शेख़ अली मुतक्क़ी उनके मकान पर गये और उनसे कहा तुम क्यों बदअत के रिवाज पर राज़ी हो गये? शरा में रखना डालते हो। उन्होंने जवाब दिया हम अरबाबे काल हैं और शेख़ अहले-हाल। हमारा ज़ेहन इनके कमालात को नहीं समझ सकता और ज़ाहिर शरियत में कोई एतराज़ इन पर नहीं आता। गरज़ इनके असर से तमाम गुजरात के हुक्काम शेख मुहम्मद ग़ौस के मुअतक़िद हो गये और शेख़ ने इस बला से निजात पायी।[4]

---

१. वही—भाग २ अनुवादक डब्ल्यू स० च० लोव, कलकत्ता, १९२४, पृष्ठ २८
२. मआसिरुल उमरा—भाग २ ब्रजरत्नदास, काशी सं० १९६५, पृ० सं० १५५
३. "In the month of Rujub, of the same year (A. H. 965.) Mahomed Ghows, the brother of Sheikh Bheilole, who on account of his attachment to the Moghul dynasty had retired to Guzerat, now returned to court with his family; and being favourably received Beiram Khan was requested to provide him with a suitable establishment".

   तारीखे-फरिश्ता—History of the rise of the Mahomedan power in India. Transl. John Briggs, Calcutta, Volume II, 1909.(P. 195)
   फरिश्ता ने अपना इतिहास १६०६-१६०७ ई० में पूर्ण किया और दक्कन के बादशाह इब्राहीम आदिल शाह को भेंट किया था।
४. मुन्तखबुत-तवारीख—(अब्दुल कादिर बदायूंनी)—उर्दू अनुवाद लखनऊ १८८९ पृ० ४१४ (शाह मुहम्मद गौस पृ० ६१ पर उद्धृत इस ... खिलाफ अहमद निजामी का लेख भी देखिए The Shattari saints and

गुलाम सरवर लाहौरी के अनुसार शेख मुहम्मद ग़ौस को उनकी पुस्तक 'मेराज्-नामा' से उल्मा की नाराज़गी उठानी पड़ी। उन्होंने उनकी हत्या करनी चाही।[1]

शाह मुहम्मद ग़ौस लगभग १८ वर्ष (७४८ हिजरी से ९६५-६६ तक) गुजरात में भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहे जिनमें जपानीर, भड़ौच, और अहमदाबाद का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अहमदाबाद में आपने एक मस्जिद और खानकाह तामीर करायी थी। १८ वर्षों में गुजरात में बड़ा प्रभाव कायम किया। सुलतान मुहम्मद शानी आप पर श्रद्धा रखता था। शाह वजीउद्दीन जैसे आलिम आपकी छत्रछाया में आये। गुजरात, दक़न व मालवा के उल्मा आपके सम्प्रदाय में सम्मिलित हुए।[2]

जहाँगीर जब गुजरात में गया था तब शेख मुहम्मद ग़ौस के पुत्रों से उसकी मुलाकात हुई थी। 'जहाँगीरनामा' में वह लिखता है कि "रविवार १७ वी (१०२७ हिजरी सन् १६१७ ई०) को दराब खाँ, अमानत खाँ और सैयद बायजीद बारहा प्रत्येक को एक हाथी दिया। इन थोड़े दिनों में जब हम समुद्र के किनारे पर ठहरे हुए थे। खंभात के व्यापारियों, व्यवसाइयों, निवासियों तथा अन्य बसनेवालों को अपने सामने बुलाकर उनकी स्थिति के अनुसार खिलअत, घोड़ा, यात्रा व्यय, या सहायता दी। इसीदिन अहमदाबाद की शाह आलम मस्जिद के सज्जादानशीन सैयद मुहम्मद, शेख मुहम्मद ग़ौस के पुत्रगण, मियां वजीहुद्दीन के पौत्र शेख हैदर तथा वहाँ के अन्य शेखगण हमसे मिलने के लिए अभिवादन करने आए।[3]

१०२७ हिजरी (१६१७ ई०) में ही जहांगीर ने शेख मुहम्मद ग़ौस के उर्स के अवसर पर उनके पुत्रों को एक सहस्र दर्ब व्यय के लिए दिये इसका भी उल्लेख जहाँगीर ने अपने आत्मचरित में किया है।[4]

शेख मुहम्मद ग़ौस ग्वालियर में

गुजरात जाने के पूर्व शेख मुहम्मद ग़ौस ग्वालियर में रहे। वह चुनार में १२ वर्ष तपस्या कर ग्वालियर चले गये थे और ९४७ हिजरी (सन् १५४०) तक वह

---

their attitude towards the state, Medieval India Quarterly, Aligarh 1950, p. 66.

१. शाह मुहम्मद ग़ौस—उर्दू, पृ० ६१।
२. वही,—पृ० ६६।
३. जहाँगीर चरित—अनुवादक ब्रजरत्नदास ना० प्र० काशी, संवत् २०१४ पृ० ४८१

सम्भवतः वहीं रहे फिर गुजरात चले गये थे। 'बाबरनामा' में यह उल्लेख मिलता है "हिजरी ९३६ (सन् १५२९) (५ सितम्बर) बुधवार ३ मुहर्रम को शेख मुहम्मद ग़ौस ग्वालियर से खुसरो (के पुत्र) शिहाबुद्दीन के साथ रहीमदाद की सिफ़ारिश करने आया। शेख मुहम्मद ग़ौस के दरवेश एवं पूज्य व्यक्ति होने के कारण रहीमदाद के अपराध क्षमा कर दिये गये। शेख गूरन तथा नूरबेग को ग्वालियर इस आशय से भेजा गया कि वह स्थान उनके सिपुर्द कर देने के बाद........(यहाँ पंक्ति-त्रुटि है)।[1] इससे पता चलता है कि ९३६ में ग़ौस ग्वालियर में थे।

'बाबरनामा' में बाबर ने एक और घटना का उल्लेख किया है जो हिजरी ९३२ (सन् १५२५) में घटी थी। मुहम्मद ग़ौस ने रहीमदाद को ग्वालियर के किले मे आमन्त्रित किया था।

"तातार खाँ सारंग खानी जो ग्वालियर में था बराबर अपनी अधीनता एवं निष्ठा का आश्वासन दिलाने के लिए आदमी भेजा करता था। काफ़िर (राणासाँगा) के कन्दार को अपने अधिकार में कर लेने तथा ब्याना के समीप पहुँच जाने के उपरान्त ग्वालियर के राजाओं में से धर्मानकत तथा एक अन्य काफ़िर ने जो खानेजहाँ कहलाता था, ग्वालियर के पड़ोस में पहुँचकर किले पर अधिकार जमाने के लोभ में उपद्रव मचाना एवं विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया। तातार खाँ कठिनाई में पड़ गया और क़िले को (हमें) समर्पित करने की इच्छा करने लगा। हमारे अधिकांश बेग, घर के सैनिक तथा चुने हुए वीर या तो (हुमायूँ) की सेना के साथ या अन्य अभियानों पर गये हुए थे। हमने रहीमदाद के साथ भीरा के आदमियों तथा लाहौरियों का एक समूह एवं हस्तची तून्क़तार और उसके भाइयों को किया। हमने उपर्युक्त लोगो को ग्वालियर में परगने प्रदान किये। मुल्ला अपाक़ तथा शेख गुरन भी उनके साथ गये। उन्हें आदेश दिया गया कि वे रहीम दाद को ग्वालियर में आरूढ़ करके लौट आयें। उनके ग्वालियर के समीप पहुँचने तक तातार खाँ के विचारों में परिवर्तन हो गया और उसने उन्हें किले में न आने दिया। इसी बीच में शेख मुहम्मद ग़ौस ने, जो कि एक दरवेश हैं और जो केवल विद्वान ही नहीं हैं अपितु जिनके मुरीदों एवं अनुयाइयों की संख्या भी बड़ी अधिक है, किले के भीतर से रहीमदाद के पास यह संदेश भेजा कि 'जिस प्रकार हो सके किले में पहुँच जाओ। उसके विचार बदल गये हैं और उनमें खोट पैदा हो गया है।" रहीमदाद को जब इस बात का पता चला तो उसने तातार खाँ के पास यह संदेश भेजा कि "काफ़िरों के कारण बाहर खतरा है। मुझे कुछ आदमियों सहित किले में प्रविष्ट हो जाने दो। अन्य लोग किले के बाहर ही रहेंगे।" उसके आग्रह पर तातार खाँ ने यह बात अस्वीकार कर ली और रहीमदाद थोड़े से आदमियों सहित किले में प्रविष्ट हो गया। उसने (तातार खाँ) से कहलाया कि,

---

१. मुग़ल कालीन भारत (बाबर)—अनु० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी, अलीगढ़ १९६० पृ० २४०

"हमारे आदमियों को इस फाटक के निकट ठहरने दो। उसने अपने आदमी हाथीपुल के समीप नियुक्त कर दिये और उसी फाटक से उसी रात्रि में अपनी समस्त सेना को किले में प्रविष्ट करा लिया। दूसरे दिन तातार खाँ ने विवश होकर किला समर्पित कर दिया और आगरा पहुँच कर मेरी सेवा में उपस्थित हुआ। उसके व्यय हेतु २० लाख का बियावा (आगरा सूबे में था, आइने-अकबरी) परगना प्रदान कर दिया गया।[1]

इससे पता चलता है कि मुहम्मद गौस राज्य के मामलों में भी दिलचस्पी लेते थे।

शेख़ मुहम्मद गौस के हस्तक्षेप से बराबर ने रहीमदाद को उसके बुरे व्यवहार के लिए क्षमा कर दिया और ग्वालियर उसे वापस दे दिया। इसकी सूचना 'तारीखे ग्वालियरी' के आधार पर 'बाबरनामा' में ए० एस० बेवरिज ने दी है।[2]

आगरा में शेख मुहम्मद गौस

पूर्व पृष्ठों में कहा जा चुका है कि शेख मुहम्मद गौस चुनार से ग्वालियर आये और यहाँ से ९४७ हिजरी में जबकि शेरशाह का राज्य कायम हो गया था उन्हें गुजरात जाना पड़ा। गुजरात में १८ वर्ष तक रहने के बाद अकबर के शासनकाल मे वह आगरा ९६६ हिजरी (सन् १५५८) में आये। बदायूंनी का कथन है कि अकबर

---

१. मुगुल कालीन भारत (बाबर)—अनु० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी, अलीगढ १९६०, पृ० २१९-२०। इस घटना के लिए बाबरनामा (Memoirs of Babur अनुवादक A. S. Beveridge, Volume. II, London) १९२२ मे पृष्ठ ५३९-४० भी देखिए।

२ The Tarikh-I-Gualiari, supplements the fragmentary accounts which above and S. A. 936 A. H. are all that Baburnama now preserves concerning khwaja Rahimdad's misconduct. It has several mistakes but the gist of its information is useful It mentions that khwaja and his paternal uncle Mahdi khwaja had displeased Babur, that Rahimdad resolved to take refuse with the ruler of Malva (Muhammad khalji) and to make over Gualiyar to Rajput land holder of that Country; that upon this Shaikh Muhammad Ghows, went to Agra and interceded with Babur and obtained his forgiveness for Rahimdad but after a time he was superceded by Abdul-Fath (Shaikh Guran). *Baburnama*—(Memoirs of Babur) Transl. A S Beveridge London 1922, Volume II Page 688.

ने उनका खुलकर विश्वास के साथ स्वागत किया किन्तु शेख गदाई[१] को शेख मुहम्मद गौस का आना नहीं रुचा। इसका कारण ईर्ष्या द्वेष और प्रपंच था।[२] बदायूंनी यह भी लिखते हैं कि "मैंने ९६६ हिजरी में शेख मुहम्मद गौस को आगरा के बाजार मे घोडे पर सवार होकर जाते हुए दूर से देखा। लोगों की भीड़ उनके चारों ओर तथा पीछे थी। जिससे भीड़ में कोई जा नहीं सकता था। अपने चारों तरफ खड़े लोगों को घोड़े की काठी तक झुककर सम्मान और विनम्रता के साथ सलाम करते थे। उनका मस्तक एक क्षण के लिए भी आराम नहीं पाता था। इसी वर्ष वह गुजरात से आगरा आये और उपदेश और धार्मिक विश्वास से तथा राज-दरबारियों के प्रभाव का लाभ उठाकर अकबर को, जो उस समय युवक था, अपना शिष्य बनाया किन्तु उसने शीघ्र ही उनकी शिक्षा को छोड़ दिया।[3]

शेख मुहम्मद गौस को बैरम खां, शेख गदाई, तथा अबुल फजल के पिता बैरम खां नहीं चाहते थे इसकी सूचना अन्य इतिहासकारों ने भी दी है।[४]

'तारीखे फरिश्ता में' भी बैरमखां की शेख के प्रति वैमनस्य भाव की चर्चा आयी है। फरिश्ता लिखता है कि ९६५ हिजरी रज्जब में शेख बहलोल के भाई शेख मुहम्मद गौस जो मुगलों से सम्बन्ध होने के कारण गुजरात चले गये थे, दरबार मे (आगरा) हाजिर हुए। उनका स्वागत हुआ और बैरम खां से कहा गया कि उन्हें एक उपयुक्त स्थान दिया जाय। 'शेख मुहम्मद गौस' ने बादशाह के सम्बन्धों पर अधिक विश्वास करते हुए वजीर बैरमखां की ओर ध्यान नही दिया। वह चाहता था कि उसकी महत्ता की ओर ध्यान जाय। उसने अनेक बहाने

---

१. शेख गदाई—शेख गदाई शिया थे जो "सद्र स-सुदुर" बैरमखां की संस्तुति पर नियुक्त किए गये थे। वह हिजरी ९६८ तक इस सदर पद पर बने रहे। सद्र स-सुदुर=सबसे बड़ा जज, शाही हरमसरा का संरक्षक, इसके हाथ में अनुदान तथा भत्ते आदि का प्रबन्ध भी रहता था।

२. In 966. A. H. the aforenamed Shaikh with disciples and followers arrived with state and pomp at Agra. coming from Gujarat. The Emperor received him with frank confidence. But his arrival was displeasing to Shaikh Gadai, who on account of jealousy, hypocrisy, and envy looked on his arrival as a case of opening a shop in the storey above his own shop. (*Muntakhabut Tawarikh*—Transl., W. H. Lowe Calcutta, Vol. II, 1924, Page 28.)

३. *Muntakhabut-Tawarikh*— Abdul Qadir Badauni. Transl. Wolseley Haig, Calcutta, 1925, Volume III, Page 8.

४ A-IN-I-AKBARI—Abul-Fazl-Allami- Transl. H- Blochmann R d by D C Phillott Royal Asiatic Society of Bengal Calcutta 1939 Page 509

बनाये और विलम्ब कर दिया जिससे मुहम्मद गौस का वहाँ रहना कठिन हो गया और वह ग्वालियर चले गये जहाँ उनके कुटुम्ब का अपना घर था। बादशाह अकबर बैरमखां के इस दुर्व्यवहार से असन्तुष्ट हो गया।[1]

बदायूंनी ने भी कहा है कि मुहम्मद ग़ौस आगरा से ग्वालियर चले गये।[2]

मुहम्मद ग़ौस की मृत्यु

९६७ में बैरम खां को मार डाला गया।[3] हिजरी ९६७ से ९७० हिजरी (१५५९ ई०-१५६२ ई०) के बीच शेख मुहम्मद ग़ौस आगरे में पुनः वापस आये[4] और यहीं उनकी ९७० हिजरी (१५६२ ई०) में मृत्यु हुई। इसका उल्लेख बादायूंनी,[5] और 'मआसिरुल उमरा' के लेखक शहनवाज खां भी करता है।[6] अकबर ने उनका मकबरा ग्वालियर में बनवाया। वहीं इनको दफ़न किया गया था।[7]

बादशाहों के प्रति दृष्टिकोण

ऊपर के विवेचनों से स्पष्ट हो जाता है कि शेख मुहम्मद ग़ौस का बादशाहो से सम्बन्ध बराबर बना रहा। बाबर, हुमायूं, अकबर सभी मुग़ल बादशाहों की उनके ऊपर श्रद्धा थी। जब शेरशाह बादशाह हुआ तो उन्हें गुजरात जाना पड़ा वहाँ का बादशाह सुल्तान मुहम्मद उनके ऊपर आस्था रखता था। शेरशाह से पराजित होने पर हुमायूं ने जो पत्र मुहम्मद ग़ौस को लिखा था वह बड़ा मार्मिक है। 'मआसिरुल उमरा' के लेखक ने यह पत्र उद्धृत किया है। हुमायूं का पत्र इस प्रकार है। "आदाब और हाथ चूमने के बाद प्रार्थना है कि सर्वशक्तिमान की कृपा ने आप और सभी दरवेशों के मार्ग प्रदर्शन द्वारा हमें दुःखों के दर्रे से निकाल कर आराम मे पहुँचाया। षड्चक्री के कारण जो हुआ है उससे हमको इससे अधिक कष्ट नहीं मिला है कि हम आपकी सेवा से वंचित हुए। हर स्वास और हर पग पर हमें ख्याल होता है कि वे राक्षस प्रकृति मनुष्य (शेरशाह तथा अफ़गान गण) उस दैवी पुरुष से कैसा

---

१. History of the rise of the Mahomedan power in India. (Original Persian of Mahomed Kasim Frishta), Transl. John Briggs, Calcutta, 1909, Volume II, Page 195.
२. मुन्तख़बुत तवारीख़—बदायूंनी, अनुवादक, डब्ल्यू० एच० लोव, भाग २, कलकत्ता १९२४, पृष्ठ २९।
३. शाह मुहम्मद ग़ौस, पृ० ७१।
४. वही—पृ० ७१
५. मुंतख़बुत तवारीख़—बदायूंनी, अनुवादक, डब्ल्यू ०एच० लोव, पृ० ६२
६. मआसिरुल उमरा—(मुगल दरबार) अनु० ब्रजरत्नदास काशी, संवत् १९९५, पृ० १५६।
७ देखिए—कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, दिल्ली १९५७ भाग ४ पृ० ५३२ ३५।

बर्ताव करेंगे। जब हमने सुना कि आप उसी समय वहाँ से गुजरात को रवाना हुए तब हमारी आशंका कम हो गई। हमें आशा है कि जैसे खुदा ने आपको उस अयोग्य के कष्ट से छुटकारा दिया है उसी प्रकार वह हम लोगों की प्रगट जुदाई को दूर कर देगा। ऐ खुदा ! हम किस प्रकार उस सिद्ध पुरुष को मार्ग दर्शन के लिए धन्यवाद दें। इन सब कष्टों के रहते, जो प्रकट मे मुझे घेरे हुए हैं, हमारे हृदय के कोष में, ऐक्य-पूजन के निवास में, तनिक भी चोट या असफलता नहीं है। आने जाने का मार्ग सदा जारी रहे और हमारी शुभेच्छाओं के कारवां के पहुँचने को खुला रहे।"[1]

शत्तारी सम्प्रदाय के संत खुलेआम राज्य और शासकों से सम्बन्ध रखते थे। अकबर का दृष्टिकोण इन सन्तों के प्रति उदासीनता का था किन्तु जहाँगीर ने इनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की।[2]

'रिसाले शत्तारिया' (१७वीं शताब्दी) के लेखक शेख वहाउद्दीन ने सम्प्रदाय के १० मुख्य सिद्धान्त बताये हैं। उन्होंने वैराग्य, संतोष और एकान्त पर विशेष बल दिया। किन्तु शत्तारी सम्प्रदाय के सन्तों ने इनको कार्यान्वित नहीं किया।[3]

हिन्दुओं के प्रति दृष्टिकोण

शेख मुहम्मद गौस का दृष्टिकोण हिन्दुओं के प्रति बड़ा उदार था। बदायूंनी लिखता है कि—"शेख मुहम्मद गौस का यश सृष्टि भर में व्याप्त था। मैं जाकर उनके प्रति अपना सम्मान व्यक्त करना चाहता था किन्तु जब मैंने देखा कि वे हिन्दुओं को सम्मान देने के लिए उठ खड़े होते हैं तो मैं उनके दर्शन करने का सुख संवरण कर देने को विवश हुआ।"[1] उन्होंने योग के एक ग्रन्थ 'अमृत कुण्ड' का फ़ारसी अनुवाद किया था इससे भी उनका दृष्टिकोण पता चलता है।

गुजरात और आगरा के उल्मा ने उनका विरोध किया। उसका एक कारण हो सकता है कि हिन्दुओं के प्रति उनका उदार दृष्टिकोण भी हो। इस बात का संकेत

---

१. **मआसिरुल उमरा**—(मुगल दरबार भाग १) अनु० ब्रजरत्नदास, काशी, संवत् १९५५, पृ० १५८-१५९।

२. विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए—The Shattari saints and their attitude towards the state. *Khaliq Ahmad Nizami—Medieval India Quarterly*—October 1950, Volume I, No. 2, pp. 56-70

३. वही, पृ० ६०।

4. I wished to pay my respects to him, but when I found that he rose up to do honour to Hindus I felt obliged to forego the pleasure.
Muntakhabut-Tawarikh—W. H. Lowe, Calcutta 1924, Volume II page 62

बदायूंनी के उपर्युक्त कथन से मिल जाता है। बदायूंनी स्वयं कट्टरपंथी लेखक और आलिम थे।

शेख मुहम्मद ग़ौस का कुटुम्ब

प्रोफेसर मुहम्मद मसूद अहमद ने अपनी पुस्तक 'शाह मुहम्मद ग़ौस' में उनकी चार शादियों और उनसे ९ पुत्र और ५ पुत्रियों के उत्पन्न होने का उल्लेख किया है।[1] किन्तु उन्होंने इसके लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं दिया है। उनके कुछ पुत्रों का वर्णन बदायूंनी तथा 'मआसिरुल उमरा' के लेखक ने दिया है।

शेख अब्दुल्ला—"यह ग्वालियर के शत्तारी शाखा के बड़े शेख मुहम्मद ग़ौस का योग्य पुत्र था। उस फकीर के लड़कों में अब्दुल्ला और जियाउल्ला अति प्रसिद्ध हुए। शेख अब्दुल्ला शेख बदरी के नाम से मशहूर हुआ। दावत और तकसीर की विद्या मे यह अपने पिता का शिष्य था और उपदेश देने तथा मार्ग प्रदर्शन में पिता का स्थानापन्न हुआ। भाग्य से फ़क़ीर और दरवेश होते हुए यह शाही नौकरी में घुसा और एक बडा सर्दार हो गया। चढ़ाइयों में इसने बराबर अच्छी सेवा की और युद्ध में प्राण को कुछ भी नहीं समझता। अकबरी राज्य के ४० वें वर्ष मे यह एक हजारी मंसब तक पहुँचा। कहते हैं वह तीन हजारी मंसब तक पहुँच कर युवावस्था में मर गया।"[2]

शेख मुहम्मद ग़ौस का ग्वालियर का मक़बरा बनाने के लिए अकबर ने शेख अब्दुल्ला को ही जिम्मेदारी सौंपी थी। उन्होंने इसको पूर्ण कराया।[3]

शेख जियाउल्ला—"शेख मुहम्मद ग़ौस के दूसरे पुत्र जियाउल्ला ने सेवा नहीं की और दर्वेश ही बना रहा। पिता के समय ही यह गुजरात गया और वजीहुद्दीन अलवी की सेवा में पहुँचा, जो विज्ञानों का विद्वान् था, कई पुस्तकों पर अच्छी टीकाएँ लिखी थीं और इसके पिता का शिष्य था। उसके यहाँ इसने विज्ञान सीखा और पत्तन में शेख मुहम्मद ताहिर मुहद्दिस बोहरा से हदीस सीखा। उसी समय इसने अपने पिता से सनद और स्थानापन्न होने का खिरका पाया। ९७० हिजरी में पिता की मृत्यु पर आगरे में रहने लगा और वहाँ गृह तथा खानकाह बनवाया। बहुत दिनों तक अन्तिम पुरस्कार प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता रहा और सूफ़ी मत अच्छी प्रकार मानता रहा।

---

1. **शाह मुहम्मद ग़ौस**—पृ० ८३
2. **मआसिरुल उमरा या मुगल दरबार**—भाग २, अनुवादक, व्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् १९९५, पृ० १५२।
3. फजल अली शाह कृत **'कुल्लियाते ग्वालियरी'** (शाह मुहम्मद ग़ौस पृ० ७४ से उद्धृत।)

३ रमजान सन् १००५ हि० (१० अप्रैल १५९७ ई०) को मर गया।"[1] लगता है बदायूंनी उनसे प्रसन्न नहीं थे। उन्होंने 'मुंतखबुत तवारीख' में लिखा है—"यद्यपि शेख यह बहाना करते हैं कि मैं लोगों से नहीं मिलता पर यह वास्तव में आत्म प्रचार है। वह आगरा में रहते हैं और अपने पिता की भाँति ऊपरी वेशभूषा में फकीर जैसे रहते हैं किन्तु वह अपना समय ऐश व आराम में व्यतीत करते हैं। वह खिर्का पहनकर रहते है और विचित्र प्रकार की बाते करते हैं जो छलपूर्ण और भोली होती हैं।"[2] बदायूंनी ने अपना आक्रोश अन्यत्र भी प्रकट किया है।[3]

शेख जियाउल्ला अपने सत्संग में हमेशा 'सत्य ज्ञान' की बातें करते हैं और ईश्वर से एकता के लिए ध्यान लगाने और सूफियों के वैराग्य के अतिरिक्त और कुछ नही कहते। किन्तु कौन जानता है कि उनकी निजी राय क्या है? और अपने अधिकारों की सीमा वह कहाँ तक रखेंगे?"[4]

शेख इस्माइल—शेख इस्माइल मुहम्मद गौस के एक अन्य पुत्र थे जो गुजरात मे रहते थे। जहांगीर ने इनसे भेंट की थी और पाँच सौ रुपये दिये थे। जहाँगीर स्वयं कहता है "सूर्यबार १४वीं को शेख मुहम्मद गौस के पुत्र शेख इस्माइल को एक खिलअत और पांच सौ रुपये दिये।"[5]

मुहम्मद गौस के सम्बन्धी का वेश्या से प्रेम

बदायूंनी ने शेख मुहम्मद गौस के एक सम्बन्धी की एक कहानी दी है जो एक वेश्या से प्रेम करने लगा था। "ग्वालियर में शेख मुहम्मद गौस के अजीज़ों में एक नौजवान शेखज़ादा था जो पाकबाज और रास्तेरुई में मशहूर था। आगरे में वह एक तवायफ पर आशिक हो गया। यह खबर शहनशाह को मिली तो उन्होंने इस गानेवाली को एक मुसाहब मकबूल खां के हवाले कर दिया।"[6]

इसके बावजूद आशिक सादिक अपने महबूब को निकाल लाया। बादशाह ने शेख ज़ियाउल्ला के ज़रिये इन दोनों को दरबार में बुलाया और निकाह कर देना

---

१. **मआसिरुल उमरा**—भाग २ हिन्दी अनुवाद, ब्रजरत्नदास, पृ० १५२-१५३
२. विस्तृत विवरण देखिए—**मुन्तखबुत तवारीख**—बदायूंनी, अंग्रेजी अनुवाद, वुलज़ली हेग, कलकत्ता, १९२५, पृ० १८२।
३. **वही**—देखिए, पृ० १७७ से १८२ तक।
४. **वही**—पृ० १७७।
५. **जहांगीर का आत्मचरित**—अनु० ब्रजरत्नदास, काशी, संवत् २०१४, पृ० ५०१।
६. अब्दुल कादिर बदायूंनी, **मुन्तखबुत तवारीख**, (उर्दू) पृ० ३९१, शाह मुहम्मद गौस, पृ० ९४ पर उद्धृत।
इसके लिए डब्ल्यू० एच० लोव कलकत्ता १९२४ का भी अनुवाद देखिए, पृ० १२२ २३

चाहा। लेकिन शेख मौसूफ ने इससे इख्तलाफ़ किया। शेखजादा इस मुखालफ़त की ताब न ला सका और खंजर खींचकर अपना काम तमाम कर लिया।[1] बदायूंनी लिखते हैं "इसकी तजहीज़ और तकफ़ीन पर उल्मा में बड़ा अख्तलाफ़ पैदा हो गया था। शेख जियाउल्ला का कहना था कि हदीस शरीफ 'मनइश्क़ व अफ़ व कुतुमशम मात शहीदन' के मुताबिक वह शहीदे इश्क है। इसलिए इसको शहीद की शान से दफनाना चाहिए।"[2]

शेख मुहम्मद ग़ौस की कृतियाँ

मुफ़्ती गुलाम सरवर लाहौरी ने 'खज़ीनुतुल आसफिया' में लिखा है— "व शेख रा तसानीफ़ बेसियारतन मनजुम्ला आन किताब जवाहिरे खम्सा व औरादे गौसिया व बहरुल हयात मशहूर बूद।"[3] अर्थात् शेख मुहम्मद ग़ौस ने बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'जवाहिरे खम्सा' और 'बहरुल हयात' अधिक मशहूर हैं। मुहम्मद ग़ौसी शत्तारी ने मुहम्मद ग़ौस की निम्नलिखित पुस्तकों का उल्लेख किया है।

(१) जवाहिरे खम्सा, (२) औरादे ग़ौसिया, (३) जमायर, (४) बशायर, (५) बहरुल हयात, (६) कुल्लियाते मखज़न, (७) कंज़ालावहदा।[४]

जवाहिरे खम्सा

इसकी रचना शेख मुहम्मद ग़ौस ने उस समय की थी जब वे चुनार मे रियाजत कर रहे थे। यह हिजरी ६२६ में पूर्ण हुई थी। कहा जाता है कि बाद में जब वह गुजरात गये तो इस ग्रन्थ में काफी संशोधन किया। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ इडिया आफिस लाइब्रेरी लंडन, फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता, तथा बीजापुर मे प्राप्त होती हैं। यह ग्रंथ मूल अरबी में है। इसका फारसी अनुवाद भी हुआ था।

'इन्साइक्लोपिडिया आफ इस्लाम' में इसे अरबी का ग्रंथ कहा गया है। जिसको बाद में फारसी में किया गया है :—

"He was the author of several Sufi works the most popular of which is Djawahir-i-khamsa in Arabic which he completed in 956 A. H. (A. D. 1549) which he subsequently rendered into Persian with additional improvements."[५]

---

१. शाह मुहम्मद ग़ौस पृ० ६४।
२. वही, पृ० ६४।
३. खज़ीनुतुल आसफिया—गुलाम सरवर लाहौरी, १८७३ ई०, पृ० ३३४ (शाह मुहम्मद ग़ौस—पृ० ६८ पर उद्धृत)
४. गुलजारे अबरार—मुहम्मद ग़ौसी (अनुवादक, फजल अहमद, १३२६ हिजरी, पृ० २६४ १०१ शाह मुहम्मद ग़ौस पृ० ६८
५ Encyclopaedia of Islam London Vol. III 1913 page 688

'जवाहिरे खम्सा' में सूफ़ी तौरतरीके पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। देवबंद से 'जवाहिरे ख़म्सा' प्रकाशित हुआ है। उसकी प्रस्तावना में इस पुस्तक का वर्ण्य विषय दिया गया है, वह इस प्रकार है[1] :—

(१) पहला जौहर—आबिदों की इबादत और उनके तरीकों के बयान में।
(२) दूसरा जौहर—ज़ाहिदों के ज़ाहिद और उनके तरीकों के बयान में।
(३) तीसरा जौहर—तरीके दावते ऐमाल में।
(४) चौथा जौहर—अज़् कारवा शुग़ाल और मशरब शत्तार के बयान में।
(५) पांचवा जौहर—बरनामुनलहक अम्ले मुहक्कीन और उनके तरीको के बयान में।

बहरुल हयात—'बहरुल हयात' १३११ हिजरी (सन् १८९४ में) रज़वी मुद्राणालय देहली से प्रकाशित हुई थी। 'बहरुल हयात'[2] शेख मुहम्मद ग़ौस की बड़ी महत्त्वपूर्ण कृति है। वास्तव में यह 'अमृत कुण्ड' का अनुवाद है। शेख मुहम्मद ग़ौस ने इसकी प्रस्तावना में लिखा है कि मुसलमानों में इस पुस्तक के प्रचार का यह कारण है कि जब सुलतान अलाउद्दीन (अलीमर्दान अलाउद्दीन खलजी १२०८-१२१२ ई०) ने बंगाल मे प्रदेश विजित किया और वहाँ इस्लाम का प्रचार हुआ तो इसकी सूचना कामरूप पहुँची। उस प्रदेश का एक प्रसिद्ध ज्ञानी जिसका नाम मकामा योगी और जो योग मे बड़ा दक्ष था आलिमों से शास्त्रार्थ करने के लिए लखनौती गया। शुक्रवार को वह जामा मस्जिद पहुँचा और वहाँ लोगों से आलिमों की गोष्ठो का पता लगाया। सभी ने काज़ी रुक्नुद्दीन समरकंदी की गोष्ठी का नाम बताया। वह उस गोष्ठी में पहुँचा और उससे पूछा "तुम किस की पूजा करते हो ?" उन लोगों ने उत्तर दिया "हम निर्दोष ईश्वर की पूजा करते हैं" उसने पूछा, "इस्लाम धर्म का चलाने वाला कौन है ?" उत्तर मिला "मुहम्मद"। योगी ने पूछा, "तुम्हारे इमाम (धर्म चलाने वाले) ने आत्मा विषय में क्या बताया है ?" आलिमों ने कहा, "आत्मा को ईश्वर का आदेश बताया है।" योगी ने कहा, "निस्संदेह मैंने ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की पुस्तकों में ऐसा देखा है।" तत्पश्चात् वह मुसलमान हो गया और इस्लाम का ज्ञान प्राप्त करने मे व्यस्त हो गया। थोड़े समय में वह सभी बातों में दक्ष हो गया। इसके उपरान्त उसने 'अमृत कुण्ड' के ज्ञान को क़ाज़ी को बताया। उसका इन्होंने हिन्दी से (संस्कृत) अरबी में भाषान्तर दस अध्यायों में किया था किन्तु टूटे-फूटे शब्द हिन्दी

---

१. **जवाहिरे-खम्सा** (अनुवादक) मिर्ज़ा मुहम्मद बेग साहब, कुतुबख़ाना रहीमिया, देवबन्द (उत्तर प्रदेश), (पुस्तक में प्रकाशन तिथि नहीं दी गयी है) पृ० १०।
२. प्रस्तुत लेखक को **'बहरुल हयात'** की प्रति नहीं मिल सकी। अतः इसके सम्बन्ध में जो भी सूचनाएँ दी गयी हैं श्री अतहर अब्बास रिज़्वी के 'हक़ायके **हिन्दी**' (नागरी प्रचारिणी सभा बनारस संवत् २०१४) की भूमिका से दी गयी है देखिए पृ० १८ से २० तक

से इस प्रकार मिला जुलाकर लिखे थे कि किसी की समझ में कुछ नहीं आता था। हज़रत ग़ौसुद्दीन (ग्वालियरी) ने कामरूप में स्वयं कुछ दिन रहकर इस ज्ञान की खोज की थी। कस्बा भड़ौंच के निवासियों के आग्रह पर इस दास (कदाचित् शेख गौस के भाई शेख बहलोल, मृत्यु १५३७ ई०) को उनका यह आदेश हुआ कि इस पुस्तक मे बहुत से ज्ञानों का उल्लेख हुआ है किन्तु उसके वाक्यों में कोई सम्बन्ध नहीं। अतः इसे पुनः लिखो। इस कारण जो कुछ वह बोलते जाते थे वह सब लिख लिया गया और इस पुस्तक का नाम 'बहरुल हयात' रखा गया। इस पुस्तक की विषय-सूची इस प्रकार है—

प्रस्तावना—अध्याय १

(१) वजूद (ईश्वर के अस्तित्व) के अनादि होने की विशेषता।

(२) आलमे सगीर (मनुष्य) का परिचय तथा नक्षत्रों का प्रभाव।

अध्याय २—आलमों की विशेषता का परिचय। इस अध्याय में दम (प्राणायाम) का सविस्तार वर्णन किया गया है। श्वास तथा इन्द्रियों को वश में रखने की चर्चा की गयी है। मनुष्य के स्वास्थ्य, विभिन्न उपचारों तथा संतानोत्पत्ति की भी चर्चा की गई है।

अध्याय ३—अन्तःकरण का परिचय तथा उसमें आने वाली प्रेरणाओं एव विचारों का उल्लेख।

अध्याय ४—'रियाज़त' (तपस्या) का परिचय तथा विभिन्न आसनों की विधि।

अध्याय ५—मनुष्य के जन्म का परिचय तथा दम (प्राणायाम) की किस्मे और उनकी विशेषता।

अध्याय ६—शरीर का परिचय तथा उसकी विशेषता।

अध्याय ७—वहम (कल्पना) का परिचय।

अध्याय ८—शरीर के रोग तथा उनका परिचय।

अध्याय ९—तसख़ीरात (पराजय)

अध्याय १०—ब्रह्मांड की उत्पत्ति, सत्व, रजस, तमस—इन तीनों गुणों का परिचय।

शत्तारी सम्प्रदाय के एक सुप्रसिद्ध शेख और लेखक मुहम्मद गौसी शत्तारी ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में जो उल्लेख किया है उसका फ़ारसी से उर्दू तर्जुमा इस प्रकार है इसमें बातिनी ऐमाल ी इश्ग़ाल पास ये इन्फास का जिक्र और नीज इन अमोर के सिवा और भी एकसाम रियाजत बयान किये गये हैं जिनकी बदौलत रूही

लश्कर को जिस्मानी सिपाह पर फतह मिलती है। योगियों और सन्यासियों की दो जमायतें, 'हुनूद के रियाज़त मंदों, गोशे नशीनों, और रहबानों की सरगिरोह हैं और इन्हीं इशगाल व अज़कार की बरकात से इस्तदराज और ख़िर्क आदात के दर्जे को पहुँचकर सायलों की ज़मीरों की चीस्तां पर इत्तला हासिल करती हैं। आपने इन तमाम मानी को संसकिरत इबारत से जो कुतुब हनूद की ज़बान है अख्ज़ करके फ़ारसी लेबास मे पहनाया है इस किताब के मफ़हूमात से जुनार तोड़कर बजाय इसके तौहीद और इस्लाम की तसबीअह गर्दन में डाल दी है। नीज़ हक़ीकी इमान की कूत से इन मफ़हूमात को तक़लीद कैद से निकालकर साहबे तहक़ीक सूफ़ियो के अजकारों—इशगाल से ततबीक़ दी है।[1]

मेराजनामा—शेख मुहम्मद ग़ौस की एक अन्य कृति है। यह पुस्तक बडी विवादास्पद रही है। मुफ्ती ग़ुलाम सरवर लाहौरी तो यहाँ तक कहते हैं "कि इसी किताब की वजह से शेरशाह सूरी शेख मुहम्मद ग़ौस से बदज़न होकर दर पे आज़ार हुआ और आपको तर्क-वतन करके गुजरात जाना पड़ा।"[2]

पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है कि गुजरात में भी उन्हें काफ़िर कहा गया और उनकी हत्या का षडयन्त्र किया गया। हो सकता है कि इस इल्जाम का एक कारण 'मेराजनामा' भी हो।

शेख अली मुतक्क़ी ने इन पर कुफ़्र का फतवा लगाया और यह फतवा जब शेख वजीउद्दीन अलवी के पास गया तो उन्होंने इसको चाक कर दिया।[3]

आगरा में 'मेराजनामा' की वजह से भी बैरमखां और शेख गदाई क्रुद्ध हुए थे। इसका संकेत बदायूंनी ने किया है।[4] इस पुस्तक को गहराई से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

औरादे ग़ौसिया—शेख मुहम्मद ग़ौस की एक अन्य प्रसिद्ध कृति है। यह पुस्तक सम्भवतः ९४९ हिजरी में पूर्ण हुई। 'औरादे ग़ौसिया' के प्रारम्भ में मुहम्मद ग़ौस ने सालिक के लिए चन्द वसीयतें लिखी हैं। वह लिखते हैं कि एक "वली कामिल की वसाया उसकी पाक़ ज़िन्दगी के तजुरबात व मशाहदात का जौहर होती है और इससे खुद इसकी सीरत की अज़मत व शौक़त का अंदाज़ा होता है।"[5]

---

१. **गुलजारे अबरार (उर्दू)**—गौसी शत्तारी, पृ० २०० (शाह मुहम्मद गौस, पृ० १२२ से उद्धृत)
२. **खज़ीनुतुल आसफ़िया**—गुलाम सरवर लाहौरी, पृ० ३३३। (शाह मुहम्मद गौस—पृ० १२० से उद्धृत)
३. **मुंतखबुत तवारीख**—(फ़ारसी) कलकत्ता, १८४६, पृ० ४४।
४. **Muntakhabut-Tawarikh**—Al.Badauni, Transl. W. H. Lowe Calcutta, 1924. Volume II, pp. 28-29.
५ शाह मुहम्मद गौस—पृ० ११४।

मुहम्मद ग़ौस की अन्य कृतियाँ 'कलीदे मखाज़न' 'ज़मायर व ब्सायर' आदि हैं। इन समस्त फ़ारसी ग्रन्थों का अध्ययन कर शेख़ मुहम्मद ग़ौस के दर्शन का स्वरूप निश्चित कर उसे मंझन के जीवन दर्शन से तुलना हिन्दी अध्येता के लिए उपयोगी हो सकता है।

शत्तारिया सम्प्रदाय का संगठन

शेख मुहम्मद ग़ौस शत्तारी सम्प्रदाय के थे और उनके प्रभाव से इस सम्प्रदाय का काफी उत्कर्ष हुआ। अब्दुल कादिर बदायूंनी ने लिखा है कि शेख मुहम्मद गौस की छत्रछाया में दिल्ली, गुजरात और बंगाल में अनेक महापुरुष उत्कर्ष पर पहुँचे और मुहम्मद ग़ौस की सिद्धि की स्मृतियाँ अभी भी हिन्दुस्तान में हैं।[1]

शेख अब्दुल्ला शत्तारी—बग़दाद के शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी (सन् १२३४) के वंशज शेख अब्दुल्ला शत्तारी से ही भारत में शत्तारी सिलसिले का प्रारम्भ समझना चाहिए। शेख मुहम्मद आरिफ़ ने इन्हें शत्तार की उपाधि दी और भारत में भेजा। भारत में सबसे पहले वह जौनपुर के सुलतान इब्राहिम शर्की के ज़माने में आये। किन्तु शीघ्र ही उनका सम्बन्ध राजदरबार से कटु हो गया उन्हें मालवा जाना पड़ा। मालवा एक छोटा सा मुस्लिम राज्य था। उसकी राजधानी मांडू में वह अपनी मृत्यु तक रहे। उनकी मृत्यु १४२८-२९ में हुई।[2]

शेख मुहम्मद ग़ौस

इस सम्प्रदाय की दूसरी बड़ी हस्ती शेख मुहम्मद ग़ौस हैं जिनका परिचय विस्तार से दिया जा चुका है।

शेख वजीहुद्दीन अलवी गुजराती

इनका उल्लेख भी पिछले पृष्ठों में हो चुका है। बदायूंनी तथा 'मआसिरुल उमरा' के लेखक ने इनका उल्लेख किया है। वे ९२१ हिजरी (सन् १५१५) में गुजरात में उत्पन्न हुए थे और बाद में शेख मुहम्मद ग़ौस ग्वालियर के शिष्य हो गये थे।[3] मुहम्मद ग़ौसी शत्तारी ने 'गुलज़ारे-अबरार' में आपके पिता का नाम शेख नसरुल्ला बताया है।[4] गुजरात में आपका बड़ा प्रभाव था। उन्होंने अहमदाबाद में एक बड़ा मदरसा कायम कराया था जो शिक्षा का बड़ा केन्द्र था। १८२०-२१ ई० तक यह मदरसा चलता

---

1. Muntakhabut-Tawarikh—Al Badauni, Wolsely Haig, Calcutta, 1925, Volume III, Page 8.
2. Sufism its Saints and Shrines in India—J. A. Subhan, Lucknow, 1960, pp. 317-18.
3. Mughals in India—D. N. Marshal, Asia Publishing House, Newyork, 1967 Vol I Page 481
४ विस्तार के लिए देखिए शाह मुहम्मद गौस पृ० १२२ से १४० तक

रहा। कई बादशाहों का जीवनकाल इन्होंने देखा और उस समय भी मौजूद थे जब अकबर ने गुजरात की विजय की।[1] जहाँगीर ने उनकी दरगाह देखी इसका उल्लेख वह अपने आत्मचरित में करता है—बुधवार २७वीं को (१०२६ हिजरी—१७१६ ई०) हम शेख वजीहुद्दीन की दरगाह देखने गये जो महल के पास थी और मकबरे के सिरे पर फातिहा पढ़ी जो दरगाह के आंगन में है। इसे सादिक खां ने बनवाया था जो हमारे पिता के मुख्य सरदारों में था। यह शेख मुहम्मद गौस का उत्तराधिकारी था। पर ऐसा उत्तराधिकारी कि गुरु उसके शिष्यत्व के विरुद्ध कहता था। शेख वजीहुद्दीन की श्रद्धा शेख मुहम्मद गौस के बड़प्पन का द्योतक है। वह इसी नगर (अहमदाबाद) में ३० वर्ष हुए कि मरे और उनके अनन्तर शेख अब्दुल्ला अपने पिता के इच्छापत्र के अनुसार स्थानापन्न हुए।[2]

मुहम्मद गौसी ने इनकी निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख 'गुलज़ारे अबरार' मे किया है।

(१) हाशिया फवायद ज़ियानिया, (२) शरह अरशाद क़ाज़ी, (३) शरह अबियात मुनहल व मा मीनी, (४) हाशिया शरह तजरीद (५) हाशिया कुतुबी, (६) शरह शम्सिया, (७) हाशिया शरह कुलमताइन, (८) शरह जाम जहाँनामा, (९) शरह कलीद मख़जन मन तशनीफ, (१०) ग़ौसुल औलिया।[3]

ग़ौसी शत्तारी के अनुसार आपकी मृत्यु ९९७ हिजरी में अहमदाबाद में हुई।[4]

सैयद ताजुद्दीन लखनवी—"वह शेख मुहम्मद ग़ौस के खलीफ़ों में थे और दावते-अस्मा में निपुण थे। वह अपनी फकीरी, वैराग्य तथा त्याग के लिए सुप्रसिद्ध थे। वह मुक्त हस्त और उदार थे। वह लखनऊ आये जहाँ उनसे वार्तालाप कर बहुत से व्यक्तियो ने सम्मान प्राप्त किया। दीक्षा देने की आज्ञा भी बहुत से लोगों ने उनसे ली। वह लखनऊ में ही मरे।"[5]

शेख-सदुल्ला (वैयाकरण)—"बदायूंनी के अनुसार बियाना पूर्वी भारत का एक जिला है (शेख सदुल्ला वही के थे)। बचपन से ही वह मुहम्मद ग़ौस की सेवा मे थे उन्होंने ग़ौस के साथ ४० दिन उपवास और दावते अस्मा में व्यतीत की। बाद तक वह इस तरह का कार्य करते रहे। उन्होंने बियाना में एक खानकाह बनायी और

---

१. Sufism, its Saints and Shrines in India—Page 329-30.
२. जहाँगीर का आत्मचरित—अनुवादक ब्रजरत्नदास, काशी, संवत् २०१४, पृ० सं० ४८७-८८।
३. गुलजारे अबरार—मुहम्मद ग़ौसी शत्तारी, (उर्दू) (१३२६हि०), पृ० ४०९ (शाह मुहम्मद ग़ौस, पृ० १४० पर उद्धृत)।
४. वही—पृ० १४०।
५ Muntakhabut Tawarikh Al.Badauni Transl Wolseley Haig. 1925 Page 43

विद्यार्थियों तथा धार्मिक जीवन व्यतीत करने वालों की कई वर्ष तक सहायता करते रहे। उन लोगों का वह आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन भी करते रहे। व्याकरण की 'वाक्य संरचना' (Syntax) शाखा में वह अपने समय में अद्वितीय थे। वह ६८९ हिजरी मे (सन् १५८१) में मरे और वियाना में अपनी खानकाह में दफनाए गये।[1]

शेख जलाल-ए-वसील—शेख मुहम्मद गौस के एक उत्तराधिकारियों में से थे। प्रारम्भिक जीवन में उन्होंने इल्म में अहमियत प्राप्त की। किन्तु बाद में फ़कीरों के गान और हाल के आनन्द में अपना सारा जीवन व्यतीत करने लगे। अकबर की उनके प्रति बड़ी अच्छी धारणा थी।[2]

कालपी के जमीली—शेख जलाल वसील के पुत्र थे और दरवेशों के गान और हाल में दिलचस्पी लेते थे। यद्यपि वह अपने पिता की भाँति आह्लाद में नहीं रहते थे, किन्तु उनमें विद्याव्यसन का अभाव नहीं था।[3] उनके भाई शेख फाज़िल अरबी के अद्भुत विद्वान् थे और उन्होंने अरबी में कुछ कविताएँ भी की हैं।[4]

बदायूंनी ने अकबर काल के कुछ शत्तारी संतों का उल्लेख किया है जिसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। इस सम्प्रदाय के मुहम्मद गौसी शत्तारी ने भी कुछ सन्तों का उल्लेख अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गुलज़ारे-अबरार' में किया है।

शेख लश्कर मुहम्मद आरिफ़—शेख मुहम्मद गौस के प्रमुख शिष्यों में थे। ९५१ हिजरी में अहमदाबाद (गुजरात) में उनके सम्पर्क में आये। सोलह वर्ष की उम्र से ही फकीरी और रहनुमाई के रास्ते लग गये। मुहम्मद गौस के साथ वह ग्वालियर आना चाहते थे किन्तु उन्होंने उन्हें गुजरात में शिष्यों को ज्ञान देते रहने की हिदायत की। अतः वह लगभग तीस साल तक अहमदाबाद में रहे। फिर ९८२ में बुरहानपुर (खानदेश) की तरफ रवाना हुए। आपकी मृत्यु हिजरी ९९३ में हुई।[5]

शेख अंसी जन्दुल्ला—वे शेख लश्कर आरिफ़ के शिष्य थे। आपके पिता सिन्ध में रहते थे। हुमायूं के समय में ये अहमदाबाद चले आये थे। उनका नाम शेख कासिम था। वह अहमदाबाद में मुहम्मद गौस के सम्पर्क में आये थे फिर बाद मे बरार चले आये। उनके पुत्र शेख अंसी जन्दुल्ला अपने ज़माने के बहुत बड़े आलिम थे। आपके निम्नलिखित ग्रंथ प्रसिद्ध है—

---

१. वही—पृ० १६०-१६१
२. वही—पृ० १६६-१६७।
3. Muntakhabut Tawarikh—Al. Badauni, Transl. Wolseley Haig, Culcutta. 1925, page 43.
४. वही—पृ० २१४।
५ गुलज़ारे मुहम्मद गौसी (उर्दू) अनुवादक फज़ल अहमद, १३२६ हिजरी पृ० ३६१ ३६२

(१) रूज्रलतुल हसीना, (हिजरी ९८९), (२) ऐनुल-मामी (हिजरी ९९७) (३) अनवारू असरार, (४) रिसाले हवास पंजगाना, (५) हाशियेवर इशारा गरीबे किताब इन्सान कामिल, (६) शरह क़सीदे बरदा आदि।

शेख अैसी जन्दुल्ला की मृत्यु १०३१ हिजरी में हुई।[1]

शेख अली शेर बंगाली—शेख मुहम्मद गौस के शिष्यों में थे। ९७० हिजरी के कुछ बाद आपका देहान्त अहमदाबाद में हुआ। वहीं इनकी समाधि है।[2]

शेख सद्रुद्दीन जाकिर—वह शेख शरी के बेटे थे और नाम मुहम्मद था। वह गुजरात में जानपानीर में पैदा हुए थे और बड़ौदा में मरे। ९५२ हिजरी से शेख मुहम्मद गौस के शिष्य हुए। अपने गुरु के साथ वे गुजरात से ग्वालियर आ गये थे और यहाँ उन्होंने 'जवाहिरे-खम्सा' को अपने जीवन में उतारा। फिर गुजरात वापस चले गये। उनकी मृत्यु ९८९ में हुई।[3]

शेख शमीउद्दीन शीरा जी—ईरान में शीराज के रहने वाले थे। बाद में हिन्दुस्तान चले आये थे और अहमदाबाद में मुहम्मद गौस से मिले थे। वे हर साल मुहम्मद गौस की समाधि के दर्शन के लिए ग्वालियर आया करते थे और रास्ते में मांडू में मुहम्मद गौसी शत्तारी के मुहल्ले में रुकते थे। सन् ९८६ हिजरी के बाद से ग्वालियर नहीं आये और ९९० हिजरी में इंतकाल फरमाया।[4]

शेख बदवुल्ला शत्तारी—आप सदैव फ़कीरी वेश में रहे। लगभग बारह साल शेख मुहम्मद गौस की सेवा में रहे। मुहम्मद गौस ग्वालियर से गुजरात गये तो वे भी साथ में गये। कुछ वर्ष कस्बा आश्ता (मालवा) में रहे। हिजरी ९७४ में मालवा में (खानदेश) पहुँचे। ९९३ हिजरी में वहीं मरे और वहीं दफ़न हुए।[5]

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि शाह मंझन—हिन्दी के सुप्रसिद्ध सूफी कवि और 'मधुमालती' के रचयिता हैं। आप शेख मुहम्मद गौस के शिष्य हुए और उनसे 'जवाहिरे-खम्सा' का अध्ययन किया और अपने जीवन में उतारा। चुनार में जो खिरक़ा मुहम्मद गौस ने धारण किया था उसे उन्होंने मंझन को दिया था। १००१ हिजरी में आप आश्ता (सारंगपुर-मालवा) में मरे। शेख मुहम्मद गौसी शत्तारी इनसे मालवा में हिजरी ९८६ में मिले थे।[6]

शेख मुहम्मद गौसी शत्तारी—ये मांडू के निवासी थे। इन्होंने ९९८ हिजरी (१५९० ई०) में 'गुलजारे अबरार' की रचना प्रारम्भ की और १०१० हिजरी

---

१. **गुलजारे-अबरार**—मुहम्मद गौसी (उर्दू) अनुवादक फजल अहमद, १३२६ हिजरी पृ० ३६१-६२।
२. **वही**—पृ० ३०९।
३. **वही**—पृ० ३३०।
४. **वही**—पृ० ३०४।
५. **वही**—पृ० ३८४।
६ **गुलजारे-अबरार**—मुहम्मद गौसी (उर्दू) अनुवादक फजल अहमद १३२६ हिजरी पृ० ३७२

(सन् १६०२) में उसे पूर्ण किया । । इसमें ५७५ सूफ़ियों की जीवनियाँ बड़े प्रामाणिक ढंग से लिखी गयी हैं । ग़ौसी शत्तारी को सन्तों से भेंट करने और उनकी रचनाओं और कार्यों के सम्बन्ध में जानने की बड़ी इच्छा रहती थी ।[१]

भारत में शत्तारी सूफ़ियों का ही एक ऐसा सम्प्रदाय है जिन्होंने योग तथा भारतीय साधना की कतिपय अन्य बातें अंगीकार कीं । भारतीय योगियों की भाँति शत्तारी साधक भी जंगलों में फलफूल खाकर रहते थे और हठयोग की साधना करते थे । शत्तारियों ने जिक्र (खुदा के गुणों को जपना) पर बल दिया जिसमें एकान्त और पवित्रता का भाव रहता है । पहले कलिमा का जप शत्तारी करते थे किन्तु अरबी, फ़ारसी और हिन्दी में भी जप किये जाते थे ।[२] हठयोग में यौगिक आसन और समाधि पर उनका विशेष बल था । शत्तारी संत उल्मा की आलोचना से बचने के लिए अपनी साधना को गुप्त रखते थे ।[3] शेख मुहम्मद ग़ौस ने संस्कृत ग्रन्थ 'अमृत कुण्ड' का "बहरुल-हयात" नाम से अनुवाद किया इसका उल्लेख किया जा चुका है । पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद भारत के सूफ़ी इब्नुल अरबी और वेदान्त के सिद्धान्तों में समानता देखने लगे थे । यद्यपि वेदान्त का उनका ज्ञान शायद अनुश्रुति पर आधारित था ।[४] शत्तारी सम्प्रदाय के सन्त इब्नुल अरबी से बड़े प्रभावित थे ।

सतरहवीं शताब्दी में शत्तारिया सम्प्रदाय का प्रभाव इंडोनेशिया तथा पूर्वी एशिया के अन्य कतिपय हिस्सों जैसे सुमात्रा और जावा में भी रहा । यहाँ इस सम्प्रदाय पर इब्नुल अरबी तथा अब्दुल करीम जिली का प्रभाव प्रबल था । यद्यपि वहाँ अब्नुल अरबी के 'मनाज़िल इन्सानिया' का सनातन इस्लाम की दृष्टि से विवेचन भी किया गया ।

> We were lofty sounds yet unuttered,
> Held in abeyance on the highest peaks of mountains
> I was in Him, and we were you and you were He.
> And all in Him was He, ask those who have attained ?[५]

---

१. विस्तृत परिचय के लिए देखिए—**मुगल कालीन भारत**, भाग २, सैयद अतहर अब्बास रिजवी, अलीगढ़, १६६२, समीक्षा पृ० ३३ ।

२. (अ) Studies in Islamic Culture in the Hindu Environment—Aziz Ahmad, Oxford, London. 1964, P. 137.

(अ) शत्तारी सम्प्रदाय और उनकी हठयोग की साधना तथा जप के लिए देखिए—**वहाबउद्दीन कृत शत्तारी रिसायले शत्तारिया**—इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ कलकत्ता और लन्दन में हैं । इसका लेखक गुजरात का था (१७ वीं शताब्दी) इस ग्रन्थ में जिक्र का विस्तार से उल्लेख है । देखिये Mughals in India—D. N. MARSHAL, Newyork. 1967. P. 98.

३. **"स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन हिन्दू इनवायरनमेंट**, पृ० १३७ ।

४ वही—पृ० १३८ ।

५. Unity and Variety in Muslim Civilization Edited by Gustave

इब्नुल अरबी की इस उपर्युक्त पंक्ति का जिसका अर्थ है "पर्वतों के उच्च शिखरों पर प्रसुप्तावस्था में रखे गये हम अव्यक्त स्वर थे। मैं उस खुदा में था, हम तुम्ही थे, और तुम्हीं खुदा थे। और उस (खुदा) में जो कुछ था वही था। उनसे पूछो जिन्होंने उसे प्राप्त किया है," की भी सनातन दृष्टि से व्याख्या की गयी। यह बात इंडोनेशिया मे बराबर रही। सतरहवीं शताब्दी में अहमद कुशाशी ने इब्राहीम अलकुरानी को भारतीय सूफ़ी संत बुरहानपुर के फज़लुल्ला के एक ग्रन्थ पर सनातन इस्लामी दृष्टि से व्याख्या लिखने को कहा।[1] अब्दुल रऊफ़ ने जो अचेह् के प्रसिद्ध संत थे इंडोनेशिया मे शत्तारिया सम्प्रदाय का प्रचार किया। जिली के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इन्सानुल कामिल' की व्याख्याएं इंडोनेशिया के कट्टरपंथी लोग मक्का से मंगाते थे। पूर्वी एशिया के शत्तारियों में भी भारत की भाँति तरीका और ज़िक्र के सिद्धान्तों के साथ 'दावते अस्मा' तथा जादू तथा झाड़फूंक का प्रचार था।[2]

शत्तारिया सम्प्रदाय का दर्शन और मंझन कृत मधुमालती

औरंगजेब काल के एक विद्वान् और सूफ़ी शेख मुहम्मद इब्राहीम गज़ूरी-इलाही ने 'इरशादतुल आरफ़ीन' नामक एक ग्रन्थ लिखा था जिसमें शत्तारिया सम्प्रदाय के दर्शन की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।[3]

शेख मुहम्मद इब्राहीम कहते हैं—"शत्तारी सम्प्रदाय 'नकारात्मक' नहीं है 'स्वीकारात्मक' है। मुराक़बा (ध्यान) में निराकार को प्राप्त करना समय को नष्ट करना है। क्योंकि यह तो 'अनस्तित्व' को 'नकारात्मक' करना है। शत्तारी धर्म मे आत्म-विलयन नहीं है। 'मैं' ही 'मैं' (खुदा) 'हूँ' के अतिरिक्त इस धर्म में और कुछ नही है। एक को समझना, एक की चर्चा करना, एक को देखना और एक हो जाना यही तौहीद है। मैं ही हूं और मेरा कोई अंश नहीं है।"[4]

शत्तारी सम्प्रदाय में न तो नफ़स (वासना) का विरोध है और न मुजाहदा (तप, साधना, इन्द्रिय निग्रह) का और न इसमें फना या 'फनाउल फना' ही है। क्योंकि 'फना' में दो व्यक्तित्व होते हैं। एक वह जिसका 'फना' होता है और दूसरा वह जिसमें 'फना' होता है। यह 'तौहीद' के खिलाफ़ है। शत्तारी संत तौहीद को स्वीकार करते हैं और सभी सीढ़ियों पर तज्जलियात (अध्यात्म-ज्योति, नूरेहक़) में जात (अस्तित्व) को सिफ़त (गुण) के साथ स्वीकार करते हैं।

Von Grunebaum), Indonesia—*Mysticism and Activism*—G. W. J. Drewes, Chicago 1963, page 290.

१. वही—पृ० २९० ।

२. वही—पृ० सं० २९३, २९९, ३०० ।

३. Encyclopaedia of Islam—Edited by M. Th. Houtsma, A. J. Wensinck etc London 1934, Volume IV, p 339

४ वही—पृ० ३३९ ।

शत्तारी संत सच्चे दान देने वाले को मद्दे नज़र रखके जो कुछ मिलता है खा लेते हैं और शिकायत नहीं करते।

शत्तारियों के अनुसार अपनी ज़ात, सिफ़त, और अफ़आल को (कृतियाँ) खुदा की ज़ात, सिफ़त और अफ़आल (कृतियाँ) समझो और एक हो जाओ।" दूसरे अबरार और अख्यार (Gnostics) का जो मुजाहदात (इन्द्रियनिग्रह, तपस्या) और साधना करते हैं, यह तरीका नहीं है। दूसरे कहते हैं अपने 'नफ़स' को 'फना' की भाँति समझो और खुदा को 'बक़ा' के रूप में। अपने 'नफ़स का अबूदीयात (नित्यता) और खुदा का 'रबूबीयत' (स्वामित्व, ईश्वरत्व)।[१]

शत्तारी सम्प्रदाय का सिद्धान्त "अनलहक़" के सूत्र का अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक सख्ती से निर्वाह करता है।[२]

सारांश यह है कि शत्तारी सम्प्रदाय मे केवल एक सत्ता की ही स्थिति मानते हैं। खुदा, खल्क और पैगम्बर और बंदा में कोई अन्तर नहीं है। मंझन ने अपनी 'मधुमालती' में अनेक स्थलों पर इस प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। एक स्थान पर मंझन कहते हैं "मैं ऊँचे स्वर से पुकार कर कहता हूँ सब जगत के लोग सुनें। प्रकट रूप में जो मुहम्मद है, गुप्त रूप में भी वही जानिये।"[३]

मंझन अन्यत्र यह कहते हैं एक ही है दूसरा कोई नहीं। उसके ही मुख मे समस्त सृष्टि जाती है।[४] तीन भुवन में घटघट में उसी का रूप विलास है। कहो एक जीभ उसकी स्तुति कैसे करे?[५] सकल सृष्टि में तूं ही प्रकट हो। तूं ही सरबस हो। दूसरा कोई नहीं।[६] अलख निरंजन कर्त्ता एक है उसके अनेक रूप और भेस है। वह कहीं भिखारी रूप में है तो कहीं नरेश रूप में।[७]

---

१. वही—पृ० ३३९।

२. Shorter Encyclopaedia of Islam—H. A. R. Gibb and J. H. Kramers, London, 1961, p. 534.

३. ऊँचे कहौं पुकारि कै जगत सुनै सभ कोइ।
परगट नाउं मुहम्मद गुपुत जो जानिय सोइ॥ —मधुमालती, ८।६,७

४. एक अहै दोसर कोइ नाहीं। तेही सभ सिस्टि रूप मुख जाहीं।
—मधुमालती, ६।२

५. तीन भुवन घट घट महँ अनबन रूप बेलास।
एक जीभि कहु ताहि कै कैसे अस्तुति करै हवास॥ —मधुमालती, १।६,७

६. सकल सिस्टि महं परगट तुहीं। सरबस तुइं दोसर कोइ नहीं।
—मधुमालती, ३।१४

७ अलख निरंजन करता एक रूप बहु भेस।
कतहूं बान भिखारी कतहूं आदि नरेस मधुमालती ३६७

ध्यान और समाधि लगाने की बात भी मंझन ने की है जो शत्तारी सम्प्रदाय के सन्तों की एक खास विशेषता रही है। मंझन कहते हैं—

परिहरि सिद्धि बुद्धि औ ग्यानां। कथा बेबरजित लावहि ध्यानां।
तौ समाधि लौ लागै जहां। आपु अपान पाव तू तहां।
निरगुन जहाँ निरंजन सूनां। तहां आपु सों आपु बिहूनां।
ग्यान पार जहवां अग्यानां। तहां आपु सेउं आपु अयाना।
सहज समाधि लाउ तैं तहां। आपु सेउ आप पाउ सुधि जहां।
सहज अलोलै लाइलै, निगम गोफ रह सूति।
जहां न तैं औ कोऊ औ एकौ करतूति॥

—मधुमालती, छंद ३३

मंझन कृत 'मधुमालती' में मधुमालती अपनी मां के मंत्रबल से पक्षी बन गयी है।[1] बाद मे मंत्रबल से वह स्त्री रूप में पुनः परिवर्तित हो जाती है।[2] शत्तारी सम्प्रदाय के संतों का तंत्रमंत्र में विश्वास था। मंझन की कथा में मंत्र का चमत्कार साम्प्रदायिक मान्यता के विपरीत नहीं हैं। यद्यपि मंत्र का प्रयोग 'चंदायन' तथा 'मृगावती' में भी है।[3] अपनी विचारधारा में मंझन शत्तारी सम्प्रदाय से किस अंश तक प्रभावित हैं इसका गंभीर अनुसंधान अपेक्षित है।

---

१. तब चिरवा भर लैकै पढ़ि छिरकेसि मुख पानि।
लागत खिन मधुमालति पंछी होइ उड़ानि। —मधुमालती, ३५२।६,७

२. रूपमंजरी पढ़ि कै छिरका मधुमालति मुख नीर।
पहिलइं रूप भई बर कामिनि परिहरि पंखि सरीर।
—मधुमालती, ३६३।६,७

३ (अ) 'चंदायन' में गारुड़ी मंत्रबल से चंदा को जीवित करता है।
बेलि मंतरू छिरकेसि लइ पानी। उतरा बिसु चांद अंगिरानी।
—चांदायन ३२७।४

'चांदायन'—डा० माताप्रसाद गुप्त, आगरा, १९६७।

(आ) कुतुबन कृत 'मृगावती' में भी 'पारावत भवन खण्ड' में कबूतर स्त्री का रूप धारण कर लेते हैं और वे मंत्रबल से शैया मँगा लेती हैं। कुतुबन सुहरवर्दिया सम्प्रदाय के थे।
बहुरि मंत्र बोलिन्हि दुइ बोला सेज संवरि चलि आइ।
अइस न जानिअ को लै आवा दहुँ को गवा बिछाइ।
—मृगावती, १८५।६,७

डा० माताप्रसाद गुप्त का संस्करण, आगरा, १९६८।

१३

मंझन कृत 'मधुमालती' में प्रेम और दर्शन

मंझन ने अपने काव्य 'मधुमालती' में साधक और साध्य के बीच एकत्व स्थापित करने की चेष्टा की है। विधि (खुदा) खल्क (सृष्टि) जीव और मुहम्मद वस्तुतः एक ही हैं, इस मत की स्थापना वह करना चाहते हैं। अतः उनका प्रेम और दर्शन भी उनके अन्य पूर्ववर्ती सूफी कवियों से भिन्न हो गया है। प्रस्तुत निबन्ध मे उनके प्रेम और दर्शन की एक रूपरेखा दी जा रही है।

परम तत्त्व

एक परमेश्वर अनेक भावों में हैं, वह एक रूप है पर उसने बहुत से रूप धारण किये हैं।[1] तीन लोकों में जहाँ तक स्थान है, वह भिन्न-भिन्न रूप धारण कर भोग रहा है।[2] वह बिना स्थान के है पर सर्वत्र विलसता है। वह गोसाईं निर्गुण और एक ओंकार है।[3] वह गुप्त रूप है और सर्वत्र प्रगट भी है। वह रूपहीन है किन्तु उसके रूप भी बहुत से हैं।[4] त्रिभुवन को आपूर्ण कर एक ज्योति सर्वत्र है उसकी ज्योति की भिन्न-भिन्न मूर्तियाँ हैं और उसके भिन्न-भिन्न नाम हैं।[5]

---

१. एक अनेग भाउ परमेंसा। एक रूप काछें बहु भेसा।
मंझन कृत 'मधुमालती'—सम्पादक डा० माताप्रसाद गुप्त, मित्र प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, १९६१। 'मधुमालती' के समस्त उद्धरण इसी पाठ से लिये गये हैं।

२. तीनि लोक जहवाँ लहि ठाईं। भोग कँ अनबन रूप गोसाईं।
—मधुमालती, २।२

३. बाजु ठाउं बेरसै सभ ठाईं। निरगुन एक ओंकार गोसाईं।
—मधुमालती, २।४

४. गुपुत रूप परगट सभ ठाईं। बाझु रूप बहु रूप गोसाईं।
—मधुमालती, २।५

५. त्रिभुवन पूरि अपुरि कँ एक जोति सभ ठाउं।
जोति हि अनबन मूरति मूरति अनबन नाउ मधुमालती २ ६ ७

वह लोक में बहुत से देशों में समाया हुआ है।[1] वह चारों युगों में प्रकट रहा है।[2] वह दस दिशाओं में प्रकाश रूप में प्रत्यक्ष है। वह सबमें लीन होते हुए भी सबसे पृथक है।[3] जो अपना चित्त उसमें लगाता है, विधाता उसको अपना गुप्त रूप दिखाता है।[4] वह सर्वव्यापी है और गुप्त और प्रकट दोनों रूपों में सभी स्थानो मे विलस रहा है। दूसरा कोई नहीं है, न हुआ और न होगा।[5] वह अलख निरंजन है, एक रूप है, अनेक वेश में है। वह कहीं भिखारी है, कहीं नरेश है।[6] तीन भुवन और घट-घट में उसका रूप है, उसकी स्तुति एक जिह्वा नहीं कर सकती।[7] वह प्रेम, प्रीति और सुख निधि का दाता है।[8] उसका रूप यम का भी है।[9] वह अन्नदाता तथा जगत का कर्ता और हर्ता है।[10] वह दयालु है।[11] ज्ञान और मति के परे भी है।[12]

---

१. जो बहु भेसन लोक समानां। सो कैसें कै जाइ बखानां।
—मधुमालती, ४।१

२. चारिहुँ जुग परगट न छुपाना। बिरला कौनहुँ जानि पिछाना।
— मधुमालती, ४.३

३. परगट दसहुँ दिसा उजियारा। सरबलीन पै आपु निरारा।
—मधुमालती, ४।४

४. जेइं अपुनां निजु ओहि चित लावा। विधि ओहि पुनि वह गुपुत देखावा।
—मधुमालती, ४।५

५. गुपुत रहै परगट जग बेरसै सरब बियापक सोइ।
दूजा कोइ न आहै और भवा नहिं होइ। —मधुमालती, ४।६,७

६. अलख निरंजन करता एक रूप बहु भेस।
कतहूँ बान भिखारी कतहूँ आदि नरेस॥ —मधुमालती, ३।६,७

७. तीनि भुअन घट घट महं अनबन रूप वेलास।
एक जीभि कहु ताहि कै कैसे अस्तुति करै हवास। —मधुमालती १।६,७

८. प्रेम प्रीति सुख निधि के दाता। दुइ जग एकोंकारि विधाता।
—मधुमालती, १।१

९. करता करै जगत जेत चाहै। जमु था जंनु रहै जमु आहै।
—मधुमालती, २।१

१० जगत क अन अहार कर दाता। करता हरता एक विधाता।
—मधुमालती, ३।४

११. दया करै जौ देव दयाला। अलप दिनन्ह महं मिलै सो बाला।
मधुमालती, २४०।३

१२. ग्यान पंखि कर गम जहवाँ लगि औ मति कर पैठार।
तहवां लगि ते गमनब आगें को पै संभार॥ —मधुमालती, ५।६,७

मुहम्मद और परमतत्त्व का सम्बन्ध

मंझन कहते हैं—गुप्त विधाता को सभी जानते हैं किन्तु उसके प्रकट रूप मुहम्मद को कोई नहीं जानता।[१] मुहम्मद मूल हैं और सारा संसार शाखा है।[२] वह शरीर हैं और सब जगत् उनकी परछाँही है।[३] जो अलख है और जिसके पार कुछ दिखाई नही पड़ता, उसी विधाता का रूप मुहम्मद ने धारण किया है।[४] मंझन यह भी कहते हैं कि मैं ऊँचे पुकार-पुकार कर कहता हूँ, जगत के लोग सुनें। प्रकट में जिसका नाम मुहम्मद है, गुप्त रूप में भी उसी को जानिए।[५] रूप का नाम ही मुहम्मद है। विधाता और मुहम्मद दोनों एक ही कला हैं, इन दोनों को भिन्न अर्थ में नही जानना चाहिए।[६]

विधाता मुहम्मद के विरह में प्रकट हुआ।[७] वह स्वयं शरीर धारण कर सृष्टि में आया और समस्त सृष्टि में उसका भाव है।[८] उसकी ज्योति सर्वत्र प्रकट है। सृष्टि में मुहम्मद का नाम दीपक है।[९] उसके लिए ही दैव ने सृष्टि उत्पन्न की और प्रेम की दुन्दुभी संसार में बज उठी।[१०] मुहम्मद का नाम त्रिभुवन का राजा है। उसी के लिए विधाता के मन में सृष्टि की चाह हुई।[११]

---

१. करता गुपुत सभैं पहिचाना। प्रगट मुहम्मद काहुँ न जाना।
मधुमालती, ८।३

२. मूल मुहम्मद सभ जग साखा। विधि नौ लाख मटुक सिर राखा।
—मधुमालती, ८।१

३. ओहि पटतर दोसर कोइ नाहीं। वह सरीर यह सभ परिछाहीं।
—मधुमालती, ८।२

४. अलख लखिय जेहि पार न कोई। रूप मुहम्मद काछें सोई।
—मधुमालती, ८।४

५. ऊँचे कहौं पुकारि कै जगत सुनै सभ कोइ।
परगट नाउं मुहम्मद गुपुत जो जानिय सोइ। —मधुमालती, ८।६,७

६. रूप क नाउं मुहम्मद धरा। अरथ न दोसर एकै करा।
—मधुमालती, ८।५

७. सुनहूँ अब तेही कै बाता। परगट भा जेहि बिरह विधाता।
—मधुमालती, ७।१

८. सईंहि सरीर सिस्टि जौ आवा। औरि सिस्टि सभ ओंहि कर भावा।
—मधुमालती, ७।२

९. उहई जोति प्रगट सभ ठाऊँ। दीपक सिस्टि मुहम्मद नाऊँ।
—मधुमालती, ७।३

१०. ओहि लगि दइय सिस्टि उपराजी। त्रिभुवन पेम दुँदुभी बाजी।
—मधुमालती, ७।४

११ नाउ मुहम्मद त्रिभुवन राऊ ओहि लागि भएउ सिस्टि कर चाऊ
मधुमालती, ७।१

मुहम्मद के चार मित्र

मंझन ने पैगम्बर मुहम्मद साहब के चार मित्रों का भी उल्लेख किया है। हिन्दी के सूफ़ी कवि मौलाना दाऊद ने 'चंदायन' (१३७६ ई०), कुतुबन ने 'मृगावती' (१५०३ ई०) तथा मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' (१५४० ई०) में भी चार मित्रों का वर्णन किया है।[1] मंझन का उल्लेख कुछ विशद् रूप में है। उनके अनुसार अबूबक्र ने सतगुरु (मुहम्मद) के वचनों को हृदय में मंत्र के रूप में जाना।[2] उमर न्याय के राजा थे जिन्होंने विधि के कार्य के लिए पिता और पुत्र का हनन किया।[3] उसमान ने वेद (कुरान) का भेद जाना।[4] चौथे अली थे जिन्होंने खड्ग दान द्वारा दुनिया को वश में किया और जिन्होंने आदि शास्त्र (हदीसें) का संग्रह किया। प्रगट रूप में उन्होंने कर्म की साधना की और गुप्त हृदय में कर्तार की साधना की।[5] इन चार मित्रों के विभिन्न गुणों का उल्लेख कर सूफ़ी कवि विशेपकर मंझन एक आचार-संहिता स्थापित करते हुए प्रतीत होते हैं। सतगुरु (मुहम्मद) के वचनों का पालन, परमेश्वर के कार्य के लिए परिवार तक का हनन, वेद (कुरान) का अध्ययन तथा प्रत्यक्ष रूप मे कर्म तथा अन्तर्मन से कर्तार की साधना, धर्म पथ के लिए आवश्यक है।

सृष्टि और जीव

मंझन कहते हैं—हे स्वामी, तुम्हारा जोड़ा दूसरा नहीं है। सृष्टि तुम्हारे मुख और रूप के लिए दर्पण है।[6] तू अकेला है, तुम्हारे बराबर कोई दूसरा नहीं है, तुम्हारे ही मुख में सृष्टि के सभी रूप चले जाते है।[7] समस्त सृष्टि उसी का भाव है।[8] प्रेमी

---

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान—डा० श्याम मनोहर पांडेय, इलाहाबाद १९६१, पृ० २५७

२. अब सुनु चहूँ मींत कै बाता। सत नियाउ सास्तर के दाता।
प्रथमहि अबाबकर परवानां। सतगुर बचन मंत जिय जाना।
—मधुमालती, ९।१,२

३. दूजें उमर नियाउ के राजा। जेइं सुत पितैं हना बिधि काजा।
—मधुमालती, ९।३

४. तीजें ठाउं राउ उसमाना। जेईं रे भेद वेद का जाना। —मधुमालती, ९।४

५. चौथें अली सिंघ बहु गुनी। दान खरग जेइं साधी दुनी।
सत्त आदि सास्तर कर अउर रहे संचारि।
परगट करम पै साधे गुपुत हियें करतार॥ —मधुमालती, ९।५,६,७

६. दोसर ना कतहूँ तुव जोरा। दरपन सिस्टि रूप मुख तोरा।
—मधुमालती, ६।४

७. एक अहै दोसर कोइ नाहीं। तेहि सभ सिस्टि रूप मुख जाहीं।
—मधुमालती, ६।२

८ सदहिं सरीर सिस्टि जौ आवा औरि सिस्टि सम मोहि कर भावा।
, ७२

व्यक्ति सृष्टि के गृह में दीपक है। तुम कभी जीव को देह न समझो।[1] मंझन कहते हैं, ऐ जीव ! तू सागर है, सारी निधियों से पूर्ण है। गर्व में पड़ कर तू क्यों मरता है तुम्हारे मुख से त्रिभुवन में प्रकाश है। सारी सृष्टि तुम्हारे मुख के लिए दर्पण है। तुम्हारी ज्योति से मृत्युलोक, पाताल और आकाश सर्वत्र प्रकाश है। समस्त सृष्टि में तुम्हीं प्रकट हो, तुम्हीं सर्वस्व हो, दूसरा नहीं।[2]

स्पष्ट है, मंझन जीव का परमतत्व से एकत्व स्थापित कर देते हैं। परमेश्वर (खुदा), मुहम्मद, जीव, सृष्टि सभी एक ही हैं। एक ही तत्व के नाना रूप हैं। परमेश्वर चारों युगों में अकेला है और अपने आत्मज्ञान (अपान) से अनेक रूपों में खेलता है।[3] मधुमालती मनोहर से एक स्थान पर कहती है रूप मेरा है, तुम्हारा घट दर्पण है।[4] मनोहर कहता है, ऐ बालिका ! यदि तुम दर्पण लेकर देखोगी तो अपने दुःख से दुखी हो जाओगी।[5] औरों को तुम मुख दिखाती हो वैसे ही तुम दर्पण लेकर देखो कि तुम्हारे दुख से सारा संसार किस प्रकार दुखी है।[6]

एकत्व के दर्शन की स्थापना रखते हुए भी मंझन परमतत्व और उसके विभिन्न रूपों में प्रकार-प्रकारी भाव या अंश-अंशी भाव का सम्बन्ध स्थापित करते

---

१. तुइं दीपक तेहि सिस्टि के ग्रेहा। कबहुँ जीउ जनि जानसि देहा।
—मधुमालती, ३०।५

२. तैं जलनिधि सब निधि का भरा। काहे मरसि गरब बस परा।
तोर बदन तिरभुवन अजोरा। सकल सिस्टि मुख दरपन तोरा।
तोरिय जोति सकल परगासा। मितुलोक पाताल अगासा।
सकल सिस्टि महँ परगट तुहीं। सरबस तुइं दोसर कोइ नहीं।
जो कोइ खोव सोइ (पैं) जोवा। सो का जोइ जेहि नहि किछु खोवा।
कौन सो ठाउं जहाँ तैं नाहीं तीनि भुवन उजियार।
निरखि देखु तैं सरबस पूरे सब ठां तोर बेवहार।
—मधुमालती, छन्द, ३१

३. त्रिभुवन चहुँ जुग एक अकेला। आपु अपान रूप बहु खेला।
—मधुमालती, ३।५

४. रूप मोर घट दरपन तोरा। मैं सूरुज तुइं जगत अंजोरा।
— मधुमालती, १२२।५

५. जौ दरपन लै देखसि बारी। अपनेइं दुख भै जासि दुखारी।
—मधुमालती, ४२६।१

६. बदन देखावहि और कहं दरपन लै सइं देखु।
दहुँ तोरें दुख कस दुखी सम जग देखि बिसेखु
मधुमालती ४२६।६-७

हैं। मधुमालती कहती है, "तू समुद्र है, मैं तेरी लहर हूं। तू सूर्य है और मैं प्रकाशमय किरन हूं। मैं शरीर हूं, तू प्राण है। एक ही ज्योति दो भावों में परिलक्षित हो रही है।"[1] मधुमालती यह भी कहती है, "जैसे ज्योति रत्न और नग में होती है, मैं तुम्हारा और तुम मेरे सार हो। रत्न और ज्योति की भांति हम दोनों हैं। हमें पृथक करने में कौन समर्थ हो सकता है?"[2] मनोहर भी एक स्थान पर अपने और मधुमालती के सम्बन्धों का उल्लेख करता है और कहता है, "तू और मैं दोनों एक संग रहते थे और सदैव एक देह में निवास करते थे। तुम और मैं दोनों एक शरीर थे। दोनों की मिट्टी एक नीर से सानी गई थी। एक जल दो धाराओं में बह रहा है। एक जीव है, उनका दो घरों में संचार हुआ है। एक अग्नि दो स्थानों पे जल रही है। एक ही ने हम दोनों को अवतरित किया है। एक ही ज्योति है, एक ही रूप है, एक ही प्राण है, एक ही देह है, यदि अपने आपको ही कोई देना चाहता है तो उसमें क्या सदेह है?"[3] राजकुंवर एक स्थान पर यह भी कहता है, "तुम शरीर हो और मैं तुम्हारी

---

१. तैं जौं समुंद लहरि मैं तोरी। तैं रवि मैं जग किरनि अंजोरी।
मोहि आपुहि जनि जानु निरारा। मैं सरीर तुइं प्रान पियारा।
मोहि तोहि को पारै बेगराई। एक जोति दुइ भाउ देखाई।
सभ गियान चखु देखेउं हेरी। हम तुम्ह दुहुं परिचै कब केरी।
अजहूं मोहि न चीन्हेसि बारी। संवरि देखु चित आदि चिन्हारी।
अरुझा फांद पेम कर अहा जो दुहुँ जिय केर।
होत आपु महं परिचै सइं नर घर जिउ फेरि।।

—मधुमालती, छन्द, ११८

२. निहचै मोहि तोहि अन्तर नाहीं। एक पिंड पै दुइ परिछाहीं।
मो जिउ तुम्ह घट भीतर ठाऊं। औ मोहि सों तोहि परगट नाऊं।
रूप मोर घट दरपन तोरा। मैं सूरुज तुइं जगत अंजोरा।
जैसें जोति रतन नग माहीं मैं तोहि मोहि तुइं सार।
रतन जोति ऐस मोहि तोहि को बेगरावै पार।

—मधुमालती १२२।३, ४, ५, ६, ...

३. त मैं दुवौ सदा संघ बासी। औ संतत एक देह नेवासी।
औ मैं तुइं दुइ एक सरीरा। दुइ माटी सानी एक नीरा।
एक बारी दुइ बहै पनारी। एक दिया दुइ घर उजियारी।
एक जीउ दुइ घर संचारा। एक अगिनि दुइ ठाएँ बारा।
एकै हम दुइ कै औतारे। एक मंदिल दुइ किए दुवारे।
एकै जोति रूप पुनि एकै एक परान एक देह।
आपुहि आपु जो देइ कोइ चाहै तेहि कर कौन संदेह।

छन्द, १...

परछाहीं हूँ। तुम प्राण हो और मैं तुम्हारी काया हूँ। तुम शशि हो और मैं तुम्हारा प्रकाश हूँ। मैं वृक्ष हूँ, तुम मूल हो।"[१]

मंझन की विचार-धारा का प्रेरणा-स्रोत

मंझन ने परमेश्वर, मुहम्मद और सृष्टि में जिस एकता की स्थापना की है, उसका स्रोत स्वयं इस्लामी परम्परा में भी वर्तमान है। इस परम्परा का सदैव सनातन इस्लाम से संघर्ष होता रहा है। मंसूर हल्लाज जैसे स्पष्टवक्ता को ऐसी विचारधारा के कारण ही अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा किन्तु मुसलमान साधकों के एक वर्ग ने इस प्रकार के मत को सदैव अपनाने की कोशिश की। मंझन भी उस परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं।

बायजीदबिस्तामी (८७४ ई०) भारतीय साधना प्रणाली से परिचित थे।[२] उनके गुरु अबूअली बलसिन्धी सिन्ध के थे।[3] निकलसन ने यह मत प्रकट किया है कि 'फ़ना' के सिद्धान्त का उद्गम भारतीय परम्परा में है और इसके प्रतिपादक फारस के सूफ़ी बायजीदबिस्तामी ने इसे अपने गुरु अबूअली सिन्धी से लिया होगा।[४]

भारतीय विचारधारा और बायजीदबिस्तामी के विचारों में काफी समानता है। बिस्तामी कहते हैं, "मैं हर परमेश्वर (देवता) के पास गया और उसने मुझे भीतर से पुकारा, "तू ही मैं हूँ।"[५]

---

१. राजकुँवरि सुनु बचन हमारे। सपत बचा मैं तुम्ह सो सारे।
तोहि बिनु मोहि जग जीवन नाहीं। तुम्ह सरीर मैं तुम्ह परिछाहीं।
तुम्ह सो प्रान मैं कया तुम्हारी। तुम्ह ससि मैं सो तोरि उजियारी।
प्रान कया कहं जेंउ प्रतिपारै। ससि संतत उजियारी सारै।
मैं आपुन तेहिं दिन परिहरा। जेहि दिन तोर पेम जिय धरा।
तुइं जो समुंद मैं लहरि तुम्हारी मै जो बिरिख तुइं मूल।
तोहि मोहि सपत बचा दहुँ कैसी मैं सुवास तुइं फूल॥
—मधुमालती, छन्द, १२६

2. A History of Muslim Philosophy, Edited by M. M. Sharif Otto Harrassowitz-Wiesbaden, (Germany) 1963, Page 342.
3. Hindu and Muslim Mysticism by R. C. Zaehner, London, 1960, Page 93.
4. The Mystics of Islam—R. A. Nicholson, London, 1963. Page 17.
5. "I went from God to God, until he cried from me in me, O thou I'. "Glory to me ! How great is my majesty." "When I came out of my 'self.' I found the lover and the beloved as one for in the world of thought all is one
History of Muslim Philosophy by Sharif Page 342

बिस्तामी ने अन्यत्र यह भी कहा है, "एक दिन खुदा ने मुझे उठाया और उसने मुझे अपने सामने किया और मुझसे कहा, "ऐ अबू याजीद, वास्तव में मेरी सृष्टि तुम्हें देखना चाहती है। और मैंने कहा अपनी एकता से मुझे सुशोभित करो और अपने निजत्व (I-ness) में मुझे आवेष्ठित करो और अपने एकत्व में मुझे उठा लो ताकि जब संसार के प्राणी मुझे देखें तो मुझे कह सकें, "मैंने खुदा को देख लिया है। तू ही वह है।"[1]

मुस्लिम विचारधारा में "वह तू ही है" जैसे मत को स्वीकृति मिलना कठिन था। उसकी प्रवृत्ति के अनुकूल भी इस प्रकार के मत नहीं हैं। ज़ेनर का मत यह है कि बायजीदबिस्तामी का वह तू ही है (तकूनु अंतजाक) छांदोग्य उपनिषद् के "तत् त्वम् असि" का अनुवाद है।[2] उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि बायजीदबिस्माती की अनेक उक्तियों का स्रोत मुंडक, श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों में ढूंढा जा सकता है।[3] बिस्तामी ने एक स्थान पर यह भी कहा है कि "मैं वही हूँ" का मूल भी वृहदारण्यक उपनिषद् में देखा जा सकता है।[4] मंझन के विचारों से बायज़ीद के विचारो मे समानता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

इस परम्परा के अन्य महत्त्वपूर्ण चिन्तक मंसूर हल्लाज है जिन्होंने "अनअल हक" (अहं ब्रह्मास्मि) कहा।[5] मंसूर हल्लाज ने अपने को ईश्वर का अवतार बताया। अपने शिष्यों में से एक को वह यह कहते थे "तुम नोह हो। दूसरे से से कहते थे तुम मूसा हो। फिर अन्य से कहते थे, तुम मुहम्मद हो। मैंने उनकी आत्माओं को तुम्हारे अन्दर प्रविष्ट कराया है।"[6]

---

1. Abu Yazid is reported to have said (Sarraj tells us) : Once (God) raised me up and placed me before him, and said to me. "O Abu Yazid, verily my creation longs to see thee" And I said : "Adorn me with thy unity and clothe me in thine I-ness and raise me up into thy oneness, so that when thy creatures see me, they may say. "We have seen thee (i. e. God) and thou art that.

   Hindu and Muslim Mysticism, R. C. Zaehner, Page 94.
2. Hindu and Muslim Mysticism—R. C. Zaehner. London, 1960, page 95
3. वही—देखिए—Vedanta in Muslim Dress—p. 86-109.
4. I sloughed off my self as a snake sloughs off its skin : then I looked into myself and lo, I was He.
   वही—पृष्ठ ९८.
५. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डा० श्याममनोहर पांडेय, इलाहाबाद, १९६१, पृष्ठ ५
6 A Literary History of Persia—Edward G. Browne. Vol. London 1956, Page 430

मंसूर हल्लाज से यह पूछा गया कि "अब तक तो आप अपने को रसूल (Prophet) बता रहे थे और अब आप अपना ईश्वरत्व घोषित कर रहे हैं। इसका उत्तर देते हुए मंसूर हल्लाज ने कहा, मैं अपना ईश्वरतत्व नहीं घोषित कर रहा हूँ, इसको हम फकीर लोग ईश्वरीय इच्छा के साथ पूर्ण तदाकार या तादाम्य भाव कहते हैं।"[१] मंसूर हल्लाज ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुए यह भी बताया है कि इब्न अता, जुरेरी, शिबली भी ऐसा मत रखते हैं किन्तु इब्न अता के अतिरिक्त अन्य लोग इसे प्रकट नहीं करते।[२]

बताया जाता है कि मंसूर हल्लाज भारत भी आये थे।[३] अपनी इस्लाम विरोधी विचारधारा के कारण उन्हें सन् ९२२ ई० में मार डाला गया।[४]

मंसूर हल्लाज ने अपनी पुस्तक 'किताबुल तवासीन' में एक स्थान पर इस प्रकार कहा, है "मैं वह (ख़ुदा) हूँ जिसे मैं प्रेम करता हूँ और वह जिसे मैं प्रेम करता हूँ, मैं हूँ। हम लोग दो आत्माएँ एक शरीर में हैं। यदि तुम मुझे देखते हो तो उसे देखते हो और यदि तुम उसे देखते हो तो हम दोनों को देखते हो।"[५]

मंसूर हल्लाज ने पैगम्बर मुहम्मद साहब का दैवीकरण भी किया।[६] यह बात मंझन कृत 'मधुमालती' में भी पायी जाती है (८।६, ७)

मंझन ने अपने काव्य में मंसूर हल्लाज की ओर संकेत करते हुए यह कहा है, "अपना भेद किसी को मत दीजिए। कोई बावला ही क्षति उठाकर लाभ देता है।

1. "He was questioned : "You have been proclaiming your prophetic power and now you proclaim your divinity". To which Hallaj replied. "I am not proclaiming my divinity, but it is what we mystics call the complete Unification with the Divine Will (AynAl-Jam).
   The life, Personality and Writings of Al-Junayd by Dr. Ali. Hassan Abdel-kader, London 1962, Page 46.
२. *Ibid*, Page 46
3. A Literary History of Persia by Edward G. Browne, London, 1956, Page 430
४. *Ibid*, p. 430.
5. I am He whom I love, and he whom I love is I. We are two spirits dwelling in one body. If thou seest me, thou seest Him And if thou seest Him, thou seest us both.
   The Idea of Personality in Sufism by R. A. Nicholson, London 1923 p 30
6 Hindu and Muslim Mysticism वही पृष्ठ १७५

हृदय में प्रेम के मूल को गुप्त रखना चाहिए। भेद देकर जगत में मंसूर की भाँति कौन सूली पर चढ़े ?"[1]

इस परम्परा के अन्य सूफ़ी इब्नुल अरबी (११६५ ई०) हैं। इब्नुल अरबी का मत है कि परमतत्व एक है केवल उसी का अस्तित्व है और सारी वस्तुएँ उसकी अभिव्यक्ति हैं। उनके सिद्धान्त को "वहदतुल वजूद" की संज्ञा दी गई है जिसका अर्थ है, "अस्तित्व की एकता"।[2]

इब्नुल अरबी ने कहा है—"ऐ परमेश्वर, तूने सारी वस्तुओं को अपने आप में निर्मित किया है। तुम जिसकी सृष्टि करते हो, उसमें संश्लिष्ट हो। तुम जिसकी रचना करते हो, वह तुम में शाश्वत है क्योंकि तुम सूक्ष्म और सर्वव्यापी हो।"[3] "वह गौरवशाली है जिसने सभी वस्तुओं की रचना की और वही सबका सार (आत्मा) है।"[4]

अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'फ़ुसुमुल हिक्म' में वे कहते हैं, 'यदि कोई ऐसा व्यक्ति जिसे सत्य का प्रकाश हो, किसी वस्तु का प्रकाश, जिसे उसने पहले न देखा हो, या जिसकी उपलब्धि पहले नहीं हुई हो, देखे तो यह वस्तु उसी का 'आईन' (दर्पण) है और कुछ नहीं। अतः अपनी आत्मा के वृक्ष से वह अपने ही ज्ञान का फल एकत्र करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे व्यक्ति को एक दर्पण में अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है जो अपने से पृथक् नहीं है।"[5] इब्नुल अरबी का यह भी मत है कि अपने आपको

---

१. भेद न दीजिय आपन काहू। बौरिहु कहुँ खति लै देइ लाहू।
धरै गोइ हिय पेम कै मूरी। को दै भेद जगत चढ़ सूरी।

—मधुमालती, ४५४।२, 3

2. A History of Muslim Philosophy. M. M. Sharif, Page 409.
3. 'O Thou Who hast created all things in Thyself,
Thou unitest that which Thou createst.
Thou createst that which existeth infinitely.
In Thee, for Thou art the narrow and the all embracing.

—A History of Muslim Philosophy, Page 410.

4. Glory to Him who created all things, being Himself their very essence (Ainuha). *Ibid*, 410.
5. "So, if any man of revelation should behold an object revealing to him gnosis which he did not have before, or giving him something of which he had no possession, this 'object' is his own *ain* (essence) and naught besides. Thus from the tree of his 'self' he gathers the fruits of his own knowledge, just as the image of him who stand before a polished mirror is no other than himself *Ibid* 404

मंसूर हल्लाज से यह पूछा गया कि "अब तक तो आप अपने को रसूल (Prophet) बता रहे थे और अब आप अपना ईश्वरत्व घोषित कर रहे हैं। इसका उत्तर देते हुए मंसूर हल्लाज ने कहा, मैं अपना ईश्वरतत्व नहीं घोषित कर रहा हूँ, इसको हम फकीर लोग ईश्वरीय इच्छा के साथ पूर्ण तदाकार या तादाम्य भाव कहते हैं।"[१] मंसूर हल्लाज ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुए यह भी बताया है कि इब्न अता, जुरैरी, शिबली भी ऐसा मत रखते हैं किन्तु इब्न अता के अतिरिक्त अन्य लोग इसे प्रकट नहीं करते।[२]

बताया जाता है कि मंसूर हल्लाज भारत भी आये थे।[3] अपनी इस्लाम विरोधी विचारधारा के कारण उन्हें सन् ९२२ ई० मे मार डाला गया।[४]

मंसूर हल्लाज ने अपनी पुस्तक 'किताबुल तवासीन' में एक स्थान पर इस प्रकार कहा, है "मैं वह (खुदा) हूँ जिसे मैं प्रेम करता हूँ और वह जिसे मैं प्रेम करता हूँ, मैं हूँ। हम लोग दो आत्माएँ एक शरीर में हैं। यदि तुम मुझे देखते हो तो उसे देखते हो और यदि तुम उसे देखते हो तो हम दोनों को देखते हो।"[५]

मंसूर हल्लाज ने पैगम्बर मुहम्मद साहब का दैवीकरण भी किया।[६] यह बात मंझन कृत 'मधुमालती' में भी पायी जाती है (८।६, ७)

मंझन ने अपने काव्य में मंसूर हल्लाज की ओर संकेत करते हुए यह कहा है, "अपना भेद किसी को मत दीजिए। कोई बावला ही क्षति उठाकर लाभ देता है।

---

1. "He was questioned : "You have been proclaiming your prophetic power and now you proclaim your divinity". To which Hallaj replied. "I am not proclaiming my divinity, but it is what we mystics call the complete Unification with the Divine Will (AynAl-Jam).
   The life, Personality and Writings of Al-Junayd by Dr. Ali. Hassan Abdel-kader, London 1962, Page 46.
२. *Ibid*, Page 46
3. A Literary History of Persia by Edward G. Browne, London, 1956, Page 430
४. *Ibid*, p. 430.
5. I am He whom I love, and he whom I love is I. We are two spirits dwelling in one body. If thou seest me, thou seest Him. And if thou seest Him, thou seest us both.
   The Idea of Personality in Sufism by R. A. Nicholson, London, 1923, p. 30
6 Hindu and Muslim Mysticism वही पृष्ठ १७५

हृदय में प्रेम के मूल को गुप्त रखना चाहिए। भेद देकर जगत में मंसूर की भाँति कौन सूली पर चढ़े ?"[१]

इस परम्परा के अन्य सूफ़ी इब्नुल अरबी (११६५ ई०) हैं। इब्नुल अरबी का मत है कि परमतत्व एक है केवल उसी का अस्तित्व है और सारी वस्तुएँ उसकी अभिव्यक्ति हैं। उनके सिद्धान्त को "वहदतुल वजूद" की संज्ञा दी गई है जिसका अर्थ है, "अस्तित्व की एकता"।[२]

इब्नुल अरबी ने कहा है—"ऐ परमेश्वर, तूने सारी वस्तुओं को अपने आप में निर्मित किया है। तुम जिसकी सृष्टि करते हो, उसमें संश्लिष्ट हो। तुम जिसकी रचना करते हो, वह तुम में शाश्वत है क्योंकि तुम सूक्ष्म और सर्वव्यापी हो।"[3] "व गौरवशाली है जिसने सभी वस्तुओं की रचना की और वही सबका सार (आत्मा) है।"[४]

अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'फ़ुसुसुल हिकम' में वे कहते हैं, 'यदि कोई ऐसा व्यक्ति जिसे सत्य का प्रकाश हो, किसी वस्तु का प्रकाश, जिसे उसने पहले न देखा हो, या जिसकी उपलब्धि पहले नहीं हुई हो, देखे तो यह वस्तु उसी का 'आईन' (दर्पण) और कुछ नहीं। अतः अपनी आत्मा के वृक्ष से वह अपने ही ज्ञान का फल एकत्र करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे व्यक्ति को एक दर्पण में अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है जो अपने से पृथक् नहीं है।"[५] इब्नुल अरबी का यह भी मत है कि अपने आपको

---

१. भेद न दीजिय आपन काहू। बौरिहु कहुँ खति लै देइ लाहू।
धरै गोइ हिय पेम कै मूरी। को दै भेद जगत चढ़ सूरी।
—मधुमालती, ४५४।२, 3

2. A History of Muslim Philosophy. M. M. Sharif, Page 409.

3. 'O Thou Who hast created all things in Thyself,
Thou unitest that which Thou createst.
Thou createst that which existeth infinitely.
In Thee, for Thou art the narrow and the all embracing.
—A History of Muslim Philosophy, Page 410.

4. Glory to Him who created all things, being Himself their very essence (Ainuha). *Ibid*, 410.

5. "So, if any man of revelation should behold an object revealing to him gnosis which he did not have before, or giving him something of which he had no possession, this 'object' is his own *ain* (essence) and naught besides. Thus from the tree of his 'self' he gathers the fruits of his own knowledge, just as the image of him who stand before a polished mirror is no other than himself *Ibid* 404

जान लेना खुदा को जान लेना है।[1]

सृष्टि और परमेश्वर में एकत्व के प्रतिपादन के अतिरिक्त इब्नुल अरबी ने सृष्टि को दर्पण बताया है जिसमें परमेश्वर को देखा जा सकता है।[2] परमेश्वर और सृष्टि में विशाल समुद्र और लहर का सम्बन्ध भी इब्नुल अरबी ने स्थापित करने की चेष्टा की है।[3] मंझन ने 'मधुमालती' में भी दर्पण और समुद्र तथा लहर की कल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

मंझन ने पैगम्बर मुहम्मद साहब और परमेश्वर में एकता स्थापित की है और कहा है कि जो गुप्त रूप में परमेश्वर है, वही प्रकट रूप में मुहम्मद है। इब्नुल अरबी की विचारधारा भी लगभग वैसी ही है। इब्नुल अरबी ने मनुष्य में ईश्वर का अवतार (हुलुल) और मनुष्य का ईश्वर से एकत्व (इत्तिहाद) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है।[४]

"इन्साने कामिल" (Universal Man) मुहम्मद की सत्ता है।[५] जैसे जमीन में एक बीज बोया जाता है। उसमें से तना निकलता है, तब शाखाएँ निकलती हैं, तब पत्तियाँ और फूल और अन्त में फल निकलता है। उसमें पुनः बीज होता है ऐसी ही मुहम्मद की सत्ता थी। वे ईश्वर की प्रथम सृष्टि थे। उसने अपने को मुहम्मद के

---

1. The Mujaddid's Conception of Tawhid—by Burhan Ahmad Faruqi, Lahore, 1943, p. 64.
2. Three Muslim Sages—by Seyyed Hossein Nasr, Massachusetts (U. S. A.), 1964, page 111, 112.
3. He (Ibu-Arabi) often uses symbols and similes in expressing the relation between the multiplicity of the phenomenal world and their essential unity. The one reveals Himself in the many, he says, as an object is revealed in different mirrors, each mirror reflecting an image determined by its nature and its capacity as a recipient. Or it is like a source of light from which an infinite number of lights are derived. Or like a substance which penetrates and permeates the forms of existing objects : thus, giving them their meaning and being. Or it is like a mighty sea on the surface of which we observe countless waves for ever appearing and disappearing. —A History of Muslim Philosophy—by M. M. Sharif. Otto Harrassowitz, Wiesbaden, (Germany) 1963, page 413.
4. A Literary History of the Arabs—by R. A. Nicholson, London, 1962, page 401.

५ अल हकीकत अल मुहम्मदीयाह—Three Muslim Sages, Seyyed Hossein Nasr Massachusetts 1964 page 111

रूप में पूर्णतया अभिव्यक्त किया।[1] व्यक्ति का मुख्य कार्य अपने दैवी स्वरूप का बोध करना है और पूर्ण मानव वे हैं जिन्हें फ़कीर या पैगम्बर कहा जाता है।[2] निम्नलिखित पंक्तियों में मनुष्य के सम्बन्ध में इब्नुल अरबी का दृष्टिकोण प्रगट होता है :

"वह मेरी प्रशंसा मेरी पूर्णताओं को अभिव्यक्त कर और अपने रूप में मेरा निर्माण कर करता है। और मैं, उसकी प्रशंसा उसकी पूर्णताओं को अभिव्यक्त कर तथा उसकी आज्ञा का पालन कर करता हूँ। वह स्वतन्त्र कैसे रह सकता है? जब मैं उसकी (ख़ुदा की) सहायता करता हूँ, क्योंकि दैवी विशेषताओं की मानव सम्बन्धो मे अभिव्यक्ति पाने की सम्भावना बनी रहती है। इसीलिए खुदा ने मेरा अस्तित्व बनाया। मैं उस ख़ुदा को जानता हूँ और उसको अपने ज्ञान और चिन्तन में अस्तित्व प्रदान करता हूँ।"[3]

खुदा, मुहम्मद, मानव तथा सृष्टि में जो एकत्व का सम्बन्ध इब्नुल अरबी ने कायम किया है, उसका गहरा प्रभाव भारत के शत्तारी सम्प्रदाय के संतों और मंझन पर है।

मंझन और वचन

मंझन ने 'मधुमालती' में तीन छंदों में वचन की चर्चा की है। वह कहते हैं, "ऐ वचन तुम्हारा वास कहाँ है? तुम्हारा प्रकाश कहाँ है? तुम्हारी उत्पति कहाँ से हुई? यदि वचन की उत्पत्ति मुँह से है तो मनुष्य का बोल अमर कैसे हुआ? जब वचन का स्वामी (मनुष्य) ही नहीं रहता तो वचन अमर कैसे हो सकता है? वचन को मन में बिचार कर देखो, वचन भी तुम्हारे हृदय में है, वचन भी उसका है जो सबके हृदय में वर्तमान है।'[4]

"यदि विधाता वचन का निर्माण न करता तो इसकी बात कोई कैसे सुनता? सृष्टि के प्रारम्भ में ही हरिमुख से वचन का अवतार हुआ। आदि का एक ही वचन ओंकार अच्छा और बुरा होकर सारे संसार में व्याप्त हुआ। विधाता ने जगत में वचन को श्रेष्ठ बनाया। वचन से ही पशु और मनुष्य को जाना

---

१. वही—पृ० १११
२. A Literary History of Arabs—R. A. Nicholson, Page 402-3.
३. वही—पृ० ४०२
४ अरे अरे बचन कहाँ तोर वासा। औ कहं हुतें तोर परगासा।
औ कहं हुत उतपति भइ तोरी। जहाँ नाहिं संचरति बुधि मोरी।
अचरिजु एक मोरे चित अहई। कोउ न अरथ ताहि कर कहई।
बचन केर उतपति मुँह सेऊं। मानुस बोल अम्बर दहुँ केऊं।
रहैं न बचन केर पति जहाँ। कैसें बचन अम्बर होइ तहाँ।
देखहु मनहि बिचारि कै बचन बचन हिय माँह।
बचन ऐस है ताकर जो वतत सब मा० मधुमालती, छंद २४।

जाता है। वचन के बारे में सभी कोई जानता है, वचन से ही विधाता प्रकट हुआ। किसी ने उसका स्वरूप नहीं देखा और किसी ने उसका स्थान नहीं जाना। वचन से ही त्रिभुवन नाथ स्वामी प्रकट हुआ।"[१]

"वचन जगत में अमूल्य नग बनकर आया। वचन से ही गुरु ने ग्यान दिखाया। विधाता ने चार वेदों का निर्माण किया, उनमें वचन प्रकट हुआ। वचन स्वर्ग से धरती पर आया और विधाता ने जग में वचन को पठाया।"[२]

'कुरानशरीफ़' में वचन का उल्लेख एक स्थान पर आया है। "सूरे तकवीर" में यह कहा गया है—"बेशक यह (कुरान) एक प्रतिष्ठित फरिश्ते का पैगाम (वचन) है। अर्श के मालिक के नजदीक उसका बड़ा रुतबा है।"[3] किन्तु मंझन के काव्य में वचन की चर्चा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इब्नुल अरबी के अनुसार 'पूर्ण मानव' (इन्साने कामिल) शब्द (वचन) भी है और यह परमेश्वर का शाश्वत कार्य है।[४]

'फुसुसुलहिकम' के सत्ताईस अध्यायों में से प्रत्येक एक-एक पैगम्बर के साथ जो कि खुदा का कलिमः (वचन) है और किसी-न-किसी ईश्वरीय नाम का प्रतिनिधि है, जुड़ा हुआ है। वे 'पूर्ण मानव' (इन्साने कामिल) के उदाहरण के रूप में भी प्रस्तुत किये

---

१. बचन जौ नहि निरमवत बिधाता। केत सुनत कोई रस बाता।
प्रथमहि आदि सिस्टिहु के पारा। हरिमुख वचन लीन्ह औतारा।
एकै बचन आदि उंकारा। भल मंद होइ ब्यापा सयंसारा।
बिधनै जगत वचन बड़ कीन्हा। बचन हुतें पसु मानुस चीन्हा।
वचन कै बात जान सभ कोई। बचन हुतें परगट भा सोई।
काहुँ सरूप न देखा औ काहुँ न जानेउ ठाइं।
बचन हुतें भा परगट त्रिभुवन नाथ गोसाइं।
—मधुमालती, छंद, २५

२. बचन अमोल जगत नग आवा। बचन हुतें गुर ग्यान लखावा।
चारि बेद बिधनै निरमएऊ। बचन जगत महँ परगट भएऊ।
बचन सरग सेतें भुइं आवा। औ बिधनै जग बचन पठावा।
जौ किछु बचन कै सरभरि पावत। बचन ठाउँ सोहूँ भुइँ आवत।
परथम मानुस होइ औतरिया। बहुरि अम्बर जुग चारिन भरिआ।
बचन अमोल पदारथ बरन न सकेउं उरेखि।
बचन ऐस बिधना कर जाके रूप न रेख।
—मधुमालती, छंद, २६

३. कुरानशरीफ़, अनुवादक श्री अहमद बशीर, प्रकाशक, प्रभाकर साहित्यालोक, लखनऊ, (इसमें प्रकाशन तिथि नहीं है) पृष्ठ ५८५।

4 Three Muslim Sages Seyyed Hossein Nasr page 110

जाते हैं। सर्वश्रेष्ठ कलिमः (वचन) मुहम्मद या उनकी वास्तविकता है।[१] मंसूर हल्लाज ने मुहम्मद की ज्योति को दैवी वचन माना। इससे अलगज़ाली भी अप्रभावित नहीं रहे।[२]

वचन को सूफ़ी संतों ने विभिन्न रूपों में स्पष्ट किया है। सुप्रसिद्ध सूफ़ी कलाबाज़ी ने 'किताबुल तारूफ लि मजहबे अहलेअल तसव्वुफ़', में वचन के सम्बन्ध में कहा है कि "कुरान ईश्वर का सच्चा वचन है इसकी न तो काल में उत्पत्ति हुई और न इसको रचा गया।"[3] कलाबाज़ी यह भी कहते हैं कि "ईश्वरीय वचन के सम्बन्ध मे मतों की विभिन्नता है। अधिकांश लोगों का यह मत है कि वचन ईश्वर का शाश्वत गुण है जो उसके अस्तित्व में ही है और इसकी व्यक्ति के वचन से समानता नही हो सकती।" एक ने कहा है, "परमेश्वर के वचन में आज्ञा, निषेध, सूचना, आश्वासन और भय होता है।"[४] कलाबाज़ी का दृष्टिकोण मंझन से मेल नहीं खाता। मंसूर हल्लाज और इब्नुल अरबी का वचन सम्बन्धी सिद्धान्त मंझन को प्रभावित करता जान पड़ता है क्योंकि इन दोनों सूफ़ियों के मुहम्मद भी परमेश्वर ही हैं और शाश्वत हैं।

---

1. Each one of the twenty-seven chapters of the *Fusus* is devoted to a prophet who is both a LOGOS (Kalimah) of God and a representative of one of the divine names. They are also cited as examples of the perfect man. The Logos *par excellence* is the Prophet Muhammad or rather the reality of Muhammad.
   A History of Muslim Philosophy—by M. M. Sharif. Page 415.
2. Hindu and Muslim Mysticism–R. C. Zaehner. Page 173.
3. They are agreed that the Quran is the real word of God, and that it is neither created, nor originated in time, nor an innovation; that it is recited by our tongues, written in our books, and preserved in our breasts, but not dwelling therein. They are also agreed that it is neither body, nor element, nor accident.
   The Doctrine of the Sufis, by A J. Arberry, London 1935, Page 21.
4. They are at variance concerning the nature of God's speech. The majority of them hold that the speech of God is an eternal attribute of God contained in His essence in no way resembling the speech of created beings, and that it possesses no quiddity (*Maiyah*), just as His essence possesses no quiddity except for the purpose of tion
   Ibid Page 21

मंझन और प्रेम

सृष्टि के आदि में प्रेम का प्रवेश हुआ। उसके बाद सकल सृष्टि हुई।[1] सृष्टि की उत्पत्ति ही प्रेम से हुई। सृष्टि में जहाँ तक रूप है,वहाँ तक प्रेम है।[2] जिसके हृदय में प्रेम की पीर उत्पन्न हुई जगत में उसका जीवन सुफल है।[3] जिसके हृदय में प्रेम नहीं आया, उसने सहज का भेद कुछ नहीं जाना।[4] प्रेम संसार में अमूल्य नग है जिसके जी में प्रेम है, उसका अवतार धन्य है।[5] प्रेम के लिए ही विधि ने अपने को प्रकट किया और प्रेम के लिए ही उसने संसार को उत्पन्न किया।[6] प्रेम की ज्योति से ही समस्त सृष्टि में प्रकाश है, प्रेम अद्वितीय है।[7] बिरला ही कोई भाग्यशाली होता है जो प्रेम का सौभाग्य प्राप्त करता है।[8] चार युगों में यह ध्वनि निनादित हो रही है कि जो प्रेमपंथ पर सिर देता है, वह राजा है।[9] प्रेम की हाट चारों दिशाओं में फैली हुई है, ऐ लोगो, इसका बनिज करो, इसके लाभ और हानि के फल को प्राप्त करने में, ऐ ग्राहको! कसर न रखो।[10]

मंझन कहते हैं कि जगत में मैंने जहाँ तक देखा है, प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।[11]

---

१. प्रथमहिं आदि पेम परविस्टी। तौ पाछें भइ सकल सिरिस्टी।
—मधुमालती, २७।१

२. उतपति सिस्टि पेम सों आई। सिस्टि रूप भर पेम सबाई।
—मधुमालती, २७।२

३. जगत जनमि जीवन फल ताही। पेम पीर उपजी जिय जाही।
—मधुमालती, २७।३

४. जेहिं जिअं पेम न आइ समाना। सहज भेद तेइं किछू न जाना।
—मधुमालती, २७।४

५. पेम अमोलिक नग सयंसारा। जेहिं जिअं पेम सो धनि औतारा।
—मधुमालती, २८।१

६. पेम लागि संसार उपावा। पेम गहा बिधि परगट आवा।
—मधुमलाती, २८।२

७. पेम जोति सभ सिस्टि अंजोरा। दोसर न पाव पेम कर जोरा।
—मधुमालती, २८।३

८. बिरुला कोइ जाके सिर भागू। सो पावै यह पेम सोहागू।
—मधुमालती, २८।४

९. सबद ऊँच चारिहुँ जुग बाजा। पेम पंथ सिर देइ सो राजा।
—मधुमालती, २८।५

१०. पेम हाट चहुँ दिसि है पसरी गै बनिजौ जे लोइ।
लाहा औ फल गाहक जनि डहकावै कोइ। —मधुमालती २८।६,७

११ देखा सुना जहाँ लगि होई पेम बिर्बाजित किछु नहिं सोई

जिसके हृदय में प्रेम का दीपक जल रहा है, उसका आदि और अन्त दोनों उज्जवल हैं।[1] जिसके हृदय में प्रेम की रेखा पड़ जाती है, वह सर्वत्र अदृश्य को देखता है।[2]

प्रेम और दुःख

प्रेम के साथ दुःख का अनिवार्य सम्बन्ध है। मनोहर मधुमालतो से कहता है—जहाँ संसार में दुःख होगा, वहीं प्रीति होगी। जिसके शरीर में दुःख नहीं है, वह बेचारा प्रीति की बात क्या जाने ?[3] वह कहता है कि जिस दिन मैंने सुना कि सृष्टि उत्पन्न हो गई है तो मैंने प्रीति के पक्षी को उड़ा दिया। वह तीनों लोक ढूँढ़ कर आया किन्तु अपने योग्य उसको कोई स्थान नहीं मिला। तब वह मेरे घट में आकर बैठ गया और लुब्ध होकर वहीं रह गया। उससे उड़ा नहीं गया। तब तीन भुवनों ने उससे बात पूछी—"कहो तुम मनुष्य के घट में अनुरक्त कैसे हुए ?" इसके उत्तर मे उसने कहा—"दुःख मनुष्य की आशा है और जहाँ दुःख है, वहीं मेरा निवास है।[4] एक स्थान पर मंझन कहते हैं—मनोहर का जीव दुःख से गृहीत होकर और बिरह से दग्ध होकर प्रिय मिलन का सहारा लिये हुए था।"[5]

प्रेमा कहती है, प्रेम समुद्र में पाँव डुबाकर कोई पीछे न हटे। इसमें या तो प्रीतम रूपी नग हाथ में चढ़ेगा या लोभ में जीवन चला जायगा।[6] मधुमालती

---

१. पेम दिया जाके घट बारा। तेहिं सब आदि अंत उजिआरा।

—मधुमालती, २९।४

२. जेहि जिअ परै पेम कै रेखा। जहं देखै तहं देख अदेखा।

—मधुमालती, ३०।१

३. जेहि ठां दुख होइ जग भीतर प्रीति होइ बस ताहि।
प्रीति बात का जानै नपुरा जेहि सरीर दुख नांहि।।

—मधुमालती, ११६।६,७

४. सुनिउं जाहि दिन सिस्टि उपाई। प्रीति परेवा दिहेउं उड़ाई।
तीनिउं लोक ढूंढ़ि कै आवा। आपु जोग कहुँ ठाउं न पावा।
तब फिरि मोहि घट पैसेउ आई। रहेउ लोभाइ न गएउ उड़ाई।
तीनि भुवन तन पूंछीं बाता। कहु तुइं कस मानुस घट राता।
कहेसि दुक्ख मानुस कर आसा। जहाँ दुक्ख तहं मोर नेवासा।

—मधुमालती, ११६। १,२,३,४,५

५. दुक्ख गहा बिरहैं दहा जिउ रहा मिलन अधार।
पेम बिछोह होइ जनि काहू जनम एहि सर्यसार।

—ममधुालती, ४२१।६,७

६ पेम समुंद पा बौरि कै पाछ्र न टरिअइ काउ
कै प्रीतमु नग हाथ चढ़ कै लालचि जिउ जाउ २११।६८

प्रियतम की खबर पाने के लिए अपने को जाल में फँसाती है, वह कहती है कि या तो कुछ प्रीतम की खबर प्राप्त करूँगी या प्रेम-पंथ का लाभ प्राप्त करूँगी।[१]

मंझन कहते हैं प्रेम-चिता पर चढ़कर कोई जीव का लोभ न करे जो जीव प्रियतम के निमित्त लग जाता है, वह जीव दोनों जग में शोभित होता है।[२] शक्ति भर मरजीवा समुद्र मे संतरण करता है यदि पार उतर जाता है तो सिद्धि साहस की चेरी बन जाती है (छंद ४२२।६,७)।

मंझन यह भी कहते हैं कि "जग मे दुःख से किसी को ऊबना नहीं चाहिए। दुःख का अंत सुख में होता है। दो दुःखों के बीच में संसार में सुख होता है। काली घटा में श्वेत जल-धारा होती है। फाल्गुन में जब वृक्ष पत्ते गिरा देते हैं, वे नये पत्ते धारण करते हैं। जब मेंहदी दो पत्थरों के बीच अपने को पिसवाती है तो लाल रग पाती है। मोती जो अपने को बहुत प्रकार से छिदाता है तब पद्मिनी के हृदय मे स्थान पाता है। संसार में दो दुःखों के बीच सुख है। यदि अँधेरी रात है तो प्रभात का प्रकाश भी है।[3]

'मधुमालती' में मनोहर और मधुमालती दोनों को दुःख उठाना पड़ता है। मधुमालती की खोज में जाते हुए मनोहर को मार्ग में सागर की लहरों में फँसना पड़ता है। उसका जलयान टूटता है (छंद १७८–१७९)। फिर उसे राक्षस का सामना करना पड़ता है (छंद २६३–२७४)। मधुमालती के प्रेम के सहारे वह वन और सागर सब पार कर लेता है।[४] मधुमालती भी देश विदेश घूमती है। गोदावरी, मथुरा,

---

१. मकु पावौ किछु प्रीतम चाहा। मरौं त लहौं पेम पंथ लाहा।
—मधुमालती, ३६२।५

२. मंझन चढ़ि कै पेम सर करै न जिय कर लोभ।
प्रीतम काज जो जिउ घटै सो जीउ दुनहु जग सोभ।
—मधुमालती, ३७१।६,७

३. दुख सों जग अकुताउ न कोई। दुक्ख के अन्त सुक्ख पै होई।
दुइ दुख बीच सुक्ख सयंसारा। कारी घटा सेत जल धारा।
फागुन जो तरिवर पतझारै। नौ पल्लौ सिर सेउं अनुसारै।
दुइ पाथर बिच आपु पिसावै। तौ मेंहदी राता रंग पावै।
मोंती बहु विधि आपु छेदावै। पदुमिनि उरहिं ठांउ तौ पावै।
दुइ दुख बीच सुक्ख है निजु जानहु सयंसार।
जइ अति रैनि अँधेरी तौ अजोर भिनुसार।।
—मधुमालती, छन्द २३६

४. जाइ चला एकसर दिन राती, मधुमालति कर पेम संघाती।
वन सायर जेत आगें परे, पेम प्रताप तें सम ओइ तिरे।
, ३४७ ४१

गया, प्रयाग, सब तीर्थों में जाकर अपना सुहाग माँगती है।[1] प्रेम की अमरता का प्रतिपादन करते हुए मंझन ने कहा है कि "प्रेम की आँच जिसने सहली है वह संसार में काल से बच जाता है। एक बार जो मर कर जीवन पा लेता है काल उसके पास नहीं आता। जब मृत्यु का फल अमृत हो जाता है तब प्रेमी व्यक्ति की काया अमृत हो जाती है। ऐ जीव ! यदि तुम्हें काल का भय है, तो प्रेम की शरणशाला मे जाओ तब दोनों जग में काल का भय जाता रहेगा। प्रेम जगत में शरण शाला है।"[2]

प्रेम और विरह

मुहम्मद के विरह में विधाता स्वयं प्रकट हुआ। समस्त सृष्टि उसी का भाव है।[3] अतः संसार में विरह हर प्रेमी को व्याप्त होता है। सच बात तो यह है कि मंझन के काव्य में विरह और प्रेम दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं। इसीलिए जिस प्रकार मंझन यह कहते हैं कि प्रारम्भ में ही सृष्टि में प्रेम प्रविष्ट हुआ[4] उसी प्रकार वह यह भी कहते हैं कि सृष्टि के मूल में ही विरह जग में आया।[5] जिसे जग मे

---

१ मधुमालति सभ छाड़ि उड़ानी। जोवति खोजति करति है रानी।
ब्याकुलि भई भवँ बिकरारा। जस बाउर हो बीछु क मारा।
गिरि सायर-वन फिरि फिरि हेरा। कतहुँ न खोज पाउ ओहि केरा।
रन पट्टन जग फिरी उदासा। पै नहिं हिय कँ पूजी आसा।
तरु तरु घर-घर देस बिदेसा। जन जन ढूंढे रांक नरेसा।
कजली बन गोदावली मथुरा गया पयाग।
देव द्वारिका औ सभ तीरथ फिरि फिरि मांग सोहाग।
—मधुमालती, छंद ३५५

२. अमर न होत कोइ जग हारैं। मरि जो मरै तेहि मींचु न मारैं।
पेम कँ आगि सही जेइं आंचा। सो जग जनमि काल सेइं बांचा।
पेम सरनि जेइं आपु उबारा। सो न मरैं काहु कर मारा।
एक बार जौ मरि जीउ पावै। काल बहुरि तेहि नियर न आवै।
मिरितु क फल अम्रित होइ गया। निहचैं अंमर ताहि कँ कया।
जौ जिउ जानहि काल भौ पेम सरनि करि नेम।
फोटैं दुहुँ जग काल भौ सरन साल जग पेम ॥—मधुमालती, छंद, ५३८

३. सुनहुँ अब तेही कँ वाता। परगट भा जेहिं विरह विधाता।
सइंहि सरीर सिस्टि जौ आवा। औरि सिस्टि सभ ओहि कर भावा।
—मधुमालती, ७।१,२

४. प्रथमहि आदि पेम परबिस्टी। तौ पाछें भइ सकल सिरिस्टी।
—मधुमालती, २७।१

५ सिस्टि मूल बिरहा जग आवा। पै बिनु पुब्ब पुन्नि को पावा।
—मधुमालती, २१।१

दैव ने विरह का दुःख दिया उसको उसने त्रिभुवन का राजा बना दिया।[1] इसी प्रकार प्रेम पंथ पर चलने वाले को भी राजा कहा गया है (२८।५)। विरह को कोई दुःख न माने वह जीवन धन्य है जिसे विरह का दुख है।[2] यह बात मंझन ने प्रेम के सम्बन्ध में भी कही है कि जिसके हृदय में प्रेम है उसका जीवन धन्य है।[3] विरह का जीव जिसके घट में होगा वह सदा अमर रहेगा।[4] प्रेम के सम्बन्ध में भी मंझन ने यह कहा है कि प्रेमी काल से बच जाता है।[5] कोई पाठ पढ़ने से विरह, बुद्धि और सिद्धि नहीं प्राप्त होती जिसको दयालु परमेश्वर दया करके देता है उसे ही यह निधियाँ प्राप्त होती हैं।[6] जिसका पूर्व का पुण्य होता है वह विरह प्राप्त करता है।[7] राजकुंवर के जन्म के उपरान्त पंडित कहते हैं कि चौदह वर्ष और ग्यारह मास का जब वह होगा तब उसके हृदय में विरह उत्पन्न होगा।[8] इससे भी सिद्ध होता है कि विरह ललाट में पहले से लिखा रहता है। राजकुंवर मधुमालती से कहता है कि मैं तुम्हारे दुःख से आज ही दुःखी नहीं हुआ हूँ। आदि से ही तुम्हारे विरह दुःख से मेरा परिचय है। जिस दिन विधाता ने मेरा अंश बनाया उसी दिन मुझे तुम्हारा (विरह)दुःख दिखाई पड़ गया। ऐ वर कामिनि ! तुम्हारी प्रीति के नीर से मेरी मिट्टी को सानकर यह शरीर बना। मैं पूर्व से तुम्हारी प्रीति का नीर जानता हूँ। मेरी मिट्टी को सानकर

---

१. जेहि जग दइअ बिरह दुख दिया। त्रिभुवन केर राउ सो किआ।
—मधुमालती, २७।५

२. जनि कोइ बिरह दुक्ख जिअ मानैं ओहि जग आवा सुक्ख।
धनि जीवन जग ताकर जाहि बिरह दुख दुक्ख।
—मधुमालती, २७।६,७

३. पेम अमोलिक नग सयंसारा। जेहिं जिअं पेम सो धनि औतारा।
—मधुमालती, २८।१

४. बिरह जीउ जेहि के घट होई। सदा अमर रहै मरै न सोई।
—मधुमालती, २९।५

५. पेम कै आगि सही जेइं आंचा। सो जग जनमि काल सेउं बांचा।
—मधुमालती, ५३८।२

६. कौनौं पाठ पढ़े नहि पाइअ बिरह बुद्धि औ सिद्धि।
जा कहं देइ दयाल दया करि सो पावै यह निद्धि।।
—मधुमालती, २९।६,७

७. सिस्टि मूल बिरहा जग आवा। पै बिनु पुब्ब पुन्नि को पावा।
—मधुमालती, २९।१

८. चौदह बरिस इगारह मासा। नवएं दिन पूनिवं परगासा।
बुद्धवार बिहफै कै राती। उपजहिं बिरह कुंवर कै छाती।
५१ १,३

विधि ने यह शरीर रचा। जब शरीर में प्राण नहीं आया था तभी विधाता ने तुम्हारा विरह दुःख मुझे दरसा दिया था।[1] दुख सुख को देने वाला है।[2] एक पल के दुःख को चारों युग का स्वाद भी नहीं पूर्ण कर सकता। तुम्हारे दुःख के प्रसाद से न जाने कौन-कौन सुख मिलेगा।[3] मनुष्य को दुःख ने आदि में ग्रस लिया। ब्रह्म कमल में दुख का वास है।[4] जिस दिन सृष्टि में दुःख प्रविष्ट हुआ उसी दिन जीव ने जीव को जाना।[5] 'मधुमालती' में मनोहर और मधुमालती दोनों विरह में समान रूप से तपते हैं। मधुमालती सखियों से कहती है "राजकुंवर यम नहीं है पर वह हमारा जीव ले गया। यम द्वारा मृत्यु से क्षण भर दुःख होता है किन्तु विरह का मरण तिल तिल कर होता है।"[6] संसार मे सबको जीवन अच्छा लगता है किन्तु मुझे विरह में मर जाने में ही लाभ है। सबकी मृत्यु एक बार होती है मुझे तो प्रतिदिन का मरण है।[7]

सखियाँ मधुमालती को आश्वासन देती हैं—विरह के आघात से एक नहीं दोनों मारे जाते हैं। जैसे तुम उसके विरह में विकल हो वैसे ही तुम्हारी चिन्ता उसको

---

१. कहै कुंवर सुनु पेम पियारी। तोहि मोहि प्रीति पुब्ब विधि सारी।
एहि जग जीवन मोहि तोहि लावा। मैं जिउ दै तोर दुक्ख बेसाहा।
मैं न आजु तोरे दुक्ख दुखारी। तोरे दुख सेउं मोहि आदि चिन्हारी।
जेहि दिन सिरेउं आंस बिधि मोरा। तेह दिन मोहि दरसेउ दुख तोरा।
वर कामिनि तोहि प्रीति के नीरू। मोहि मांटी भा सानि सरीरू।
पुब्ब दिनन सेउं जानहुं तुम्हरी प्रीति के नीर।
मोहि मांटी बिधि सानि कै तो यह सिरेउ सरीर॥
—मधुमालती, छंद, ११३

२. कौनि जीभ बकतौं दुख बाता। दुख के रूप सुख निधि के दाता।
—मधुमालती, ११४।५

३. एक निमिख दुख कहं नहिं पूजै चारिहुँ जुग क सवाद।
कौन कौन सुख बेरसब तोहि दुख के परसाद॥
—मधुमालती, ११४।६,७

४. दुख मानुस करि आदि गरासा। ब्रह्म कंवल महं दुखकर बासा।
—मधुमालती, ११५।१

५. जेहि दिन तेहि दुख सिस्टि समानां। तेहि दिन तें जिउ जिउ जाना।
—मधुमालती, ११५।२

६. बिधनै मदन मूरति निरमएऊ। जम न होइ पै जिउ लै गएऊ।
जम कै मीचु खिनक दुख देई। विरह मरन तिल तिल जिउ लेई।
—मधुमालती, १४१।२,३

७. जग जीवन भावै सब काहू। मोहि भरि विरह मुएं सखि लाहू।
सभ कहं मरन होइ एक बारी। मोहि सखी मरन भएउ देवहारी।

१४२।२

भी है। विरह के घाव से एक नहीं मारा जाता। विरह के खड्‌ग की धार दोनों ओर होती है।[1]

मधुमालती की वार्ता स्मरण कर राजकुंवर के समस्त शरीर में विरह की अग्नि व्याप्त हो गई। वह क्षण-क्षण ऊर्ध्व श्वास लेकर रोता और चित्त का चेत संभाल नहीं पाता। मूर्च्छित होकर वह दस दिशाओं में देखता, वह राजकुमारी वहाँ नहीं है। कभी उसके चित्त में चेत आ जाता था और कभी वह बेसंभाल हो जाता था। वह मधुमालती के रूप और गुण को स्मरण कर सिर पृथ्वी पर पटककर रोता था।[2] राजकुंवर धाय से कहता है कि विरह की अग्नि मेरे शरीर में आकर लग गई या तो यह मधुमालती के मिलने से बुझेगी या मर जाने से बुझेगी।[3] वह यह भी कहता है कि मन और ध्यान वहाँ चला गया जहाँ मन की दृष्टि जाते सकुचाती थी। प्राण प्रियतम के संग चला गया। काया बिना जीव के हो गई या तो स्वप्न ने या प्रत्यक्ष ने न जाने क्यों मेरा जीव हर लिया।[4] प्राण हमारा शरीर-छोड़कर चला गया है काया के बिना जीव को मरण का संदेह हो रहा है।[5] विरह कठिन है उसकी पीड़ा कोई नहीं जानता या तो इस पीड़ा को विधाता जानता है या शरीर जानता है। वह धाय से कहता है

---

१. जसि तुइं ओहि बिरहैं बिकरारी। ओहि फुनि होइहि चित तुम्हारी।
बिरह घायं जाइ एक न मारा। बिरह खरग सखि दुहुँ दिसि धारा।
—मधुमालती, १४४।१,२

२. उहाँ कुंवर जौ देखइ जागी। जगतैं बिरह आगि तनु लागी।
नां वह मंदिल ना वह सुखराती। ना वह राजकुंवरि रंगराती।
मुरछि परै औ दहुँ दिसि जोवै। खिन-खिन ऊभि सांस लै रोवै।
औ चित चेत न सकै संभारी। मन गुनि गुनि सुधि पेम पियारी।
संवरि संवरि मधुमालति बाता। बिरह अनल ब्यापेउ सभ गाता।
कबहुँ चेत चित चेतै कबहुँ जाइ बिसंभार।
सीस पुहमि हनि रोवौ समुझि रूप गुन नारि॥
—मधुमालती, छन्द १४५

३. बिरह अगिनि सुनु धाई मोहि तन लागी आइ।
कै मधुमालति मिलि बुझै कै मोहि मुएं बुझाइ।
—मधुमालती, १४८।६, ७

४. मन अरु झान तहाँ गै धाई। मन कै दिस्टि जहं जात संकाई।
× × ×
प्रान जौ पीतम संघ रहा कया भई बिनु जीय।
कै सौतुंख कै सपनां न जानों केइं जीउ हरि लीय।
—मधुमालती, १४७।३, ६, ७

५ प्रान गएउ परिहरि हम देहा कया बाझ जिउ मरन सदेहा
मधुमालती १४९ २

कि प्रेम की बात मेरे मुँह से नहीं कही जाती। यदि मैं सहस्र जिह्वा वाला हो जाऊँ तो भी चारों युग में उसकी वार्ता पूरी नहीं होगी।[1]

मंझन का कथन है कि प्रेम जिसके हृदय में उदित होता है उसके हृदय मे प्रियतम को छोड़कर और सब जल जाता है। प्रेम का दुःख सब दुःख से भारी है इसमे तिल-तिल कर प्रतिदिन मरना पड़ता है। विरह के वश में होने पर राजकुंवर का राज्य का गर्व, धन और यौवन सब चला गया।[2] राजकुंवर कहता है, राजसुख को मैंने विष समझकर छोड़ दिया है और विरह दुःख का अमृत जीव मे धारण किया है।[3] उसके शरीर में विरह का दुःख तीव्र हो गया है। वह 'मधुमालती' 'मधुमालती' कहता है। वह प्रेम में अपने को भूल गया है, और अपने को पहचानता तक नही।[4] विरह की अग्नि जिसके हृदय में नहीं लगी उसका जीवन व्यर्थ है।[5] यह समस्त सृष्टि विरह रूप है यदि आँख में विरह का अंजन हो। मंझन कहते हैं इस जग में जन्म लेकर यदि किसी ने विरह नहीं किया तो वह सूने घर के पाहुन की भाँति है जो जैसे आता है वैसे ही चला जाता है।[6] प्रेम पंथ में चढ़कर जो जीव खो देता है वह या तो जीव रहता है या प्रीतम रहता है। संसार में दैव जिसको विरह दरसाता है उसको

---

१. बिरह कठिन कोइ जान न पीरा। कै बिधि जान कै जान सरीरा।
घाई बात पिरंम कै मोहि मुँह कही न जाइ।
जौं मैं सहस जीभ होइ बकतौं चहुँ जुग करि न सिराइ।
—मधुमालती, १५२।१,६,७

२. पेम अगिनि जेहिं जिय उदगरई। प्रीतम राखि और सभ जरई।
पेम दुक्ख सभ दुख सेउं भारी। तिल-तिल सहस मरन देवहारी।
राज गरब धन जोबन गएऊ। जब सेउं जिउ बिरहाबस भएऊ।
—मधुमालती, १५१।१, २,५

३. राज सुक्ख बिष बलि परिहरेऊँ। बिरह दुक्खअंम्रित जिउ धरेऊँ।
—मधुमालती, १५२।२

४. बिरह सरीर आइ अधिकानां। कहा कहौ नहिं जाइ बखानां।
मधुमालति मधुमालति ररई। संवरि-संवरि सिर मुँह लै धरई।
पिरम भुलान न आपहिं चीन्हा। चेत औ गयान सबहि हरि लीन्हा।
—मधुमालती, १८२,२।३,

५. बिरह अगिनि जिय लागि न जाही। एहिं जग जनम अंबरिया ताही।
—मधुमालती, २३५

६. मंझन एहि जग जनमि कै बिरह न कीता चाउ।
सूने घर का पाहुनां जेउं आया तेउं जाउ। —मधुमालती २३६६,

दुःख सुख दिखलाता है।[1] विरह धारण कर जिसने आँख खोली उसके लिए त्रिभुवन प्रकाशमान है। विरह का समुद्र अथाह है संसार में इसे सब कोई जानता है जो मरजीवा होता है वही माणिक्य लेकर उभरता है।[2] विरह से जिसके शरीर मे अनेक भाव उत्पन्न होते है, वह त्रिभुवन का दूल्हा है। उसे ही विधाता यह पीर देता है।[3] अतः मंझन के अनुसार विरह सर्व सुलभ वस्तु नहीं है।

प्रेम और रूप

संसार में एक ही ज्योति सभी स्थानों पर पूर्ण हो रही है। ज्योति की अनेक मूर्तियों के ही भिन्न-भिन्न नाम हैं।[4] बिना रूप के स्वामी अनेक रूपो में है। वही गुप्त रूप सर्वत्र प्रकट है।[5] वह आदि और अन्त दोनो है। जो अनन्त रूप हैं उनमें एक ही अर्थ है।[6] रूप का ही नाम मुहम्मद है।[7] यही रूप बहुत से रूपों में प्रगट है। यही रूप अनेक भावों में है और अनुपम है। इसी रूप से नयनों में ज्योति है। इस रूप से सागर में मोती है। यही रूप सभी फूलों में बसा हुआ है। यही रूप चन्द्रमा और सूर्य में है यही रूप जग में पूर्ण होकर आपूरित हो रहा है। यही रूप आदि और अन्त मे है। इसके बाद भी रहेगा। यही रूप जल, थल और महीतल पर अनेक प्रकार से दृष्टिगत होता है अपने को गंवा कर जो कोई देखता है वही इसे कुछ कुछ देख पाता है।[8] राजकुँवर मधुमालती से कह रहा है "तुम्हें देखते ही मैं क्षण में पहचान गया।

---

१. पेम पंथ जो चढ़ जिउ खोई। कै जिउ होइ कै प्रीतम होई।
जेहि जग दैय बिरह दरसावँ। सभ दुख सुख तेहि डीठि देखावँ।
—मधुमालती, २३३।२,५

२. बिरह रोपि जिय नैन उघारे। त्रिभुवन तेहि लेखें उजियारे।
बिरह समुंद अथाह अति जग जानैं सभ कोइ।
मानिक सो लैं उभरैं जो मरजीवा होइ।
—मधुमालती, २३४।४, ६, ७

३. भाउ अनेग बिरह सेउं उपजहिं जाहि सरीर।
त्रिभुवन केर जो दूलह तेहि विधि देइ यह पीर।
—मधुमालती, २३७।६, ७

४. त्रिभुवन पूरि अपूरि कै एक जोति सभ ठाउं।
जोतिहि अनबन मूरति मूरति अनबन नाउं॥ —मधुमालती, २।६,७

५. गुपुत रूप परगट सभ ठाईं। वाकु रूप बहुरूप गोसाईं।
—मधुमालती २।५

६ आदिहि आदि अंत हीं अन्ता एकहि अरथ रूप जो अनन्ता

यही रूप है जिसने मुझे छल लिया। यही रूप पहले प्रच्छन्न था और अब यह सृष्टि मे समा रहा है। यही रूप शक्ति और शिव है। यही रूप अनेक रूप में प्रकट है। यही रूप जग में रंक और नरेश है। यही रूप त्रिभुवन में, मही, पाताल और आकाश मे है। यही रूप तुम्हारे माथे पर भी प्रकाशित होते देखा।"[1] रूप देखकर कुंवर चकित हो रहा। एक तो वह रूप है फिर वह शृंगार किये हुए है। रूप सहस्र भाव होकर उसके हृदय में समा गया। सुहागिनी के रूप और शृङ्गार को वह ज्यों-ज्यो देखता है तृप्त होता रहता है। रूप पर लुब्ध होकर उसके नेत्र उसे नहीं छोड़ पाते।[2] मधुमालती और राजकुंवर दोनों को मंझन अति रूपवान् चित्रित करते हैं मधुमालती राजकुंवर से कहती है। "रूप मेरा है, तुम्हारा घट दर्पण है। मैं सूर्य हूँ, तू जगत मे प्रकाश है।[3] अप्सराएँ कुंवर को गंधर्व की अमूल्य मूर्ति समझती हैं।[4] अप्सराएँ मिल

इहै रूप सभ फूलन्ह बासा। इहै रूप रस भँवर बेरासा।
इहै रूप ससिहर औ सूरा। इहै रूप जग पूरि अपूरा।
इहै रूप अंत आदि निदानां। इहै रूप घरि घर सो घियानां।
इहै रूप जल थर औ महिअर भाउ अनेग देखाउ।
आपु गँवाइ जो रे कोइ देखै सो किछु देखै पाउ। —मधुमालती, छंद १२०

१. अब लहि बिनु जिय जीवन सारा। आजु देखि तोहि जीउ संभारा।
देखत खिन पहिचानां तोही। इहै रूप जेइं छंदरा मोही।
इहै रूप तब अहेउ छपानां। इहै रूप अब सिस्टि समानां।
इहै रूप सकती औ सीऊ। इहै रूप त्रिभुवन कर जीऊ।
इहै रूप परगट बहु भेसा। इहै रूप जग रांक नरेसा।
इहै रूप त्रिभुवन जग बेरसै महि पयाल आगास।
सोई रूप परगट मैं देखा तुव माथें परगास।
—मधुमालती, छन्द, ११[illegible]

२. देखि रूप चक्रित चित रहा। त्रिधि यह कौन कहाँ मैं अहा।
एक रूप औ किएँ सिंगारा। मुनिबर परहि देखि मुख बारा।
रूप रेख का कहौं बखानी। सहस भाउ होइ हियें समानी।
रूप सिंगार सोहागिनि जेउं जेउं देखि अघाइ।
तेउं तेउं नैन न परिहरहिं रूप जो रहे लोभाइ।
—मधुमालती, ७६।२,३,४,६,

३. मो जिउ तुम्ह घट भीतर ठाऊँ। औ मोहि सों तोहि परगट नाऊँ।
रूप मोर घट दरपन तोरा। मैं सूरुज तुइं जगत अंजोरा।
—मधुमालती, १२२।४,

४ देखा गध्रप मुरति अमोला अच्छरिन्ह केर देखि चित भोला
मधुमालती ६८

कर कहती हैं कुँवर और राजकुमारी मधुमालती के रूप में समानता है।[1] यह मंझन के एकत्व दर्शन के अनुकूल ही है। राजकुंवर को भी मदनमूर्ति और भाग्यवंत बताया गया है।[2] राजकुँवर यह भी कहता है "जब तुम्हारा रूप प्रकट हुआ तभी के हम चक्षुओं से देखने वाले हैं, जिस दिन तुम्हारा आदि रूप शोभित हुआ उसी दिन से मैं तुझ पर मुग्ध हूँ।"[3]

प्रेम और ज्ञान

प्रेम के साथ जिसके हृदय में ज्ञान उत्पन्न होता है वह सर्वत्र अपने आपको (अपान) देखता है।[4] जब ज्ञानवृक्ष फल देने लगता है तब आनन्द ही आनन्द रहता है कुछ दंद नहीं रह जाता।[5] मंझन कहते हैं राजकुंवर के चित्त से ज्ञान चला गया वह उसी प्रकार खो गया जैसे पानी में लवण।[6] ज्ञान का स्मरण कर उसने चित्त मे चेत किया, किन्तु अपने 'अपान' को खोकर।[7] मधुमालती कहती है मैं तुम से सहज हेतु रस पूछती हूँ कि तुम्हारा ज्ञान किसने हर लिया। मैं तुम्हें अमृत छिड़ककर बैठाती हूँ तुम 'अपान' को क्यों नहीं समझते।[8] कुंवर कहता है कि जब हम ज्ञानचक्षु से

---

१. पुनि सभ मिलि कै कहंहि विचारी। पटतर देखिय कुंवर कुमारी।
—मधुमालती, ७०।२

२. मदन मूरति औ भागिवंत रानी राउ अधार।
सुभ्भ महूरत औतरा राजाकुल उजियार। —मधुमालती, ४६।६,७

३. जब परगट भा रूप तुम्हारा। तब के हम चखु देखनिहारा।
जेहिं दिन आदि रूप तोर सोहा। तेहि दिन हुतें तोहि हौं मोहा।
—मधुमालती, ३१६।१,२

४. उपजि आव हिअं जौ पुनि ग्याना। जहं देखै तहं आपु अपाना।
—मधुमालती, ३०।२

५. पुनि जौ ग्यान बिरिख फर देई। सरबस दै दोसर नहिं लेई।
कतहुं सिस्टि महं रहै न दंदू। जहं देखहि तहं आदि अनन्दू।
—मधुमालती, ३०।३,४

६. समुझि समुझि ते बातै चित सौं हरेउ गियान।
जैसें लोन पानि महं परिकै सहजहिं खोव अपान।
—मधुमालती, ११०।६,७

७. पुनि जौ चेत चित संवरि गियाना। उठि बैसेउ पै खोइ अपाना।
—मधुमालती, १११।१

८. सहज हेतु रस पूंछौं केइं तोर हरेउ गियान।
अमिय छिरकि बसारेउ समुझसि कस न अपान

देखते हैं तब लगता है हमारा तुम्हारा कब का परिचय है।[1] प्रेमा को झूलते देखकर ताराचन्द का ज्ञान नष्ट होगया।[2] 'मधुमालती' में ज्ञान और अपान इन दोनों शब्दो का पारिभाषिक अर्थ हो तो कोई आश्चर्य नहीं। ज्ञान सूफी शब्द 'मारिफत' का पर्याय प्रतीत होता है जिसका अर्थ दैवी कृपा का प्रकाश होता है जो हृदय में चमक जाता है। अपनी चकमकाहट की प्रखर किरण से समस्त मानवीय चेतना पर छा जाता है। जो ईश्वर को जान लेता है वह मूक हो जाता है।[3] अपान (आत्म+ज्ञान) आत्मज्ञान का सूचक हो यह असम्भव नहीं है। आत्म से अप्प और ज्ञान से आण अपभ्रंश में बन सकता है। अप्प और आण से अपान स्वाभाविक रूप से बन जाता है। वैसे सामान्य अर्थ में अपान का अर्थ अपना है।

प्रेम के उदय हो जाने पर शिक्षा और तर्क कोई प्रभाव नहीं डालते।[4] मधुमालती के हृदय में प्रेम का अभ्युदय हुआ उसके वाद उसने संसार का माया मोह छोड़ दिया, कुटुम्ब और परिवार को छोड़ दिया। उसने भोग, भुक्ति और जीवन की आशा छोड़ दी। राजपाट, सुख, शैया, रात की निद्रा और दिन की भूख उसने सब छोड दी। चित्त में उसने सुख की इच्छा छोड़ दी और रूख पर बसेरा किया।[5] मनोहर योगी का वेश बनाकर मधुमालती की खोज में निकलता है। उसका त्रिशूल दुःख, उदासी और वैराग्य का प्रतीक है। मृगछाला भी वैराग्य का ही प्रतीक है।

---

१. सभ गियान चखु देखेउं हेरी। हम तुम्ह दुहुं परिचै कब केंरी।

—मधुमालती, ११८।४

२. सौंही दिस्टि पेमां पर परी। पैंधति आहि पैंघ पर खरी।
झूलत उन आँचर उधिरानां। देखि कुंवर चित गएउ गियानां।

—मधुमालती, ४७१।२,३

३. The mystics of Islam—R. A. Nicholson, London 1963, p. 71

४. जौ पर सिख बुधि किछु नहिं लगी। रानी चक्रित रही जनु ठगी।
सिख बुधि सुनै जाहि बुधि होई। बौरेहि का सिख बुधि देइ कोई।

—मधुमालती, ३५२।३,४

५. पीतम पीतम मधु जियं भजा। मधुमालति सभ धंधा तजा।
छाड़ेउ मया मोह सयंसारा। छाड़ेउ कुटुंब लोग परिवारा।
छाड़ी सखीं संघ जो खेलीं। छाड़ेउ रहस चाउ सुख केली।
छाड़ेउ भोग भुगुति जिय आसा। छाड़ेउ मंता पिता घर बासा।
छाड़ेउ अरथ दरब सभ आथी। छाड़ उजन परिजन संघ साथी।
छाड़ेउ राज पाट सुख सेज्या रैनि नीदि दिन भूंख।
छाड़ेउ चित्त चाउ सुख कीन्ह बसेरा रूख

—मधुमालती, छन्द ३५

उसका खड़ाऊँ प्रेम का प्रतीक है। प्रिय दर्शन के लिए उसने गोरख का वेश किया है।[1] प्रेम मार्ग में सत की आवश्यकता पर भी मंझन ने बल दिया है। मंझन कहते हैं "यदि मनुष्य सत से रहे तो पिंड भी ब्रह्माण्ड चढ़ सकता है।"[2]

प्रेम और यौन सम्बन्ध

कुंवर विवाह के पूर्व सुरत क्रीड़ा को पाप समझता है। वह कहता है, मैं पाप के पथ पर कभी पैर नहीं रखता हूं। जब तक मेरा धर्म तरु पल्लवित नहीं होगा मुझे तेरा अमृत फल अखाद्य होगा।[3] मधुमालती और कुंवर को एक साथ देखकर मधुमालती की माँ रूपमँजरी को क्रोध आता है। उस पर प्रेमा कहती है, "मधुमालती आज भी, जैसी जनमी थी, वैसी ही अछूती है। दैव ने अभी तक उसे वैसा ही अछूता रखा है।"[4] किन्तु जटिल समस्या यह है कि राजकुंवर और मधुमालती के प्रथम मिलन में भी ऐसा चित्रण आता है जिसमें आलिंगन और प्रेमालाप आदि का विस्तार है।[5] अन्यत्र प्रेमा की सहेलियों से मधुकरों को उलझते हुए चित्रित किया गया है। मधुकरों से तंग आकर

---

१. दुख उदास बैराग मेरावा। इन्ह तीनिउ तिरसूल गढ़ावा।
औ रुद्राछ केरि जप मारी। औ सिंगी गियं अल्प अधारी।
बैसाखी गोरख धंधोरी। ध्यान धरन मन पौन संकोरी।
पेम पावरी राखेउ पाऊ। म्रिगछाला बैराग सम्हाऊ।
दरसन लागि भेस सब घेरा। जाँचैं दुख मधुमालति केरा।
ग्यान ध्यान औ आसन सवन नैनन्ह लौ लागि।
दरसन लागि भेस सभ कीन्हा मकु गोरख जा जागि।

—मधुमालती, छंद, १७३

२. सत्त कहीं सत जानहु सत साथी नौ खण्ड।
मानस जौ सत सेउं रहैं पिंड चढ़ै ब्रह्मण्ड। —मधुमालती, १८९।६,७

३. जौ लहि धरम तरु फरै न मोरा। मोहि अखाजु अंब्रित फल तोरा।
वर कामिनि जब लाईं तोहि मोहि होइ न धरम बियाह।
पाप न अंतर संचरै बिधि बाचा निजु आहि।

—मधुमालती, ३३१।५,६,७

४. अजहुँ सेवाती धार सीप लगि चोरि गगन चहराति।
अजहुं जैसि जनमी मधुमालति दई राखी तेहि भाँति॥

—मधुमालती, ३४२।६,७

५. पेम भाउ दुनहु अनुसरेऊ, पर आपन भय जिय नहि धरेऊ।
कबहूँ आलिगन रस देई, कबहूँ कटाच्छ जीउ हरि लेई।
कबहूँ नैन जीउ हरि लेहीं कबहूँ अधर सुधानिधि देहीं।

—मधुमालती, १३२ १,२ ५

प्रेमा की सहेलियों का शृङ्गार अस्त व्यस्त हो गया। उनकी कंचुकी फट गई। उनकी ग्रीवा का हार टूट गया।[1]

मधुमालती और मनोहर के द्वितीय मिलन का भी विशद चित्रण 'मधुमालती' में हुआ है। उसमें एक स्थल पर यह आता है कि वे अधर से अधर मिलाकर तथा हृदय से हृदय मिला कर सुख से सो रहे थे।[2] यौन सम्बन्ध को बचाकर मंझन मिलन की सारी प्रक्रिया का चित्रण करते हैं जिनसे 'मधुमालती' के दूसरे पात्रों को संदेह भी होता है। इस चित्रण का आशय क्या है? इस पर अभी खोज करने की आवश्यकता बनी हुई है। मंझन ने विवाह के पूर्व के अभिसार को पाप कहा है किन्तु अभिसार के समस्त क्रिया कलाप वह चित्रित करते हैं। केवल सुरत क्रीड़ा की चरम सीमा को बचा लेना ही उनका अभीष्ट प्रतीत होता है। सामाजिक संदर्भ में यह भी नैतिक नहीं है। इसका आध्यात्मिक पक्ष भी बहुत उलझा हुआ है जिसका अध्ययन सम्पूर्ण हिन्दी सूफी साहित्य को समझने के लिए आवश्यक है।

समग्र दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि मंझन एक स्वतन्त्र परम्परा के कवि हैं अतः उनका प्रेम और दर्शन भी कई अर्थों में हिन्दी के अन्य सूफी कवियों से भिन्न है। इस्लामी परम्परा से सम्बद्ध होकर भी वह हिन्दू विचारधारा के अधिक समीप हैं।

---

१. एहि अवस्था तें बर नारी। आई धाइ माँझ चित्रसारी।
बहुतन्हि के कंकन कर फूटे। बहुतन्ह हार उरहिं के टूटे।
बहुते अधर पयोधर टोवहि। बहुते चीन्ह उरहिं देखि रोवहिं।
बहुते हंसहिं बहुत बिलखाहीं। बहुते मांता पितहि संकाहीं।
बहुतन्हि सीस केस मो कराए। बहुतन्हि काजर नैन नसाए।
समै सिंगार भंग भा कोइ हंस कोइ बिलखाइ।
भौंर भये जियं भरमीं घर दिसि धाइ न जाइ।

—मधुमालती, छन्द, २०७

२. अधर-अधर उर-उर सेजं मेरइ रहे सुख सोइ।
देखरा समुझि न जिय परहिं दहुं हहिं एक कि दोइ॥

—मधुमालती, ३२४।६,७

१४

फ़ारसी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों की प्रवृत्तियाँ

हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों में एक ओर फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों की परम्पराएँ सुरक्षित हैं तो दूसरी ओर इनमें भारतीय काव्यों की प्रवृत्तियाँ भी मुखर हुई हैं। अतः हिन्दी के प्रेमाख्यानों का अध्ययन तभी पूर्ण हो सकता है जब फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों की उन प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया जाय जो उनमें मुख्य रूप से पाई जाती हैं। फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों में प्रेमनिरूपण की जो भावभूमियाँ हैं, वे हिन्दी प्रेमाख्यानों के रचयिताओं को प्रेरणा देती रही हैं, तथापि इन दोनों के परिप्रेक्ष्य में पर्याप्त अन्तर भी है। प्रेम का मूल संदेश प्रायः एक प्रकार का रहते हुए भी इसके विकास की विभिन्न स्थितियाँ दोनों में भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट हुई हैं। भारतीय प्रेमाख्यानों पर भारतीय वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ गया है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य केवल उन परम्पराओं और प्रवृत्तियों का उद्घाटन करना नही है जो फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों में पाई जाती हैं बल्कि यह भी स्पष्ट करना है कि हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों में, वे कैसे गृहीत हुई हैं, और यहाँ कौन-सी निजी विशेषताएँ आ गई हैं।

फारसी में लैला-मजनूं, शीरीं-खुसरो, यूसुफ-जुलेखा, तथा वामिक-आजरा की कथाओं को लेकर मसनवियां लिखी गयी हैं। इन मसनवियों को ही यहाँ फारसी प्रेमाख्यान की संज्ञा दी गयी है। इनमें से कुछ कथाओं की रेखाओं के भीतर सूफियाना रंग भरकर सबसे पहले निज़ामी ने अपनी अपूर्व प्रतिभा दिखलायी। निज़ामी का प्रभाव भारतीय सूफी कवि अमीर खुसरो पर पड़ा है। उन्होंने स्वीकार किया है, "निज़ामी वह हैं जिन्होने शब्दो का अमृत बहाया और उनकी सारी उम्र उसी पूंजी

बुनियाद कायम हो गयी है। मेरे दिल में अरसे से यह ख्याल था कि उस बाग से फूल चुनूं जिनसे निज़ामी गुजरे हैं।"[1]

उनके काव्य की प्रशंसा करते हुए अमीर खुसरो ने कहा है, "निज़ामी ने उन बातों को नहीं छोड़ा है जो कथनीय हैं। किसी गौहर को उन्होंने बिना बेधे हुए नहीं छोडा है।"[2] निज़ामी की पाँच मसनवियां—१. शीरीं-खुसरो, २. लैला मजनूं, ३. मखज़नुल असरार, ४. हफ्तपैकर ५. इस्कंदरनामा।

निज़ामी को आदर्श बनाकर ही अमीर खुसरो ने अपनी ५ मसनवियाँ या खम्सा लिखा। पर अमीर खुसरो मूलतः भारतीय कवि हैं और उनके काव्य पर भारतीय परम्पराओं का प्रभाव कम नहीं पड़ा है। निज़ामी का प्रभाव फारसी के अन्य कवियों पर भी पड़ा। उनकी अनुकृति पर ही क़िरमान के खाज़ू ने (१२८१ ई०–१३५२ ई०) अपना खम्सा लिखा। लेवी महोदय ने कहा है, "खाज़ू प्रथम ज्ञात कवि हैं जिन्होंने निज़ामी के अनुकरण पर अपना खम्सा लिखा।"[3]

फारसी के दूसरे प्रख्यात कवि जामी हैं जिन्होंने अपना आदर्श निज़ामी को बनाया। उन्होंने ५ मसनवियां निज़ामी और अमीर खुसरो के आदर्श पर लिखीं। पर उनकी दो और स्वतंत्र मसनवियां हैं—१. सिलसिलातुल जहब, २. सभातुल अबरार।

जामी ने कहा है कि "पहले मेरी इच्छा थी कि निज़ामी की भाँति पांच मसनवियाँ ही लिखूं परन्तु मैंने सिलसिलातुल जहब तथा सभातुल अबरार दो और लिखकर संख्या बढ़ा दी है।[4]"

तुर्की साहित्य के कवियों को भी प्रेरणा निज़ामी से मिली है। शेखी ने (मृत्यु १४२९-३० ई०) अपनी 'शीरीं व खुसरो' मसनवी निज़ामी के आधार पर लिखी।[5] शेखी

---

१. निज़ामी काबे हैवां रेख़्त अज़ हर्फ़।
हमां उमरश दरां सरमाया शुद सर्फ़॥
चुनाँ दर खम्सा दाद अंदेशा रा दाद।
के दर सब अशदादश बस्त बुनियाद॥
दिलम देरस्त कि सौदा बसर दाश्त।
कि गुल चीनम जे बागे कू गुज़र दास्त॥
शीरीं-खुसरो, अमीर खुसरो, सम्पादक—मौलवी हाजीअली अहमद खाँ, मुस्लिम यूनिवर्सिटी प्रेस, अलीगढ़, सन् १९२७, भूमिका, पृष्ठ २७।

२. निज़ामी चूं सोखन ना गुफ्ता न गुज़ास्त।
जे खूबी गौहरे ना सुफ्ता न गुज़ास्त।—शीरीं-खुसरो, पृ०, २७।

३. परशियन लिटरेचर—रुबेन लेवी, लंदन, १९४५, पृ० ७२।

४. क्लासिकल परशियन लिटरेचर—ए० जे० आरबेरी, लंदन, १९५८, पृ० ४३८

५ ए हिस्ट्री आफ आटोमन पोयट्री—इ० जे० डब्ल्यू, गिब्ब, १९०० ई०, भाग १, पृ० ३०५

इस मसनवी के आधार पर तुर्की साहित्य में अमर हैं। बाद में तुर्की के कई अन्य कवियों ने इस कथा को अपनाया जिनमें 'जलीली' और 'अही' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये कवि शेखी के एक शतक बाद के हैं। हिन्दी में 'पद्मावत' लिखे जाने के पूर्व जामी और शेखी को पर्याप्त ख्याति मिल चुकी थी।

निज़ामी की सर्वप्रथम मसनवी खुसरो-शीरीं है। इसकी सामग्री उन्होंने अपने पूर्व के एक इतिहासकार तबेरी से संकलित की है।[1] ब्राउन महोदय का मत है कि निज़ामी अपनी सामग्री और शैली, दोनों दृष्टियों से फिरदौसी का अनुकरण करते हैं न कि सनाई का। यद्यपि उनके काव्य का विषय—सासानी बादशाह खुसरो परवेज के पराक्रम, शीरीं से प्रेम, एवं फरहाद के दुर्भाग्य की कहानी—फिरदौसी या उसके सदृश किसी अन्य स्रोत से लिया गया है, तथापि उन्होंने इसको अपने ढंग से प्रस्तुत किया है जिससे वह वीर-काव्य से अधिक प्रेम-काव्य हो गया है।[2]

खुसरो-शीरीं में नायक खुसरो है जो मदाइन के बादशाह हुरमुज का बेटा है और नौशेरवां का पोता है। एक दिन उसका एक मित्र शाहपुर जो एक कुशल कलाकार भी है, शीरीं की प्रशंसा उससे करता है। शीरीं परम सुन्दरी और रूपवती है और आर्मन के मेहबानों की भतीजी है। खुसरो परवेज उस पर आसक्त हो जाता है। शाहपुर उसका संदेश लेकर आर्मन पहुँचता है और शीरीं को परवेज की ओर आकृष्ट करता है। शीरीं और खुसरो मिलते हैं और बाद में उनका विवाह होता है।

इस काव्य में फरहाद का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। वह एक शिल्पी है जो शीरीं पर अनुरक्त हो गया है। खुसरो फरहाद के प्रेम का समाचार पाकर जल उठता है। वह आदेश देता है कि यदि वह शीरीं से सचमुच प्रेम करता है और उसे प्राप्त करना चाहता है तो बेसतून पर्वत को काटकर एक नहर बनावे जिससे शीरी के लिए दूध आ सके। फरहाद इस पर तैयार हो जाता है और कोहे बेसतून को काटना शुरू करता है। शीरीं की एक प्रतिमा बनाकर सामने रख लेता है और उसकी प्रेरणा से अपना कार्य पूर्ण करने लगता है। शीरीं खबर पाकर एक दिन उसे देखने जाती है और घोड़े पर से गिर जाती है। फरहाद शीरीं को घोड़े के साथ अपनी गर्दन पर ले लेता है। नहर पूर्ण होती है। इसी बीच खुसरो परवेज यह खबर फैला देता है कि शीरीं की मृत्यु हो गयी। फरहाद यह समाचार सुनकर बेचैन हो जाता है और पर्वत से गिरकर अपनी जान दे देता है। शीरीं उसका मजार बनवाती है ताकि प्रेमियो के लिए वह स्थान तीर्थस्थल बन सके। खुसरो इस बात पर शीरीं से क्रुद्ध हो उठता है। पर फिर कुछ दिनों बाद उससे प्रसन्न होता है और दोनों आराम से रहने लगते हैं। अन्त में खुसरो परवेज की हत्या कर दी जाती है। शीरीं उसको दफ़न कर आत्महत्या कर लेती है।

---

१. ए हिस्ट्री आफ आटोमन पोयट्री—भाग १, पृ० ३१०

२ ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ परशिया—भाग २ लंदन १९५६ पृ० ४०४-५

निज़ामी ने इस काव्य में दो प्रकार के प्रेमियों की विषमता दिखलायी है। फरहाद और खुसरो दो प्रकार के प्रेमी हैं। खुसरो पहले बादशाह का बेटा है, फिर प्रेमी है। इसके बाद बादशाह है, फिर शीरीं का पति है। उसके जीवन का अन्त उसका बेटा शीरवै करता है, पर शिल्पी फरहाद काव्य में प्रेमी के रूप में प्रकट होता है। प्रारम्भ से अन्त तक प्रेमी ही रहता है। प्रेम ही उसके जीवन का सम्बल है। इसके लिए ही वह मृत्यु का आलिंगन करता है। वह साधक है। शीरीं उसकी प्रेरणा है, साधन है, साध्य है।

निज़ामी एक समर्थ कवि हैं, पर 'खुशरो-शीरीं' में वह सूफी मान्यताओं का सम्यक् निरूपण नहीं कर सके हैं। फरहाद की मृत्यु के बाद भी शीरीं की मनोदशा मे परिवर्तन नहीं होता। वह अपने प्रथम प्रेमी खुसरो से विवाह करती है और उसकी मृत्यु के बाद आत्महत्या करती है। फरहाद के मरने के बाद वह केवल मज़ार बनवाकर ही संतोष कर लेती है। फरहाद की उपेक्षा क्यों है, इसका समाधान निज़ामी के काव्य में नहीं मिलता।

जहाँ 'लैला-मजनूं' में वह दोनों प्रेमियों की मृत्यु कराकर, उनका स्वर्ग में मिलन कराते हैं वहीं 'खुसरो-शीरीं' में फरहाद की इतनी बड़ी कुर्बानी, इतना उच्च-प्रेम तथा एकनिष्ठता के समक्ष हम शीरीं को पिघलती हुई नहीं पाते। उसका इतना बड़ा त्याग अकारथ जाता है। फिर भी वह कहीं-कहीं सूफियाना संकेत देते हैं। जीवन की क्षणिकता के सम्बन्ध में वह कहते हैं, "जिंदगी का बाग कितना उम्दा बाग है अगर वह खिज़ां की हवा से महफूज होता। कितना अच्छा है महल ज़माने का अगर उसकी बुनियाद हमेशा की होती। यह दिल को लुभाने वाला महल इस कारण से सर्द मालूम होता है कि जब यहाँ थोड़ी गर्मी आयी तो (वह) तुझसे कहता है—उठ !![1]"

निज़ामी का दूसरा काव्य 'लैला-मजनूं' है। इसमें कवि ने अरब की प्रख्यात कथा को ग्रहण किया है जिसको तुर्की और भारतीय कवियों ने भी अपनाया। इसकी रचना ११८८ ई० मे प्रारम्भ हुई।[2] कथा इस प्रकार है—

---

१. चे खुश बाग़स्त बाग़े जिन्दगानी।
गरऐमन बाशद अज़बादे खेज़ानी॥
चे खुर्रम काख शुद क़ाखे ज़माना।
गरशबाशद असासे जावेदाना॥
अज़ां सर्द आमद ईक़स्रे दिल आवेज़।
कि चूं जा गर्म कर दी गोयदत खेज़॥
खुशरो-शीरीं—निज़ामी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, १३२० हिजरी पृष्ठ ४९,।

२ क्लासिकल परशियन लिटरेचर ए० जे० आरबेरी लंदन १९५८ ई० पृ० १२४

"क़ैस मुल्के अरब के एक अमीर का लड़का था। मखतब में वह लैला पर आशिक हुआ। लैला भी उस पर फरेफ्ता हुई। प्रेम का उदय होते ही दोनों एक-दूसरे के लिए बेकरार रहने लगे। कैस को उन लोगों ने मजनूं (पागल) कहना शुरू किया जो कभी प्रेम में नहीं फंसे थे। लोग उस पर ताने कसने लगे। कुत्ते की तरह जबान निकालने लगे। जब लैला के माँ-बाप को यह खबर मिली तो उस पर कड़ा नियंत्रण कर दिया गया। हरिण के बच्चे को दूध से छुड़ा दिया गया। उसकी आँखें आँसुओं से भरी रहती। मजनूं भी उसके विरह में तड़प उठा। गली, कूचे और बाजार में भ्रमण करने लगा। उसकी आँखों में सैलाब था। दिल में कसक थी। वह हृदयविदारक गाना गाया करता था। रो-रोकर आशिकों की भाँति पढ़ता था। वह चलता तो लोग 'मजनूं-मजनूं' कहकर व्यंग्य बरसाते। उसकी नींद जाती रही थी। वह न दिन को खाता था। और न रात में सोता था। हर रात जुदाई के अशआर पढ़ा करता था। महबूब (प्रेमपात्र) की गली में वह प्रायः जाता और लैला के घर का दरवाजा चूम कर वापस आ जाता। वह असंख्यबार लैला का नाम लेता था। लैला से मिलने के अतिरिक्त उसके मन में और कोई इच्छा शेष नहीं थी। लैला के परिवार वालों को जब यह खबर मिली तो उन्होंने नियंत्रण और कड़ा कर दिया। मजनूं की हालत दिन पर दिन खराब होती जा रही थी। वह पूर्वी हवा के सामने खड़ा हो जाता और कहता कि तू जाकर उससे कहना, "तेरा बरबाद किया हुआ तेरे रास्ते की खाक पर पड़ा हुआ है। तुझे छूकर जो हवा आती है उसमें वह रूह ढूंढ़ता है। अपने घर की कुछ हवा भेज दे और अपने बारगाह की कुछ खाक़ भेज दे।"

मजनूं का बाप लैला के परिवार वालों के यहाँ यह पैगाम लेकर आता है कि लैला की शादी मजनूं से कर दी जाय। पर उसे सफलता नहीं मिलती। तब उसका पिता मजनूं को नसीहत करता है। इससे उसकी दशा और करुण हो उठती है। पिता उसको काबा ले जाता है ताकि शायद वह स्वस्थ हो जाय। पर वहाँ भी मजनूं लैला के प्रेम का ही वरदान मांगता है और कहता है कि मेरी उम्र कम हो जाय पर लैला की उम्र कम न हो। लैला के पिता उसका विवाह इब्नेसलाम से कर देते हैं और लैला दुल्हन बनती है। मजनूं अब पहाड़ तथा जंगलों में भटकने लगता है। उसकी मां और पिता दोनों की मृत्यु हो जाती है। लैला के पति इब्नेसलाम की भी मृत्यु होती है। लैला पवित्र आचरण के साथ मजनूं से मिलती है, फिर उसकी मृत्यु हो जाती है। मजनूं भी उसकी कब्र पर अपनी जान दे देता है। स्वर्ग में दोनों मिलते हैं।

निजामी का 'लैला-मजनूं' सूफी विचारधारा का एक प्रौढ़ काव्य है जिसमें कवि ने प्रेम साधना को भली भाँति स्पष्ट किया है। प्रेम का महत्त्व बतलाते हुए उन्होंने कहा है "जो इश्क हमेशा नहीं रहने वाला है वह जवानी की ख्वाहिशात का खेल है इश्क वह है जो कम न हो और उससे कदम न हटे मजनूं जब तक जिन्दा

रहा, इश्क का बोझ उठाता रहा। फूल की तरह इश्क की नसीम के साथ खुश रहा।"[१]

लैला और मजनूं के प्रेम के माध्यम से 'हक़ीक़ी' प्रेम को स्पष्ट करने का प्रयत्न कवि ने किया है। सांसारिक प्रेम के सहारे ही साधक ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त करता है। मजनूं कहता है, "यह बिजली जो मेरे ऊपर गिरी है वह एक ढेर को नहीं जला रही है, हजारों ढेरों को जला रही है। मैं इस जुल्म में तनहा नहीं हूँ। सैकड़ों ने इस जुल्म को बरदाश्त किया है।"[२]

"लैला केवल मात्र हाड़ मांस की एक सजीव प्रतिमा नहीं है बल्कि वह दुनिया को रोशन करने वाली सुबह है।"[३] निज़ामी यह भी कहते हैं कि "वह दिल जो मुहब्बत से खाली हो, उसे ग़म का सैलाब ले जाता है।"[४]

प्रेम का मार्ग कठिन है। इसमें अनेक प्रकार के कष्ट अनिवार्य हैं पर सच्चा प्रेमी अपने पथ से विचलित नहीं होता। मजनूं के पिता विक्षिप्त मजनूं को काबा ले जाते हैं और उससे कहते हैं, "ऐ बेटे! यह खेलने की जगह नहीं है, यह चारासाजी की जगह है। काबे के हल्के को तुम हाथ में रख लो और दुआ माँगो कि तुम इस व्यर्थ कार्य से मुक्ति पा जाओ। कहो कि ऐ खुदा! मेरी खबरगीरी कर। मैं प्रेम में निमग्न हो गया हूँ। मुझको प्रेम की विपत्ति से छुड़ा।"[५]

मजनूं इश्क की बात सुनकर थोड़ा रोया। फिर हँसा। सांप की तरह उछला और उसने काबे के हल्के को पकड़ लिया और कहा, "खुदा! आज मैं तेरे दरवाजे पर खड़ा हूँ। लोग कहते हैं इश्क से अलग हो जाऊँ। यह मुहब्बत का तरीका नहीं है। मैं इश्क़ से शक्ति प्राप्त करता हूँ। अगर इश्क जाता रहा तो मैं मर जाऊँगा।

---

१. इश्क़े के न इश्क़ जावेदानीअस्त।
बाज़ीं चये शहबते जवानीअस्त॥
इश्क आं बाशद कि कम न गर्दद।
ता बाशद अजां कदम न गर्दद॥
ता ज़िदा ब इश्क़ बार कश बूद।
चूं गुल बनसीमे इश्क़ खुशबूद॥—लैला-मजनूं,
निज़ामी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ १८८० ई०, पृ० ३०

२. ई सायक़ा कुफ्ताद बर मन।
शोज़द न यके हज़ार खिरमन॥—लैला-मजनूं,
निजामी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, १८८० ई०, पृ० ३४

३. लैला न के सुबह गेती अफ़रोज़।—लैला-मजनूं—निज़ामी, पृ० २६

४. लैला-मजनूं—वही—पृ० ३१

५ " "—वही—पृ० ३०

मेरी खमीर इश्क से पाली गयी है। मेरी क़िस्मत इश्क के बगैर न हो। ऐ खुदा! तू मेरे इश्क को चरम सीमा पर पहुँचा दे। मैं भले ही न रहूँ, पर वह रहे। इश्क के चश्में से मुझे नूर दे। इस नूर से मेरी आँख को दूर मत कर। मुझे इश्क की शराब में और शराबोर कर दे। लोग कहते हैं कि इश्क के कांटे को निकाल दे, लैला को दिल से अलग कर दे। ऐ खुदा! मेरी जिन्दगी में से जितना बाकी है उसे ले ले और उसकी जिन्दगी को बढ़ा दे।"[1]

प्रेम के प्रति यह एकनिष्ठता तथा यह आत्म-समर्पण सूफी साधना की मुख्य विशेषता है। यह मार्ग पवित्रता का है। मर कर ही सच्चा प्रेम प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए मृत्यु को निज़ामी ने बाग और बोस्तां कहा है, उसे प्रिय के यहाँ जाने का रास्ता कहा है।[2]

'लैला-मजनू' में दोनों प्रेमी एक दूसरे से भेंट करते हैं पर पवित्रता और वासना-हीनता के साथ। एक पीर की सहायता से दोनों मिलते हैं पर ज्यों ही दोनों प्रेमी एक दूसरे को स्पर्श करने के लिये कदम बढ़ाते हैं, मजनूं सावधान हो जाता है और कहता है कि "यह रास्ता मुहब्बत का नहीं है।[3]" फिर दोनों पृथक् हो जाते हैं। जामी के काव्य 'यूसुफ-जुलेखा' में भी यूसुफ का जुलेखा से शारीरिक मिलन नहीं होता। प्रेम-साधना में वासना के लिए कोई स्थान नहीं है। इसमें नफ़्स पर विजय पाना आवश्यक है। यह दृष्टिकोण ईरान के फारसी प्रेमाख्यानों के अध्ययन से स्पष्ट प्रकट हो जाता है। पर भारत में आकर सूफी प्रेमाख्यानों में एक मुख्य परिवर्तन यह दिखाई पड़ता है कि यहाँ के कवि अमीर खुसरो, जायसी और मंझन आदि संभोग का वर्णन खुलकर करते हैं। संभोग के इस चित्रण को ईरान के प्रेमाख्यानकार निज़ामी और जामी स्थान नहीं देते। निज़ामी के 'खुसरो-शीरीं' में खुसरो को भी आलिंगन या रमण करते नहीं चित्रित किया गया है।

'लैला-मजनूं' एक सफल सूफी प्रेमाख्यान है। इसमें निज़ामी की विचारधारा स्पष्ट रूप से सामने आती है। 'खुसरो-शीरीं' में फरहाद मे सूफी प्रेम साधना के समस्त लक्षण दिखाई पड़ते हैं। पर उसका व्यक्तित्व सागर की एक लहर की भाँति उठकर फिर विलीन हो जाता है। खुसरो परवेज़ का ही व्यक्तित्व प्रारम्भ से अन्त तक काव्य में उभरता या अमरबेलि की भाँति छाया हुआ दिखाई पड़ता है। पर प्रेम की अमरता, जीवन की नश्वरता तथा त्याग और आत्मसमर्पण की महत्ता इस काव्य में भी प्रकट हो जाती है। सूफी प्रेम साधना अशरीरी है। फरहाद और मजनूं दोनों के प्रेम में इसीलिए इतनी तड़प, इतनी आकुलता और इतनी चीखपुकार होते हुए भी कहीं मांसलता नहीं है। दोनों पवित्र प्रेम के अनुगामी हैं। इसके लिए वे मृत्यु को

---

१. लैला-मजनूं—वही, पृ० ३१

२ लैला-मजनू निजामी पृ० ४

३ " —वही पृष्ठ ८० ८३

वरण करते हैं। निज़ामी के 'लैला मजनू' का प्रभाव तुर्की के कवियों पर पड़ा। इस कथा को बगदाद के फज़ूली ने अपनाया।[1]

निज़ामी के अनुकरण पर भारत में अमीर खुसरो ने अपना खम्सा लिखा। पर अमीर खुसरो भारत के कवि हैं, अतः उन पर भारतीय वातावरण का प्रभाव कम नहीं है। कुछ समसामयिकों ने अमीर खुसरो की कटु आलोचना की।[2] इसीलिए सम्भवतः उन्हें कहना पड़ा कि मेरे काव्य का सितारा ऊँचा उठ गया है, जिससे निज़ामी की कब्र में जलजला आ गया है।[3] पर यह बात उन्होंने सम्भवतः केवल आलोचकों को उत्तर देने के लिए ही कही क्योंकि अनेक स्थलों पर वह निज़ामी की महत्ता स्वीकार करते हैं।[4] अमीर खुसरो की मृत्यु के लगभग ५० वर्ष बाद हिन्दी मे सूफी प्रेमाख्यानों का प्रणयन प्रारम्भ हुआ अतः यह देख लेना आवश्यक है कि निज़ामी और अमीर खुसरो में समता और विषमता कितनी है।

समानता की पहली बात तो यह है कि निज़ामी तथा अमीर खुसरो, दोनो कवियों के फ़ारसी प्रेमाख्यानों में नायिकाओं का विवाह प्रेमी या आशिक से न किया जाकर किसी अन्य व्यक्ति से कर दिया जाता है। इससे प्रेमी नायकों का जीवन अत्यन्त कष्ट-संकुल हो जाता है। इसके विपरीत हिन्दी के उत्तरी भारत के प्रेमाख्यानो मे प्रेमिकाएँ प्रायः कुमारियां रहती हैं। उनका विवाह यदि होता है तो केवल उन प्रेमियों से जो कष्टों को झेलते हुए उन तक पहुँचते हैं। निज़ामी के 'लैला-मजनू' मे लैला का विवाह मजनू से न कराकर इब्नेसलाम से कराया गया है। 'खुसरो शीरीं' मे नायिका का वैवाहिक सम्बन्ध फरहाद से न होकर खुसरोपरवेज से होता है। इसका प्रभाव यह पड़ा है कि फारसी प्रेमाख्यानों मे चित्रित किये गये प्रेमियों में अधिक तड़प, दर्द, चीत्कार, और विक्षिप्तता है।

निज़ामी की मसनवियों में दो प्रकार के प्रेमी हैं। एक तो सूफियाने रंग मे रंगे हुए, फरहाद और मजनू जैसे व्यक्ति हैं, जिनकी सारी आशाएँ, आकांक्षाएँ और क्रियाएँ केवल एक केन्द्र-बिन्दु पर अपना वृत्त बनाती हैं। अपनी प्रेमिकाएँ ही उनके लिए सब कुछ हैं। पर दूसरे प्रकार के नायक वे हैं जो सूफी साधना का प्रतिनिधित्व नही करते बल्कि संसारी हैं। इनके जीवन में अनेक नायिकायें आती हैं। खुसरो परवेज़ की दो पत्नियाँ हैं मरियम और शकर। फिर शीरीं जीवन में आती है। हफ्त-पैकर में बहरामगोर की सात पत्नियां हैं। पर फरहाद और मजनू की दृष्टि एकमात्र

---

१. ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ परशिया—भाग २, पृष्ठ ४०६
२. लाइफ एण्ड वर्क्स आफ हजरत अमीर खुसरो—वाहिद मिर्जा, पृष्ठ १६१
३. कौकबये खुसरमेव शुद बलंद।
दरगोरे निज मी फगद —वही पृष्ठ १६१
४ लाइफ एण्ड वर्क्स आफ अमीर खुसरो वही—पृष्ठ १६१ १६२

अपनी प्रेमिकाओं पर जमी रहती हैं। अमीर खुसरो की दृष्टि जरा भिन्न दिखाई पडती है। उन्होंने मजनूं का विवाह नौफल की लड़की से कराया है। पत्नी के रहते हुए भी उसका लैला के प्रति प्रेम कम नहीं होता। जामी की 'यूसुफ-जुलेखा' में भी जुलेखा का विवाह मिस्र के वजीर से हो जाता है। पर यूसुफ से उसका चित्त विमुख नहीं होता। जामी फिर जुलेखा का यूसुफ से विवाह कराकर अपना काव्य समाप्त करते हैं। जामी का यूसुफ-जुलेखा १४८३ ई० की रचना है।[1] उन पर अमीर खुसरो का प्रभाव स्वीकार किया गया है।

निज़ामी ने प्रेम की जिस उच्च भावभूमि पर 'लैला-मजनूं' को स्थिर किया है, उसी भावभूमि पर जामी ने अपना 'यूसुफ-जुलेखा' भी प्रतिष्ठित किया है। जामी ने प्रारम्भ में ही कहा है कि "उसके सौंदर्य ने ही लैला की मुखाकृति को सुन्दर बनाया जिसके केश पर मजनूं लुब्ध हो गया। उसने शीरीं के मधुर अधरों की रचना की जिस पर परवेज और फरहाद का हृदय आसक्त हो गया। उसके कारण ही यूसुफ का मस्तक उन्नत हुआ और उस पर दृष्टि डालते ही जुलेखा मिट गयी।"[2]

जामी ने अपनी मसनवी में ईश्वर को शाश्वत सौंदर्य कहा है। यह सौंदर्य संसार की समस्त सुन्दरताओं में श्रेष्ठ है।[3] उन्होंने यूसुफ और जुलेखा में सांसारिक प्रेम को अपनाकर ईश्वरीय प्रेम प्राप्त करने का आदर्श प्रस्तुत किया है। उनका कथन है, "सांसारिक प्रेम का रसपान करो ताकि पवित्र प्रेम की मदिरा से परिचित हो सको। पर अपनी आत्मा अधिक समय तक वहाँ न टिकने दो। इस पुल से गुजर जाओ। तेजी से आगे बढ़ जाओ।"[4]

जुलेखा उस समय तक यूसुफ से नहीं मिल पाती जब तक वह अपनी समस्त वासनाओं का परिष्कार नहीं कर लेती। वासनाओं के झकझोरों ही ने उसे यूसुफ को तिरस्कृत करने को विवश किया, उन्हें बंदी बनवाया। पर वे अडिग रहे। जब जुलेखा अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर लेती है, यूसुफ सुलभ हो जाते हैं। काव्य के अंत में फरिश्ता आता है और यूसुफ से कहता है, "मैंने जुलेखा को विनत मुद्रा में देखा है। मैंने उसकी प्रार्थना सुनी है। अतः मैं उसकी आत्मा को निराशा से मुक्त करता हूँ और अपने सिंहासन से तुम्हारा विवाह जुलेखा से कराता हूँ।"[5]

---

१. क्लासिकल परशियन लिटरेचर—आरबेरी, पृ० ४४२
२. यूसुफ़ एण्ड ज़ुलेखा—अनुवादक, ग्रिफिथ, लंदन, १८८२ ई०, पृ० २१
३. Yes, though she shrinks from earthly lover's call
Eternal beauty is the queen of all. वही—पृ० २१
४. यूसुफ़ ज़ुलेखा—पृ० २४
५. Thus spoke the Angel : To thee O king,
From the lord almighty a message I bring
Mme eyes have seen her m humble mood
I heard her prayer when to thee she Sued

पर इस विवाह के पूर्व जुलेखा को फकीरी जीवन व्यतीत करना पड़ता है, निष्काम होना पड़ता है। मजनूं की भाँति कष्टों को झेलना पड़ता है। विरह की अग्नि में तपना पड़ता है। वृद्धावस्था में यूसुफ उसे प्राप्त होते हैं। ईश्वरीय कृपा से वह फिर युवती होती है। पर अब वह विशुद्ध प्रेम की अनुगामिनी है। ईश्वरीय प्रेम का वास उसके हृदय में हो गया है।

मजनूं का नौफल की लड़की से विवाह अमीर खुसरो की अपनी सृष्टि है। निज़ामी ने इस प्रसंग को नहीं लिया है। अमीर खुसरो में यह प्रसंग क्यों आया, इसके कई कारण प्रतीत होते हैं। जिस समय अमीर खुसरो के काव्यों की रचना हो रही थी उस समय हुज्वेरी तथा अलगज़ाली जैसे साधकों के प्रयास से कुरान को सूफीमत ने अपना आधार ग्रन्थ स्वीकार कर लिया था जिसमें विवाहित जीवन की अनिवार्यता पर जोर दिया गया है।[1] अलगजाली ने स्वयं विवाहित जीवन का समर्थन किया है।[2] बाबा फरीद ने भी विवाहित जीवन का समर्थन किया है। उन्होंने स्वयं पारिवारिक जीवन व्यतीत किया।[3] ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया उन्हीं के शिष्य थे और अमीर खुसरो के गुरु भी थे।

हिन्दी में जो प्रेमाख्यान लिखे गये हैं उनमें प्रायः नायक विवाहित रहते हुए प्रेम साधना की ओर बढ़ते हैं। यह सनातन इस्लाम से सूफीमत के समझौते का प्रतिफल हो सकता है। सूफीमत का यही समन्वित रूप भारत में आया।

निज़ामी और अमीर खुसरो में एक अन्तर और स्पष्ट है। अमीर खुसरो ने अपनी 'शीरीं-खुसरो' मसनवी में संभोग का चित्रण किया है।[4] उन्होंने इस मसनवी मे खुसरो और शीरीं के मिलन के प्रसंग का चित्रण करते हुए कहा है, "जब खुसरो मस्त हो गया तब सुन्दरियों को छोड़कर एकान्त में चला गया और ऐश आराम करने के लिए पोशिदा हो गया.........।" इसके पश्चात् नायक नायिका (शीरीं) का शृङ्गार

Her soul from the sword of despair I free
And here from my throne I betoth her thee.

यूसुफ एण्ड जुलेखा—वही, पृ० २९६

१. चौथा पारा, सूरे निसा, आयत ३; १३ वां पारा, सुरे राद, आयत, ३८, हिन्दी कुरान—अहमद बशीर लखनऊ

२. अलग़ज़ाली दी मिस्टिक—मार्गरेट स्मिथ, अध्याय ४

३. दी लाइफ एण्ड टाइम्स आफ शेख फरीदुद्दीन गंजेशकर—खलिक अहमद निज़ामी, पृ० ३९

४. शीरीं-खुसरो—अमीर खुसरो, मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़, १९२७ ई०, पृ० २१८ २४३

करता है। दोनों अतीव प्रसन्न होते हैं। अमीर खुसरो के अनुसार "दिल की ख्वाहिशो ने हवस की लगाम पकड़ ली और सब्र तीर की तरह सीने से निकल गया। दोनो ने एक दूसरे के हाथों को पकड़ा और बज्मगाह (महफिल) से शबिस्तां (रात को सोने की जगह) की तरफ चले गये। सबसे पहले उस प्यासे होठ वाले तथा खुश्क लबबेताब ने मुह को आबेहयात से सैराब किया और जब शहद जैसे शर्बत से फारिग हुआ तो उसको अपनी गोद में खींचा"[1] इसके बाद रमण का चित्रण है। संभोग के चित्रण की परम्परा ईरान को सूफी मसनवियों में नहीं है। जामी की 'यूसुफ-जुलेखा' में जुलेखा का विवाह मिस्र के वजीर के साथ हुआ, फिर यूसुफ से हुआ पर अभारतीय कवि जामी ने मिलन और संभोग का वर्णन नहीं किया है। अमीर खुसरो में यह प्रवृत्ति भारतीय वातावरण से आयी है। हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों में भी संभोग-शृङ्गार का सुव्यवस्थित चित्रण मिलता है। इसका मूलस्रोत भारतीय साहित्य में है। फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों में सबसे पहले इस प्रकार का चित्रण अमीर खुसरो की 'शीरीं-खुसरो' में किया गया मिलता है।

अकबर कालीन कवि फैजी ने भी अपने 'नलदमन में प्रणय और मिलन का चित्रण किया है—"इश्क में दिल और जबान एक हो गयी। तन-तन के साथ और जान-जान के साथ एक हो गया। दोनों वफ़ादारी का अहदो पैमान करने लगे और रुई और शोले की तरह एक दूसरे में लग गये। इशारों-इशारों में राज कहने लगे। सीने से सीने में जाहिर करने लगे। छपरखट में सैकड़ों जलवे करने लगे।"....[2]

---

१. चू खुसरू मस्त शुद बानाजनीनां।
बखलबत रफ्त अजां ख़िलवत नशीनां॥
नेहा गश्त अजपये इशरत नवाज़ी।
कज़ आबो गिल कुनद गुलरा नमाज़ी॥—वही, पृ० २३८
दो आशिक़ रा क़रारे दिल बर ओफ्ताद।
निशाते कामरानी दरसर ओफ्ताद॥
हवाये दिल हवसरा शुद एनागीर।
शकेब अज़सीना बेरू जस्त चू तीर॥
गिरफ्ता दस्ते यक दीगर चू मस्तां।
शुदन्द अज बदम गहसूये शबिस्तां॥—वही, पृ० २४०
न खुस्त आ तशनये लब खुश्क बेताब।
दहन अज़ आबे हैवां कर्द सैराब॥
चू फारिग शूद जे शर्बत हाये चू नोश।
कशीद आ सर्वरा चू गुल दरागोश॥—वही, पृ० २४०
२. आखिर ज़ेम्यां हिजाब बर्खास्त।
बज रूए दुई नक़ाब बर्खास्त

निज़ामी और जामी की मसनवियों में इस प्रकार के चित्रण नहीं पाये जाते। ईरान के अन्य सूफी प्रेमाख्यानों में भी इस प्रकार के प्रसंग नहीं है। अतः हम सरलतापूर्वक कह सकते हैं कि अमीर खुसरो तथा फैजी ने इस प्रवृत्ति को भारतीय परम्परा से ग्रहण किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों से जहाँ हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों के प्रेम निरूपण में समानता है, वहीं विभिन्नता भी कम नहीं है। भारत के फारसी सूफी प्रेमाख्यानों में भी ईरान के फारसी सूफी प्रेमाख्यानों से अन्तर आ गया है और हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों में यह अन्तर अधिकाधिक गहरा होता चला गया है।

दर इश्क़ दिलो ज़बाँ यके शुद।
तन बातनो जाँ बजाँ यके शुद॥
पैमाने वफ़ा ज़े सर गिरफ्तंद।
चूँ पुम्बओ शोला दर गिरफ्तंद॥
अज़ दीदा बदीदा राज़ गुफ्तंद।
वज़ सीना ब सीना बाज़ गुफ्तंद॥
करदंद चो गुल ब ऐश यारीं।
सदजलवा ब हुजलये निगारीं॥

फ़ैजी नवल किशोर प्रेस, लखनऊ १६३० ई० पृ० २१६

नामानुक्रमणिका

सूफ़ीमत, दर्शन और साहित्य से सम्बन्धित चुनी हुई पुस्तकों की सूची

(प्रस्तुत विशद ग्रन्थ सूची हिन्दी के सूफ़ी साहित्य के अनुसंधानकर्ताओं की सुविधा के लिए दी जा रही है। यह सूची सर्वथा पूर्ण न होते हुए भी महत्वपूर्ण ग्रन्थों की उपेक्षा नहीं करती। जहाँ तक हमें ज्ञात है सूफ़ी-संदर्भ ग्रन्थों की इससे पूर्णतर सूची अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इस सूची में ऐसे भी ग्रन्थों को सम्मिलित किया गया है जिनका उपयोग 'सूफ़ी-काव्य-विमर्श' में सीधे नहीं हुआ है।) —लेखक

हिन्दी का सूफ़ी साहित्य और तत्सम्बन्धी अन्य ग्रन्थ

लेखक का नाम	पुस्तक का नाम
अफ़नासी निकीतिन	: 'तीन समुंदर पार की यात्रा' (१४६६-१४७२), रूसी यात्री निकीतन का यात्रा विवरण, मास्को, १९६०।
अब्दुल मुहम्मद हई	: कुरान-मजीद, मक्तबा अल-हसनात रामपुर (उ० प्र०) १९६६।
अमरेश, अमर बहादुर सिंह	: 'कहरानामा और मसलानामा' हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९६२।
अमीर खुसरो	: 'खालिकबारी', सम्पादक—डा० श्रीराम शर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०२१।
आदिलशाह	: अली आदिल शाह का काव्य-संग्रह' सम्पादक—श्रीराम शर्मा आदि, क० मुं० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, १९५८।

इब्ने निशाती : 'फूलबन', सम्पादक—देवी सिंह चौहान महाराष्ट्र राष्ट्र भाषा सभा, पुणें, १९६६।

उमर, मुहम्मद : 'सूफी-सन्त', मिर्जा मज़हर जान जाना, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ २०१७।

उमर, मुहम्मद : 'मुहम्मद-शाह रंगीले की दिल्ली', भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, १९६४।

उसमान : 'चित्रावली', सम्पादक—जगन्मोहन वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (तिथि नहीं है।)

औरंगजेब : 'औरंगजेब के उपाख्यान' (हिन्दी), जदुनाथ सरकार के अंग्रेजी संस्करण पर आधारित, आगरा, १९६७।

कानूनगो, कालिका रंजन : 'दारा शिकोह' (हिन्दी अनुवाद), आगरा, १९५८।

कुतुबन : 'मृगावती', सम्पादक—डा० माताप्रसाद गुप्त प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, १९६८।

कुतुबन : 'मृगावती', डा० शिवगोपाल मिश्र, प्रयाग, शक १८८५।

कुतुबन : 'मिरगावति', डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, वाराणसी, १९६७।

कुलश्रेष्ठ, कमल : 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य', चौधरी मानसिंह प्रकाशन, अजमेर, १९५३।

गवासी : 'सैफुल मुलूक व वदीउल जमाल', सम्पादक-राजकिशोर पाण्डेय, दक्खिनी साहित्य प्रकाशन समिति, हैदराबाद, १९५५।

गुप्त, माताप्रसाद : छिताईवार्ता, काशी, सं० २०१५।

गुप्त, माताप्रसाद : 'जायसी - ग्रंथावली', सम्पादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५२।

गुप्त, माताप्रसाद : 'कुतब शतक और उसकी हिन्दुई', भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९६७।

गुलबदन बेगम : 'हुमायूँ नामा', अनुवादक—श्री ब्रजरत्न दास, काशी, संवत् २००८

चतुर्वेदी, परशुराम : भारतीयप्रेमाख्यान की परम्परा, इलाहाबाद १९५६।

चतुर्वेदी, परशुराम : 'रहस्यवाद', पटना, १९६३।

चतुर्वेदी, परशुराम : 'सूफ़ी काव्य संग्रह', प्रयाग, शक १८८०।

चतुर्वेदी, परशुराम : 'हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान', हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर प्रा० लि०, बम्बई, १९६२।

जयदेव (डा०) : 'सूफ़ी महाकवि जायसी', भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ (प्रथम संस्करण) (तिथि नहीं है)।

जहाँगीर : 'जहाँगीर का आत्म-चरित', (जहाँगीर नामा), अनुवादक—ब्रजरत्नदास, काशी, संवत् २०१४।

जायसी, मलिक मुहम्मद : 'चित्ररेखा', सम्पादक—साहित्याचार्य पं० शिवसहाय पाठक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५९।

जायसी, मलिक मुहम्मद : 'पदमावत', व्याख्याकार—श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, साहित्य-सदन, झाँसी, २०१२।

जायसी, मलिक मुहम्मद : 'पदमावत', सम्पादक—डा० मुंशीराम शर्मा, मनोहर पब्लीकेशन्स, कानपुर, १९५८।

जायसी, मलिक मुहम्मद : 'पद्मावत', सम्पादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद १९६३।

जैन, विमल कुमार : 'सूफीमत और हिन्दी-साहित्य', आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५५।

तिवारी, रामपूजन : 'जायसी', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६५।

तिवारी, रामपूजन : 'सूफीमत साधना और साहित्य', ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संवत् २०१३।

तिवारी, रामपूजन : 'हिन्दी सूफ़ी काव्य की भूमिका', ग्रन्थ वितान, पटना, १९६०।

त्रिगुणयत, गोविंद : 'जायसी का पद्मावत', अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९६३।

त्रिपाठी राममूर्ति : 'रहस्यवाद'. दिल्ली. १९६६।

दाऊद, मौलाना : चंदायन, परमेश्वरीलाल गुप्त, बम्बई १९६४।

दाऊद, मौलाना : चांदायन, सम्पादक—माताप्रसाद गुप्त, प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, १९६७।

नदवी, सय्यद सुलेमान : अरब और भारत के सम्बन्ध, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९३०।

नवाब समसाम्मुद्दौला शाह नवाज खाँ : 'मआसिरुल उमरा' का हिन्दी अनुवाद 'मुगल दरबार', (५ खण्डों मे), अनुवादक—ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (प्रथम खण्ड), संवत् १९८८।

नारंग, इन्द्रचन्द्र : पद्मावत का ऐतिहासिक आधार, हिन्दी-भवन, इलाहाबाद, १९५६।

नारंग, इन्द्रचन्द्र : 'पदमावत-सार', हिन्दी-भवन, इलाहाबाद, १९५७।

निकलसन, रेनाल्ड ए० : 'इस्लाम के सूफ़ी साधक', अनुवादक—श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, मित्र प्रकाशन, प्रा० लि० इलाहाबाद (तिथि नहीं है)।

नूर मोहम्मद : 'अनुराग-बाँसुरी', साम्पादक—चद्रबली पांडेय तथा पंडित रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २०००।

पांडेय, चन्द्रबली : तसव्वुफ अथवा सूफ़ीमत, सरस्वती मन्दिर, बनारस, १९४८।

पांडेय, रामनारायण : 'भक्ति काव्य में रहस्यवाद', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६९।

पांडेय, श्याममनोहर : 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान', मित्र प्रकाशन, प्रा० लि०, इलाहाबाद, १९६१।

पाठक, शिवसहाय : 'पद्मावत काव्य सौन्दर्य', हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर प्रा० लि०, बम्बई, १९५६।

पाठक, शिवसहाय : मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य, ग्रन्थम, कानपुर, १९६४।

पानीपती, मुहम्मद अफ़ज़ल : 'विकट कहानी'—बारहमासा, सम्पादक—डा० मसूद हुसैन खाँ तथा डा० विद्यासागर, हैदराबाद, १९६७।

बांकेबिहारी तथा कन्हैयालाल : 'ईरान के सूफ़ी कवि', भारती-भण्डार, लीडर प्रेस तिथि नहीं है

वाजपेयी, अम्बिकाप्रसाद : 'हिन्दी पर फ़ारसी का प्रभाव', हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सं० २००६।

बिलग्रामी, मीर अब्दुल वाहिद : 'हकायके हिंदी', अनुवादक—श्री अतहर अब्बास रिज़वी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०१४।

भगवान : 'सूफ़ी सन्त चरित', तज़किरत-उल औलिया पर आधारित, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, १९६१।

मंझन : 'मधुमालती', सम्पादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, मित्र प्रकाशन प्रा० लि०, इलाहाबाद, १९६१।

मंझन : 'मधुमालती', डा० शिवगोपाल मिश्र, वाराणसी, सन् १९६५।

मिश्र, जनार्दन : 'भारतीय प्रतीक विद्या', पटना, १९५९।

रिजवी, अतहर अब्बास : 'आदि तुर्क कालीन भारत', १९५६।

रिजवी, अतहर अब्बास : 'उत्तर तैमूर कालीन भारत', (भाग १, २) अलीगढ़, १९५८-५९।

रिजवी, अतहर अब्बास : 'खलजी कालीन भारत', अलीगढ़ १९५५।

रिजवी, अतहर अब्बास : 'तुग़लक कालीन भारत', भाग १,२, अलीगढ़ १९५६।

रिजवी, अतहर अब्बास : 'मुगल कालीन भारत' (बाबर), अलीगढ़, १९६०।

रिजवी, अतहर अब्बास : 'मुगल कालीन भारत हुमायूं' (भाग १,२) अलीगढ़, १९६१।

वजही, मुल्ला : 'कुतुब मुश्तरी', सम्पादक—बिमला वाघ्रे, मन्त्री दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद, १९५४।

वजही, मुल्ला : 'सबरस', सम्पादक—श्रीराम शर्मा, दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद, १९५५।

वाचस्पति, जगदीश चन्द्र : 'मौलानारूम और उनका काव्य', हिन्दी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, १९२२।

ब्रजरत्नदास : 'उर्दू साहित्य का इतिहास', हिन्दी-साहित्य-कुटीर, काशी, सं० २००७।

ब्रजरत्नदास : 'खुसरो की हिन्दी कविता', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं० २०१०।

शर्मा, श्रीराम : 'दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास', हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६४।

शर्मा, श्रीराम : 'दक्खिनी का गद्य और पद्य', सम्पादक—श्रीराम शर्मा, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद, १९५४।

शुक्ल, प्रभाकर : 'जायसी की भाषा', विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ, संवत् २०२२ वि०।

शुक्ल, रामचन्द्र : 'जायसी-ग्रन्थावली', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१३ वि०।

शुक्ल, सरला : 'जायसी के पूर्ववर्ती, हिन्दी-सूफ़ी कवि और काव्य', लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २०१३।

शेख रहीम : 'भाषा प्रेम रस', सम्पादक—श्रीउदयशंकर शास्त्री, क० मु० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, १९६५।

श्रीवास्तव, हरिशंकर : "हुमायूं," आगरा (प्रकाशन तिथि नहीं है)।

सक्सेना, बाबूराम : 'दक्खिनी हिंदी', हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५२

सक्सेना लालताप्रसाद : 'मंझन का सौंदर्य दर्शन', आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली १९६६।

सक्सेना, सुधा : 'जायसी की बिम्ब योजना', अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९६६।

सांकृत्यायन, राहुल 'दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा', बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद्, पटना, १९५९।

सांकृत्यायन, राहुल : 'अकबर', इलाहाबाद, १९५७।

सिंह, वासुदेव : 'अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद,' वाराणसी, संवत् २०२२।

सिंह, समर बहादुर : 'अब्दुर्रहीम खानखाना', साहित्य सदन, झाँसी, सं० २०१८।

हाली, मौलाना अल्ताफ़ हुसैन : 'मुकद्दमा - ए-शेर - ओ - शायरी', नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली १९६७

हिकमत, अली असगर : 'फ़ारसी साहित्य की रूपरेखा', हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १६५७ ।

हुसैन, एज़ाज़ : 'उर्दू साहित्य का इतिहास', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १६५७ ।

हुसैन, एहतिशाम : 'उर्दू साहित्य का इतिहास, अनुजुमने तरक्कीए-उर्दू (हिन्द) अलीगढ़, १६५४ ।

उर्दू और फ़ारसी के ग्रन्थ

अब्दुलहक़ : 'उर्दू की इब्तदाई नश्वनुमा में सूफ़ियाये कराम का काम', कराची, १६५३ ।

अमीर खुसरो : 'लैला व मजनू', नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, १८८० ई० ।

अमीर खुसरो : 'शीरीं खुसरो', अलीगढ़, १६२७ ई० ।

अमीर खुसरो : 'हश्त-बहिश्त', लखनऊ, १६०६ ।

इब्नेनिशाती : 'फूलबन' सं० अब्दुल कादिर सरवरी हैदराबाद, (भारत) १३५७ हि० ।

इमाम ग़ज़ाली : 'कीमियाये सादत' का उर्दू अनुवाद 'अकसीरे हिदायत', मौलाना फखरुद्दीन, लखनऊ ।

इमाम ग़ज़ाली : अह्याउल उलूम का उर्दू तर्जुमा 'मज़ाकुल आरफीन', चार भागों में, लखनऊ, १६५५ ।

ईस्वी खाँ बहादुर : 'किस्सए मेह्र अफ़ोज व दिलबर', सम्पादक-मसूद हुसैन खाँ, हैदराबाद १६६६ ।

औरंगाबादी, लक्ष्मीनारायण शफ़ीक : 'तसवीरे जाना', सम्पादक—ख्वाजा हमीदुद्दीन, हैदराबाद (भारत) १६५७ ।

औलिया, ख्वाजा निज़ामुद्दीन : 'फवायदुल-फ़वायद का उर्दू अनुवाद, 'इरशादे महबूब', मुस्लिम अहमद निज़ामी, देहली, (प्रकाशन तिथि नहीं है) ।

कामिल, मुहम्मद वारिस : 'तज़किरा औलियाये लाहौर', कराची, १६६३ ।

ख्वाजा बन्दानेवाज़ : 'तसव्वुफ़ और सुलूक', डा० मीरवलीउद्दीन, देहली, १६६६ ।

ग़वासी, : 'तूतीनामा', सम्पादक—मीर सादत अली रिज़वी, हैदराबाद (भारत), हिजरी १३५७ ।

गवासी : 'मैना सतवंती', डा० गुलाम उमर खाँ, हैदराबाद, १९६५।

गवासी : 'सैफुल मुलूक व बदीउलजमाल', मीर सादत अली रिजवी, हैदराबाद, १३५७ हिजरी।

गिलानी सैयद, मुहम्मद औलाद अली : 'औलियाये मुलतान', लाहौर, १९६३।

जाफरी, रईस अहमद : 'तारीख़े तसव्वुफ़ इस्लाम', लाहौर, १९५०।

जामी, अब्दुल रहमान : 'युसुफ जुलेखा', नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, १३१४ हिजरी।

जायसी, सैयद कल्बे मुस्तफा : 'मलिक मुहम्मद जायसी', अंजुमन तरक्की उर्दू, देहली, सन् १९४१।

थानवी, अशरफ अली : 'अलतकश्शुफ यानी अलतसव्वुफ़', हैदराबाद (भारत) (१३२७ हिजरी में पूर्ण हुई)।

दरदाई, मुहम्मद मुइनुद्दीन : 'तारीखे सिलसिला फिरदौसिया', गया, १९६२।

दारा-शिकोह : 'सैफिनतुल औलिया', अनुवादक—मुहम्मद अली लितफी, कराची १९५९।

देहलवी, अब्दुलहक मुहद्दिस (शेख) : 'अखबारुल अख़ियार', कुतुबखाना रहीमिया देवबन्द (उत्तर प्रदेश)।

नदवी, अब्दुलस्लाम : 'हुकुमाए इस्लाम', आजमगढ़, १९५३।

नसीरुद्दीन हाशमी : 'दकन में उर्दू', लाहौर, १९५२।

निज़ामी गंजवी : 'एकबालनामा', वहीद दस्तगर्दी, किताबखाना सीना, ईरान १३३५ ईरानी सन्।

निज़ामी गंजवी : 'खुसरो-शीरीं', नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, १९०२।

निज़ामी गंजवी : 'खुसरो-शीरीं', वहीद दस्तगर्दी, किताबखाना इब्नेसीना, ईरान।

निज़ामी गंजवी : 'गंजीने-गंजवी' (निज़ामी की कृतियों का एक शब्द कोष), किताबखाना इब्नेसीना, १३१७ ईरानी सन्।

निज़ामी गंजवी : 'मखज़नुल-असरार', सम्पादक-वहीद दस्तगर्दी ईरान, किताबखाना इब्नेसीना, १३३४। ईरानीसन्।

निज़ामी गंजवी : 'लैली व मजनू', सम्पादक—वहीद दस्तगर्दी, कितबखाना, इब्नेसीना, ईरानीसन् १३३३

निज़ामी गंजवी : 'सफरनामा', किताबखाना, इब्नेसीना, ईरान, १३३५ ईरानी सन् ।

निज़ामी गंजवी : 'हफ्त पैकर', किताबखाना, इब्नेसीना, ईरान १३३४ ईरानी सन् ।

निज़ामी, खलीक अहमद : 'तारीखे मशायख चिश्त', देहली, १९५३ ।

निज़ामी, मुस्लिम अहमद : 'दीवाने गरीब नेवाज़', कुतुबखाना नज़ीरिया, देहली (प्रकाशन तिथि नहीं है) ।

निज़ामी मुहम्मद मुस्लिम अहमद : 'दीवाने ग़ौसुल आज़म', कुतुबखाना नज़ीरिया, उर्दू बाजार, देहली (प्रकाशन तिथि नहीं है)

नुसरती : 'अलीनामा', सम्पादक—अब्दुल मजीद साहब सद्दिकी, हैदराबाद, १९५९ ।

फायज़ : 'रिज़्वान शाह व रुह आफ़ज़ा', सैयद मुहम्मद एम० ए०, हैदराबाद, सन् १९५६ ।

फैजी शेख : 'नलदमन', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९३० ।

मसूद हुसैन खाँ : 'कदीम उर्दू' (भाग १) (इसमें दक्खिनी की सात रचनाएँ संग्रहीत हैं) उर्दू विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, १९६५ ।

मसूद हुसैन खाँ : 'कदीम उर्दू' (भाग २), उर्दू विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, १९६७ ।

मिर्जा, मुहम्मद वाहिद : 'अमीर खुसरो', हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद १९४९ ।

मीर वलीउद्दीन : 'रमूजेइश्क', देहली, १९६६ ।

मीर वलीउद्दीन : 'कुरान और तसव्वुफ़', देहली, १९५६ ।

मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी : 'चन्दरबदनव महीयार', हैदराबाद, १९५६ ।

मुहम्मद मसूद अहमद : 'शाह मुहम्मद गौस ग्वालियरी', मीरपुर खास, हैदराबाद (पाकिस्तान) १९६४ ।

रशीद मुहम्मद मतिउल्ला : 'बुरहानपुर के सिन्धी औलिया' (तज़किरा औलियाये सिंध हैदराबाद पाकिस्तान) १९५७

शफ़क, रज़ाज़ादा : तारीखे अदबियात ईरान, अनुवादक—सैय्यिद मुबारजलुद्दीन, देहली, १६५५।

शाह तराब चिश्ती : मन समझावन, सं० डा० सैय्यद जफर, हैदराबाद, सन् १६६४।

शिबलीनुमानी : शेरूल अज़म, आजमगढ़, (७ भागों में) आजमगढ़।

शेख मुहम्मद ग़ौस : जवाहिरे खम्सा, अनुवादक—मौलवी मुहम्मद इसहाक सद्दिकी, देवबन्द (उत्तरप्रदेश)।

शेख मुहम्मद ग़ौस : बहरूलहयात—रिज़वी मुद्रणालय, देहली, सन् १८६४।

शेख सादी : गुलिस्तां, सम्पादक—काज़ी सज्जाद हुसेन साहब।

शेख सादी : बोस्तां, सम्पादक—काजी सज्जाद हुसेन साहब, देहली।

सनाती : किस्स-ये बेनज़ीर, सम्पादक—अब्दुलकादिर सरवरी, हैदराबाद, हि० १३५७।

सरवरी, अब्दुल कादिर : उर्दू मस्नवी का इर्तिका, हैदराबाद (भारत) १६४०।

सुलतान, मुहम्मद कुली कुतुबशाह : कुल्लियात, डा० सैयद मुहीउद्दीन कादरी ज़ोर, प्राप्ति स्थान, दानिश महल, लखनऊ, १६४०।

सुहरवर्दी, उमरबिन मुहम्मद शहाबुद्दीन : आवारिफुल मारिफ़, अनुवादक—हाफिज सैय्यद रशीद अहमद अर्शद (गुलाम अली एण्ड सन्स) लाहौर—१६६५।

सैयद मुहम्मद : मसनवी गुलशने-इश्क, हैदराबाद (प्रकाशन तिथि नहीं है)।

सैयद वारिस शाह : हीर, सम्पादक—अब्दुल गरीज़, लाहौर, १६६०।

सैय्यद सुबाहुद्दीन : बज्मेसूफ़िया, आजमगढ़, १६४६।

हक, मौलवी अब्दुल : नुसरती (अंजुमने तरक्की-ए-उर्दू) देहली (प्रकाशन तिथि नहीं है)।

हकीरिया : मसनवी माधवानलकामकंदला, सम्पादक—योगध्यान आहूजा देहली १६६५

हज़रत ख्वाजा बन्दानेवाज़ : निज़ामे तसव्वुफ़ व सलूक, अहमद हुसीन खाँ, हैदराबाद (भारत) १९६६।

हज़रत ख्वाजा सैयद मुहम्मद गेसूदराज़ : रूहेतसव्वुफ़, अनुवादक—शबीर हसन चिश्ती निज़ामी, देहली (प्रकाशन तिथि नहीं है)।

हज़रत सैयद अब्दुल करीम : इन्साने कामिल बिन इब्राहीम जिलानी, अनुवादक—मौलवी फज़ल मिरान साहब, कराची, १९६२।

हाफ़िज : दीवाने-ए-हाफ़िज़, मौलाना सज्जाद हुसैन साहब, देहली, १९६२।

हाफ़िज महमूद खाँ शीरानी : पंजाब में उर्दू, लखनऊ, १९६०

हुज्वीरी, हज़रत दातागंज बख्श : कश्फूल महजूब (उर्दू), अनुवादक—मौलाना मुहम्मद हसीन मुनाज़िर, लाहौर (हिजरी १२७४ में पुस्तक पूर्ण हुई)।

Sufism and Islamic Culture

Author	Title
Adams, Robert M. cc	: Land behind Baghdad—Chicago., 1965.
Affifi, A.	: The mystical philosophy of Muhyid-Din Ibn al Arabi—London, 1939.
Ahuja, yogadhyan	: Madhavanal Kam Kandala—Delhi 1965.
Arberry, A. J.	: Classical Persian Literature—London, 1958.
Arberry, A. J.	: Fifty Poems of Hafiz.—London, 1962.
	Koran Interpreted–Newyork, 1955.
	Revelation and reason in Islam. London, 1956.
	Shiraz—Oklahoma (U.S.A) 1960
	Sufism—London, 1956.
Archer. J. C	: Mystical Elements in Mohammad, Newheaven, (U. S. A.), 1929.
Ali, Syed Ameer	: Spirit of Islam—London (N. D.)
Ata-Malik-Ala-ad-din	: History of the world Canqueror (Vols 2) Boston, U. S. A., 1958.
Athman-Ali Issa	: The Concept of man in Islam—Cairo, 1960.
Avery Peter etc	: Hafiz of Shiraz—London, 1952.
Azzam-Abd-al. Rahman	: Eternal Message of Muhammad, Newyork 1965

Banke Behari : Sufis Mystics and yogis of India. Bombay, 1962.

Bell, Richard : Introduction to Quran—London, 1958.

Brockel man, Carl : History of Islamic people—Newyork, 1960.

Browne, Edward C. : A literary history of Persia. (4 Volumes)—London, 1956-64.

Burn, A. R. : Persia and the Greeks—Newyork, 1962.

Ceadel, Eric. B. : Literatures of the East—London, 1953.

Chaudhari-Roma : Sufism and Vedant—Calcutta, (two Volumes) 1945.

Chelebi Katib : The Balance of Truth—London, 1957.

Corbin Henry : Avicenna and visionary recital. Newyork, 1954.

Daniel Norman : Islam and the West—London, 1962.

Dawood. N.J. : The Koran—London, 1961.

Deware, T. N. : A History of Persian Lterature, Poona, 1961.

Faris, Nabih Amin The Book of Divine knowledge—Lahore, 1960.

Faruqi, Burhan Ahmad : The Mujaddid's Conception of tawahid—Lahore, 1943.

Fitzgerald, Edward : Rubaiyat of Umar Khayyam—Newyork, (N. D.)

Frye Richard. N. : The Heritage of Persia—1963.

Gaireder W. H. T. : Al-Ghazzali's Mishkat Al-Anwar—London, 1924.

Ghani, Abdul : A history of persian language and literature at Mughal Court (3 Vols Allahabad, 1929

Ghani, Abdul : Pre Mughal Persian in Hindustan Allahabad, 1941.

Gibb. E. J. W. : A History of Ottoman Poetry, London, 2 Vol, 1900-1902.

Gibb, H. A R. : Mohammedanism—London, 1949.

Gibb and Bowen Harold : Islamic Society and the West (Two Volumes)—London, 1950.

Goitein, S. D. : Jews and Arabs—Newyork, 1964.

Grenville, G. S. P. freeman : The Muslim and Christian Calendars—London, 1963.

Grunebaum, Gustave E. Von : Unity and Variety in Muslim Civilization—London (N. D.)

Grunebaum Gustave E. Von. : Medieval Islam—Chicago, 1953.

Hasan, Hadi : A Golden Treasury of Persian Poetry—Delhi, 1966.

Hujwiri-Ali, B. Uthman al-Jullabi : The kashf-al-Mahjub-London, 1911.

Husain, Ashfaque : The quintessence of Islam—Bombay, 1958.

Ibn-khaldun : The Muqaddimah—Transl. Fraz Rosenthal, (Three Volumes) Newyork, 1958.

Ibn-Rushd : Averroes—London, 1961.

Idrish Shah : Sufis—Newyork. 1964.

Iqbal Mohammad : Reconstruction of religious thought in Islam—London, 1934.

Inayat khan Sufi Message—(11 Volums) London, 1960-1964.

Jackson, A. V. Williams : Persia Past and Present—London, 1909.

Junayd : The life, Personality and writings, A. H. Abdel Kader (E. J. W. Gibb Memorial)—London. 1962.

Kalabadhi-Abu-Baker : Doctrine of the Sufis—Transl. A. J. Arberry—London, 1935.

Khan, Khaja — : Studies in Tasawwuf—Madras, 1929.

Kritzeck, James : Peter the Venerable and Islam. Newjersey, (U. S. A.) 1964.

Landau, Rom : Philosophy of Ibn-Arabi–London, 1959.

Levy Ruben : Persion Literature–London, 1923.

Levy Reuben : The social structure of Islam—London, 1957.

Mahdi Muhsin : Alfarabi's philosophy of Plato and Aristotle—London, 1962.

Mahdi Muhsin : Ibna Khaldun's Philosophy of History—Chicago, 1964.

Mir Valliuddin : Quranic Sufism—Delhi, 1959.

Nadwi, S. Abul Hosan : Muslims in India–Luknow, 1962.

Nasr, Seyyed Hossein : An introduction. to Islamic Cosmological Doctrines—London, 1964.

Nasr, Seyyed Hossein : Three Muslim Sages—London, 1964.

Nicholson, R. A. : Diwan-i-Shamsi tabriz—London, 1952.
The Idea of peronality in Sufism London, 1923.
A literary History of Arabs—London 1962.
Mystics of Islam—London 1963.
Rumi, Poet and mystic—London, 1956.

Niffari-Muhammad Ibn Abdi-L Jabbar : The Mawaqif and Mukhtabat (E. J. W. Gibb Memorial) Transl. A J Arberry, London, 1935

Nizami-Khaliq Ahmad : Shaikh Farid-ud-Din, Ganj-Shakar, Aligarh, 1955.

Oman, John Campbell : Brahmans, Theists and Muslims in India—London, (N. D.)

Olmstead A. T. : History of the persian Empire, Chicago, (N. D.)

Muhammad Ali : The Religion of Islam—Lahore, 1950.

Palmer, E. H. : Oriental Mysticism—London, 1938.

Palmer E H. : The Koran, London, 1900

Pickthall, M. M. : The Glorious Koran, Newyork, 1953.

Radha Krishnan (editor) : History of philosophy Eastern and Western (two Volumes), London, 1952.

Rice Cyprian : Persian Sufis—London, 1964.

Rosenthal, Erwin I. J. : Judaism and Islam—London, (N. D.)

" Political Thought in Medieval Islam—London, 1962.

Rumi-Jalaluddin : The Mathnawi, Transl. R. A. Nicholson in VIII Volumes—London, 1929-40.

Russel Darothea : Medieval Cairo—Newyork, London, 1963.

Sachau Edward : Ab-berunis (India Two Volumes) London, 1910.

Sadiq Muhammad : A History of Urdu Literature London, 1964.

Sale-George : The Koran—London, (N. D.)

Sharib, Zahurul Hasan : The Life and Teaching of Khwaja Moinuddin Hasan Chishti–Ajmer, 1959

Sharib, Zahurul Hasan : Mystical Philosophy of Khwaja Moinuddin Hasan Chishti Ajmer, 1959.

Sharif M. M. : A History of Muslim philosophy, Wiesbaden. Germany, 1963.

Shirreff A. G. : Padmavati of Malik Muhammad Jaisi, Calcutta, 1944.

Shushtery A. M. A. : Outline of Islamic Culture, Banglore, 1955.

Smith, Margaret : Al-Ghazali the Mystic, London, 1944.

Smith, Margaret : Rabia the Mystic, London, 1928.

Smith, Margaret : Sufi Path of Love–London, 1954.

Smith, Margaret : Studies in Early Mysticism in the Near and Middle East, London, 1931.

Subhan-John. A. : Sufism–its Saints and Shrines in India—Lucknow 1960.

Sundar lal : The Gita and the Quran. Hyderabad, 1955.

Watt. W. Montagomery : Islamic philosophy and Theology, Part I, Edinburgh, 1964.

" Muhammad Prophet and States—man—London, 1961.

Watt. Montgomery : Muslim Intellectual (A study of Al-Ghazali), Edinburg, 1963.

William, John Alden : Islam— Newyork, 1962.

Zaehner, R. C. : The Dawn and Twilight of Zorastrianism—Newyork, 1961.

Zaehner, R. C. Hindu and Muslim Mysticism—London, 1960.

Zuhirruddin Ahmed : An examination of the Mystic tendencies in Islam—Bombay, 1932

Mysticism (General)

Abdul Vali Khan : Hinduism According to Muslim Sufis, Journal and proceedins of Asiatic Society of Bengal, Vol. XIX, 1923. P. 203.

Agrawal, Padma : Symbolism—Banaras 1955.

Aple O. P. and others : Mystery and Mysticism—Newyork, 1955.

Augustine : The City of God, Transl. Marcus-dods, Newyork 1950.

Augustine : The Confessions of Saint Augustine. (John. K. Ryan), Newyork, 1960

Brehier Emile : The philosophy of Plotinus, Transl. from French into Eng. Joseph Thomas, Chicago, 1962.

Cohen J. M. : The life of Saint Teresa, Penguin Books, Edinburg, 1958.

Danielou, Jean : Primitive Christian Symbols, London, 1964,

Darcy Martin. C. : The Meeting of Love and Knowledge—London, 1958.

Dasgupta S. B. : Obscure religious Cults, Calcutta, 1962.

David, Baumgardt : Great Western Mystics, Newyork. 1961.

Eastwick, B. : Anvar-i-Suhaili—Allahabad 1914.

Edwyn, Bevan. : Holy Images—London, 1940.

Edwyn. Bevan. : Symbolism and Belief, Boston, 1957.

Eckhart, Meister, : Meister Eckhart—Transl. Raymond. B. Blakney, Newyork, 1941.

Friedrich Schl her The Christian Faith—'two Vol umes Newyork, 1956

Ghosal, Satyendranth, : Beginning of Secular romance in Bengali Literature—Visvabharati, Vol. IX, Santiniketan, 1959.

Govindacharya, Swamin. : A Metaphysique of Mysticism Vedically Viewed. Mysore 1923.

Happold, F. C. : Mysticism, Penguin Books–1963.

Hogdgson Marshall : A Comparison of Islam and Christianity as Frameworks for Religious life, DIOGENES, Chicago, No. 32 Winter, 1960.

Huxley, Aldous, : The perennial Philosophy, Newyork. 1945.

Inge, W. R. : Christian Mysticism, Newyork, 1960.

James, William : The Varieties of Religious Experience—Newyork 1929.

Knowles, David : The English Mystical Tradition, Newyork 1965.

Leeuw G. Vander : Religion in Essence and Manifestation, (2 Volumes) Newyork, 1963.

Mackenna Stephen : Plotinus—The Enneeads, Newyork, (Third Edition).

Merton, Thomas : The ascent to Truth, Newyork, 1959.

Muidkhan : The Arabian Poets of Golconda, Bombay, 1963.

Nicholas of Cusa : The Vision of God—Transl. Emma Gurney, Salter, Newyork, 1928.

Nygren, Anders : Agape and Eros, (A study of Christian idea of love). Trans. Philip Watson. Philadelphia, 1953.

O Brien Elmer : Varieties of Mystic Experience, Newyork, 1964

Otto, Rudolf : The Idea of the Holy—Newyork, 1963.

Otto, Rudolf : Mysticism East and West—Newyork, 1960.

Ray. C. Petry : Late Medieval Mysticism, Philadelphia, (N. D.)

Russel, Bertrand : Mysticism and Logic—Newyork, (N. D.)

Rougement Denisde : Love in the Western World—Newyork, 1956.

" Love declared (Essays on the Myths of love) Boston, 1963.

Saint Bernard : The Steps of Humility—London, 1957.

Saint Francis de Sales : On the love of God (two Volumes) Transl. John K. Ryan, Newyork, 1963.

Saint John of the Cross : Ascent of Mount Carmel, Newyork, 1958.

Saint, John of the Cross : Poems—Roy Campbell. Pengnin Classics, 1960.

Saint, John of the Cross : Dark Night of the Soul—(Transl. E. Allison peers). Newyork, 1959.

Saint, John of the Cross : Spiritual Canticle (Transl E. Allison peers)—Newyork, 1961.

Saint Teresas : Complete works (3 Volumes, Transl. E. Allison peers) London, 1946.

Scholem, Gershom. G. : Major Trends in Jewish Mysticism, Newyork, 1961.

Spencer Sidney : Mysticism in World religion London, 1963.

Suzuki D. T. : Mysticism, Christian and Buddhist Newyork 1962

Theodore de bary (ed). : Sources of Indian Tradition, Newyork, 1960.

Titus, Murray t. : Islam, in India and Pakistan, (Y. M. C. A) Calcutta, 1959.

Underhill Evelyn. : Mysticism, Newyork, 1960.
The Mystics of the Church—Newyork (N. D.)
Practical Mysticism—Newyork, 1943.

Wolters, Cliffin (transl.) : The cloud of unknowing. Penguin Classics, 1961.

Zaehner, R. C. : Mysticism, Sacred and Profane, Newyork. 1961.

Zimmer, Heinrich, : Myths and Symbols in Indian art and Civilization—Newyork, 1962.

Some Important Papers on Sufism

Nicholson (R. A.) : A Historical Enquiry Concerning the Origin and Development of Sufism, Journal of Royal Asiatic Society, London, 1906. P. 303.
The Goal of Mohammedan Mysticism JRAS. London, 1913, p. 55
Sufism—Encyclopaedia of Britanica 1956, Vol. 21, p. 523.

History and Religion

Abul-Fazl-l-Allami : The A-in-i-Akbari
Transl. M. Blochman, Calcutta—1939.

Abul-Fazl-l-Allami : Ain-i-Akbari—2 Volumes, H. S. Jarret, Calcutta, 1948-49.

Ahmad, Aziz : Studies in Islamic Culture in Hindu environmeut—London, 1964

Akabar, Shaikh Sikandar-Ibn-Muhammad urf, manjhu : The Mirat-i-Sikandari–edited by S. C. Mishra, M. L. Rahman, Baroda, 1961.

Al. Idrisi-Al-Sharif : India and the Neighbouring territories, Transl. S. Maqbul Ahmad, Leiden, Holland, 1960.

Ali, Ameer : A Short History of Saracens, London, 1961.

Ali-K : A Study of Islamic History, Calcutta, 1963.

Ali—M. Athhar : The Mughal Nobility Under Aurangzeb, Bombay, 1966.

Ali—Muhammad Khan : Mirat-i-Ahmadi—(2 Vols) Edited by Syed Nawab Ali, Baroda, 1927.

Ali—Syed Nawab : Miart-i-Ahmadi, Suppliment, Baroda, 1930.

Ashraf. K. M. : Life and Conditions of the people of Hindustan, Delhi, 1959.

Babur : Baburnama (memoirs of Babur) Anne He Susannah, Beveridge, Vol. II, London, 1922.

Badaoni : Muntakhabut Tawarikh, Volume I Transl, S. A. Ranking, Culcutta, 1889.

Badaoni : Muntakhabut-Tawarikh—Volume, II Transl. W. H. Lowe, Calcutta, 1924.

Badaoni : Muntakhabut-Tawarikh, Volume III, Transl. Wolseley Haig, Calcutta 1925.

Basworth, C. E. : The Ghaznavids, Edinburg, 1963.

Beni Prasad : History of Jahangir—Allahabad, 1962.

Bhattacharya Haridas The Cu tural Heritage of India 4 Volumes, Calcutta, 1956 1958

Brajnarain and others : A Dutch Chronicle of Mughal India, Calcutta, 1957.

Bukhari, Mahmud : Tarikh-i-Salatin-i—Gujarat, Aligharh, 1964.

Burn, Richard : Cambridge History of India, Vol. IV, Delhi, 1957.

Chopra, Prannath : Society and Culture in Mughal Age, Agra 1955.

Commissariat : A History of Gujarat, Vol. II, Culcutta, 1957.

Coulson, N. J. : A History of Islamic Law, Edinburg, 1964.

Davar, Firoze Cowasji : Iran and India Through the Ages, NewYork, 1962.

Day, Upendranath : Medievel Malwa—Delhi, 1965.

Ferishta, Kasim : History of the rise of the Mahomden power (Original persian of Mahomed Kasim—Ferishta) Transl. John Briggs, in four Volumes, Calcutta, 1908-1910.

Habib Mohammad : The political theory of the Delhi Sultanate—Allahabad, (N. D.)

Hitti, Phillip. K. : History of the Arabs—London, 1960.

Houstma, M. Th, and others : Encyclopaedia of Islam—Vol. IV London, 1934.

Husain, Agha Mahdi : Tughluq Dynasty—Calcutta. 1963.

Husaini, S. A. Q. : Bahman Shah—Calcutta, 1960.

Husain, Yusuf : Glimpses of Medieval Indian Culture—Bombay, 1957,

Ibna-Battuta : The Travels of Ibn-Battuta—two Volumes Transl. H. A. R Gibb London, 1958

Ikram, S. M. : Muslim Civilization in India, Newyork, 1964.

Ishwari Prasad : The life and Times of Humayun, Calcutta, 1956.

Khadduri, Majid : War and Peace in the law of Islam—London, 1955.

Khan, Saqi Mustad : Masir-i-Alamgiri—Culcutta, 1947.

Krishna Murti, R. : Akbar, the religious aspect, Baroda, 1961.

Lal, K. S. : Studies in Medieval Indian History, Delhi, 1966.

Malik, Hafeez : Moslem Nationalism in India and Pakistan—Washington. (N. D.)

Moreland, W. H. : The Agrarian System of Muslim in India, Allahabad 1929.

Moreland, W. H. : India—at the death of Akbar, Delhi, 1962.

Mujeeb, M. : The Indian Muslims, London, 1967.

Niamatullah : History of Afghans, (Nirod Bhusan Roy, (ed) Santiniketan, 1958.

Nizami, Khaliq Ahmad : Khairul-Majalis—Aligarh, (N. D.)

Nizami, Khaliq Ahmad : Some Aspects of religion and Politics in India during the 13th Century—Aligarh, 1962.
Studies in Medieval Indian History Allahabad, 1966.

Noornabi, Mohammad : Development of Muslim, religious thought in India, Aligarh, 1962.

Pandey A. B. : The first Afghan Empire in India Calcutta, 1956.

Panikar. K. M. : A Survey of Indian History—Bombay, 1964.

Qanungo K. R : Sher Shah utta 1921

Oureshi Ishtiaq Husain : The Muslim Community of the India. Pakistan Subcontinent, The The hague, The netherlands, 1962.

Radhe Shyam : The kingdom of Ahmad Nagar, Delhi, 1966.

Rahim, Abdur : Mughal relations with Persia and Central Asia, Aligarh,

Raji, Aqilkhan : The Waqiat-i-Alamgiri, Aligarh, 1946.

Rizvi, Saiyid Athar Abbas : Muslim revivalist Movements in Northern India, Balkrishna book Co. Lucknow, 1965.

Saran. P. : The Provincial Government of the Mughals, Allahabad, 1941.

Sarkar, Jagdish Narain : Ideas of History in Medieval India, Calcutta, (N. D.)

Saxena. B. P. : History of Shahjahan of Dihli, Allahabad, 1962.

Sharma, S. R. : The religious policy of the Mughal emperors, Bombay, 1962.

Sharma, S. R. : Mughal empire in Imdia. Agra, 1966.

Studies in Medieval Indian History Sholapur, 1956.

Sherwani H. K. : Muhammad Quli Qutub Shah, Bombay, 1967.

Shushtery, A. M. A. Outline of Islamic Culture, Banglore, 1955.

Tarachand : Influence of Islam on Idian Culture, Allahabad, 1954.

Society and state in Mughal Period, Delhi 1961.

Tod, James : Annals and autiquities of Rajasthan, two Volumes, London, 1960

Tripathi, R. P. : Rise and fall of the Mughal empire, Allahabad, 1960.
Some aspects of Muslim administration, Allahabad, 1964.

Yasin, Mohammad. : A Social History of Islamic India Lucknow, 1958,

Zakaria-Rafiq : Razia, Queen of India, Bombay, 1966.